Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुढ़कते पत्थर

गुरुदत्त

अत्यन्त लुभावने पंचशील सिद्धान्त के मकड़जाल में फँसे सम्राट अशोक के राजपरिवार की व्यथा व उनकी मुक्ती गाथा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

167974
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुढ़कते पत्थर

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

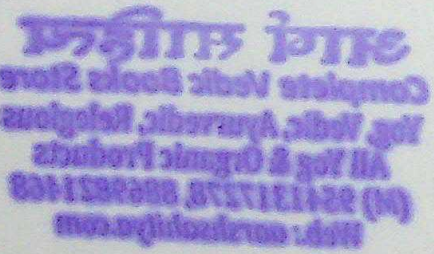

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुढ़कते पत्थर

गुरुदत्त

081
167974

Central Library
167974
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-११०००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-L

© ईशान दत्त

Rs 300-

प्रकाशक	हिन्दी साहित्य सदन
	2 वी. डी. चैम्बर्स , 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
	करोल बाग पुलिस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-110005
ई–मेल	indiabooks@rediffmail.com
	hindisahityasadan@gmail.com
Website	www.hindisahityasadan.com
दूरभाष	9213527666, 7065618655, 011-23553624
WhatsApp	7065618655
संस्करण	2020
मुद्रक	संजीव आफसैट प्रिंटर्स

Ludhaktey Patthar
By Guru Datt

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

स्वर्गीय श्री गुरुदत्त ने सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक उपन्यासों के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना की है। इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास के अन्तर को स्वयं श्री गुरुदत्त भलीभाँति जानते और समझते थे तथा अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने इस अन्तर को अपने पाठकों को भी भलीभाँति समझाने का यत्न किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इतिहास की अपेक्षा उपन्यास जीवन के अधिक निकट होता है। इतिहास शुष्क विषय माना जाता है, जबकि उपन्यास रोचक होता है। स्व० श्री गुरुदत्त ने ऐतिहासिक घटनाओं का अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में जहाँ एक ओर याथातथ्य वर्णन करने का यत्न किया है वहाँ उन्होंने उन्हीं पात्रों के माध्यम से उनमें रोचकता का पुट भी दिया है। कहीं-कहीं उनको अनेक काल्पनिक पात्रों का समावेश भी करना पड़ा है। तदपि उनको पढ़ने से यह आभास तक नहीं होता कि ये पात्र काल्पनिक हैं। उपन्यास के कथानक का वे अभिन्न अंग होते हैं।

लोकप्रिय उपन्यासकार स्व० श्री गुरुदत्त के विषय में हम सदा से ही कहते आए हैं कि जहाँ अनेकानेक उपन्यासकारों का गौरव कालातीत हो गया है अथवा होता जा रहा है वहाँ स्व० गुरुदत्त का गौरव, काल के साथ-साथ प्रगति करता जा रहा है। साहित्यकार अथवा उपन्यासकार की यही सबसे बड़ी उपलब्धि होती है कि वह कालातीत न माना जाए। इस परिप्रेक्ष्य में स्व० श्री गुरुदत्त को कभी कालातीत नहीं माना जाएगा। उनके विभिन्न विषयों के उपन्यास पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वे वर्तमान काल पर ही लिखे गए हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों का तो काल निर्धारित होता है, किन्तु गुरुदत्त ने उनकी इस प्रकार विवेचना प्रस्तुत की है कि वे तत्कालीन होते हुए भी सामयिक मानस के ही अनुकूल हैं।

स्व० श्री गुरुदत्त जी की विशेषता यह थी कि वे उद्देश्य-विशेष से अपनी रचना किया करते थे। उनकी मान्यता थी कि यदि लेखक किसी उद्देश्य-विशेष को ध्यान में रखकर नहीं लिखता है तो वह श्रेष्ठ लेखक नहीं कहा जा सकेगा। वे यह भी मानते थे कि लेखक जो कुछ भी लिख रहा है, पाठक उसको उसी रूप में ग्रहण करें। यदि पाठक उसमें भ्रमित होकर उसे किसी अन्य रूप में देखने अथवा ग्रहण करने लगता है तो इसे वे लेखक की कमी मानते थे, पाठक का अज्ञान नहीं। अपनी रचना की भूमिकाओं में उन्होंने बारम्बार इस ओर इंगित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्यतया श्री गुरुदत्त के समकालीन एक वर्ग-विशेष के कुछ लेखकों ने जब उनमें और कुछ त्रुटि नहीं पाई तो उनको उपन्यासकार के स्थान पर उपदेशक प्रचारित करना आरम्भ कर दिया था। उसके उत्तर में श्री गुरुदत्त का कहना था कि रचना सोद्देश्य होनी चाहिए। इस कार्य में यदि लेखक को उपदेशक बनना पड़ भी जाए तो वह न कोई पाप है और न अपराध। न ही उसे किसी प्रकार की साहित्येतर कोई विधा माना जाना चाहिए। लेखक की रसयुक्त रचना यदि सदुपदेश भी देती है तो यह सोने में सुगन्ध ही कहलाएगी। श्रेष्ठ साहित्य का स्वरूप बुद्धि को व्यावसायात्मिका बनाना होता है। उनका प्रयत्न इसी ओर होता था।

स्व० श्री गुरुदत्त जी की मान्यता थी कि आदिकाल से इस देश में निवास करने वाला आर्य—हिन्दू समाज ही देश की सुसम्पन्नता और समृद्धि के लिए समर्पित रहा है और भविष्य में भी वही समाज समर्पित रहेगा। शक-हूण-कुषाण सब आए और उसमें मिलकर उसका अभिन्न अंग बन गए तो वे भी उसी प्रकार का समर्पण-भाव इस देश के प्रति रखने लगे। किन्तु जो स्वयं को इसमें समाहित नहीं कर सके उन्होंने अपने आगमन-काल से ही इसका अहित चिन्तन किया है। इस तथ्य को उन्होंने अपने पाठकों के सम्मुख भलीभांति प्रस्तुत किया है। 'वैदिक धर्म' को स्व० श्री गुरुदत्त ने शाश्वत धर्म के रूप में अपने उपन्यासों में निरूपित करने का यत्न किया है। उसके लिए उन्होंने तर्क, प्रमाण और उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

हम आरम्भ में ही बता आए हैं कि उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या न्यून नहीं है। वे मानते थे कि ऐतिहासिक उपन्यासकार का दायित्व द्विविध होने से इतिहास-लेखक से कहीं अधिक दुस्तर होता है, क्योंकि उसे अपने उपन्यास में जीवन की सजीवता को साँचे में ढालकर भी इतिहास के तथ्यों को सुरक्षित रखना होता है। भले ही वे तथ्य अब निष्प्राण हो गए हों, किन्तु तथ्यों को तो किसी भी प्रकार तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता।

ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्होंने मुख्यतया बौद्धकालीन और मुगलकालीन इतिहास को अपना वर्ण्य विषय बनाया है। वास्तव में ये ही दो विचारधाराएँ ऐसी हैं जो भारत के लिए हानिकर ही नहीं अपितु मारक सिद्ध हुई हैं, और कुछ अंशों में आज भी उसी प्रकार सिद्ध हो रही हैं! बौद्धकालीन और मुगलकालीन संस्कृति, सभ्यता और घटनाओं के चित्रण के साथ-साथ उनकी अपनी कल्पना भी मुखर बनकर घटनाओं के क्रम-विपर्यय और आकस्मिक रोमांच का भी निर्माण करती है। उनके द्वारा ऐसे नये पात्रों को प्रस्तुत किया जाता है जिनका उपन्यास से भले ही दूर का भी सम्बन्ध न हो परन्तु जो उपन्यास के दृष्टिकोण को सबल रूप से प्रस्तुत कर सकें और समय-समय तथा स्थान-स्थान पर ऐतिहासिक शैथिल्य का बौद्धिक विश्लेषण भी कर सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक उपन्यासों में सामान्यतया सभी मुख्यपात्र राजपुरुष ही होते हैं। आचरण-भेद और नीति-भेद के कारण उनमें शूरता अथवा कायरता के पृथक्-पृथक् गुण उपलब्ध होते हैं। जो शूर पात्र होते हैं उनमें शौर्य, लगन, राष्ट्रोत्थान की भावना, नीतिमत्ता, संकल्प की दृढ़ता, विपत्ति के क्षणों में धैर्य का प्रदर्शन, ये सब लक्षण दिखाए जाते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास षड्यन्त्रकारी पात्रों के बिना अपूर्ण माने जाएँगे। वे षड्यन्त्र आरोपित नहीं होते, अपितु इतिहास का ही अंग होते हैं। इन उपन्यासों में यदि इतिहासपुरुष अर्थात् राजपुरुष क्रूर, दम्भी, हठी आदि स्वभाव का है तो उसके समक्ष प्रजा में कुछ जननायक प्रकार के पुरुष होते हैं। इन पात्रों का वर्णन भी उपन्यासकार के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार से उस जन-नेता को ही इतिहास का नायक बनाने का यत्न किया जाता है।

अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में स्व० श्री गुरुदत्त ने राजा और राज्य का अन्तर, राजा और प्रजा का पारस्परिक सम्बन्ध, राज्य की सुरक्षा और उसका विकास, इन सब के साधन एवं बल आदि विषयों को विस्तार से वर्णित किया है। उनकी दृष्टि में राजा की अपेक्षा राज्य स्थायी है, इसलिए वे राज्य को अधिक महत्त्व देते हैं। वे प्रजा के सामूहिक हितों के नाम को राज्य कहते हैं। राजा और प्रजा का पारस्परिक सम्बन्ध शासक और शासित का नहीं अपितु प्रतिनिधि और प्रतिनिधेय का सम्बन्ध है। उनकी दृष्टि में अहिंसा की टेर तो केवल बलवान को ही शोभा देती है। निर्बल की अहिंसा की कोई गणना नहीं की जा सकती। राज्य तभी सुदृढ़ हो सकता है जब कि उसका राजा बलशाली हो।

हमने यह भी बताने का यत्न किया है कि उनके ऐतिहासिक उपन्यासों का कथ्य प्राचीन होते हुए भी समकालीन जैसा ही दिखाई देने लगता है। प्रस्तुत खण्ड के उपन्यास 'लुढ़कते पत्थर' के अशोक और 'पुष्यमित्र' के बृहद्रथ के राज्यों की दुर्बल नीतियाँ, उनके विनाश, राज्यों के पतन और जनता के असन्तोष का कारण बनी थीं। क्या यही कुछ हम आज के राजनैतिक वातावरण में नहीं पाते? इस दृष्टि से उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रस्तुत तथ्य उनके विशेष दृष्टिकोण का एक महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। आज भी राज्याधिकारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार, स्वार्थवश पारस्परिक हित-चिन्तन का अभाव, अनीति, अशान्ति और अस्थिरता का साम्राज्य व्याप्त दिखाई देता है। इस उपन्यास के वर्ण्यकाल में तो केवल राजप्रासादों तथा बौद्ध विहारों में ही षड्यन्त्रों की रचना का उल्लेख पाया जाता है, किन्तु आज के वातावरण में तो नगर-नगर में ही नहीं अपितु नगर की प्रत्येक वीथि तथा ग्राम-ग्राम में अपने ही प्रकार के षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं, कहीं राज्य के विरुद्ध तो कहीं प्रजा के विरुद्ध।

स्व० श्री गुरुदत्त ने अपने उपन्यासों के माध्यम से युग के ऐतिहासिक कर्णधारों को अपने वर्ण्यविषय द्वारा प्रमाण-पुष्ट चेतावनी दी है, दुर्बलता की नीति के परित्याग का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आह्वान किया है और उपन्यासों के नायकों के चरित्रों द्वारा उचित और उपयुक्त मार्ग को परिलक्षित किया है। उनका प्रत्येक उपन्यास अन्यतम है। समस्या चाहे ऐतिहासिक हो अथवा राजनैतिक या कुछ अन्य, उन सबका समाधान वे अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने में समर्थ रहे हैं। अपने विस्तृत ज्ञान के आधार पर वे विषय का सम्यक् मन्थन कर पाठक के लिए नवनीत प्रस्तुत कर देते हैं। रोचकता उनके उपन्यासों की अन्य विशेषता है।

—अशोक कौशिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास में यह अन्तर है कि एक घटनाओं का उल्लेखमात्र करता है और दूसरा उन घटनाओं की विवेचना भी। इतिहास-लेखक कल्पना से काम नहीं ले सकता। इसको लिखने के लिए ठोस प्रमाण चाहिएँ। परन्तु प्राचीन काल के इतिहास को लिखने के लिए ठोस प्रमाणों का मिलना प्रायः कठिन हो जाता है।

घटनाओं के लिखनेवाले, सामयिक लेखक अपने विचारानुसार अथवा तत्कालीन राज्यसत्ता के प्रभाव से कुछ घटनाओं का उल्लेख छोड़ जाते हैं। और कभी वे छूटी हुई घटनाएँ ही भावी इतिहास के निर्माण का कारण बन जाती हैं। अतएव कालान्तर में उस काल का इतिहास लिखनेवाले के लिए वास्तविक इतिहास लिखना कठिन हो जाता है।

राज्यसत्ता के साथ-साथ तत्कालीन जनता के मनोभाव भी इतिहास-लेखक को प्रभावित करते रहते हैं। परिणामस्वरूप यह कहना सत्य से दूर नहीं कि इतिहास प्रायः सत्य से दूर होता है।

एक अमेरिकन इतिहास-लेखक ने, जो कालान्तर में उपन्यासकर्त्ता बन गया था, अपना मनोरंजक अनुभव लिखा है। वह एक दिन अपने मकान की खिड़की में खड़ा नीचे बाजार में चलते-फिरते लोगों को देखता हुआ अपना मन बहला रहा था। उसने देखा कि एक पथिक ने अकारण दूसरे पथिक को पीट दिया। दूसरा पथिक उससे भिड़ गया। दोनों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा। बाजार में से गुजरनेवाले बीसियों इस द्वन्द्व को देखने के लिए खड़े हो गए। जिसने झगड़ा प्रारम्भ किया था, वह दुर्बल सिद्ध हुआ और मार खा गया।

इसी समय पुलिस भी आ गई और उन लोगों से, जो उस लड़ाई को देख रहे थे, पूछने लगी कि दोषी कौन है? तमाशा देखनेवाले सभी व्यक्ति उस समय से यह दृश्य देखने लगे थे जब कि लड़ाई तेजी पर थी और दूसरा व्यक्ति आक्रमण करनेवाले को पीट रहा था। इस कारण सबने यही बताया कि दूसरा व्यक्ति ही दोषी है।

इतिहास-लेखक, जो पूर्ण घटना को आरम्भ से ही देख रहा था, दोषी को निर्दोष बताया जाता देख सहन नहीं कर सका और मकान से निकलकर पुलिस-अधिकारी को वास्तविक दोषी के विषय में बताने लगा। उसने बताया कि पहले व्यक्ति ने अकारण बिना किसी प्रकार की भी उत्तेजना के दूसरे पर आक्रमण किया था। परन्तु वहाँ खड़े सभी लोगों ने उस इतिहास-लेखक को झूठा बताया और पुलिस दूसरे व्यक्ति को नगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शान्ति भंग करने के आरोप में पकड़कर ले गई।

वह इतिहास-लेखक घर पर आकर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा कि लोग इतिहास के सम्बन्ध में जो कुछ कहते और लिखते हैं, वह क्या सत्य से दूर नहीं हो सकता? कहा जाता है कि इसके पश्चात् उसने इतिहास लिखने की अपेक्षा उपन्यास लिखने आरम्भ कर दिए।

इन सब कठिनाइयों के होने पर भी ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक को इतिहास का कुछ तो आश्रय लेना ही पड़ता है। यह ठीक है कि उसको कल्पना करने के लिए छूट होती है, परन्तु वह कल्पना भी तो किसी आधार पर ही हो सकती है।

वर्तमान उपन्यास 'लुढ़कते पत्थर' ऐतिहासिक उपन्यास है। एक ऐतिहासिक व्यक्ति का उल्लेख इसमें आया है और इसमें उपन्यास-लेखक के अधिकार से कल्पना से काम लिया गया है। फिर भी लेखक का यह कर्तव्य है कि वह स्पष्ट करे कि उसकी कल्पना किन-किन ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। अतः यहाँ पर एक प्रसिद्ध इतिहासकर्त्ता के लेख में से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं।

डॉक्टर रमाशंकर त्रिपाठी के 'भारत का प्राचीन इतिहास' में से महाराजा अशोकवर्द्धन के विषय में लिखी निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :

"सिंहली वृत्तान्तों से अशोक को राज्यारोहण से पूर्व निर्दयी चित्रित किया गया है। उनमें लिखा है कि उसने अपने सहोदर भाई तिष्य को छोड़कर शेष सब भाइयों (९९ के लगभग) को तलवार के घाट उतार दिया और इस प्रकार रक्त का समुद्र पार कर वह मगध के सिंहासन पर बैठा। अशोक के पाँचवें शिलालेख में भाइयों के प्रति संकेत के आधार पर अनेक विद्वान् सिंहली इतिहासज्ञों के इस वृत्तान्त पर संदेह करते हैं। इस शिलालेख का प्रमाण यद्यपि सर्वथा असन्दिग्ध नहीं है, क्योंकि इसमें वस्तुतः जीवित भाइयों के नहीं वरन् उनके परिवार के प्रति अशोक की कल्याण-बुद्धि का निर्देश मिलता है। तथापि, इसमें संदेह नहीं कि यह दक्षिणी विवरण अतिरंजित है। सम्भव है ऐसा करने में भिक्षुओं का तात्पर्य यह सिद्ध करना हो कि बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होने के पूर्व अशोक अतिक्रूर और भीषण था, परन्तु बौद्ध होते ही वह राक्षस से देवता बन गया। इतनी बात विश्वसनीय अवश्य है कि अशोक का राज्यारोहण स्वाभाविक नहीं हुआ होगा। वह अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र नहीं था। मगध के राज्य का वास्तविक अधिकारी सुषीम अथवा सुमन था···

"उत्तराधिकार का यह संघर्ष सचमुच था, यह इस बात से सिद्ध होता है कि बिन्दुसार की मृत्यु और अशोक के राज्याभिषेक के बीच ३-४ वर्ष का अन्तर है।"

यह है इतिहास। उपन्यासकार इसका अर्थ इस प्रकार लगाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. बौद्ध लेखकों ने किसी उद्देश्य-सिद्धि के लिए इतिहास की तोड़-मरोड़ की है।

२. डॉक्टर रमाशंकर जी का कहना है कि "यह सम्भव है बौद्ध धर्म की महिमा को बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने के लिए अबौद्ध-अशोक को अतिक्रूर चित्रित किया गया है।" लेखक इसका यह परिणाम निकालता है कि यह प्रायः निश्चित ही है कि तत्कालीन लेखकों ने बौद्ध धर्म की महिमा को बढ़ा-चढ़ाकर सिद्ध करने के लिए बौद्ध अशोक के मिथ्या गुण गाए हैं।

३. डॉक्टर रमाशंकर जी का कहना है कि "पंचशिलालेख का प्रमाण सर्वथा असन्दिग्ध नहीं है।" इस पर लेखक का प्रश्न है कि अन्य शिलालेख भी कैसे सर्वथा असन्दिग्ध कहे जा सकते हैं? वास्तव में महाराजा अशोक के राज्य का पूर्ण विवरण इन शिलालेखों और बौद्ध लेखकों के आधार पर ही है। शिलालेख महाराज अशोक ने स्वयं लिखवाए थे। अपना गुणानुवाद प्रायः वही करता है, जो अपराधी हो और जिसकी आत्मा स्वयं को अपराधी मानती हो। विरोधियों का मुख बन्द करने के लिए अशोक ने, अधिक सम्भव है, अपनी झूठी प्रशंसा के लेख लिखा-लिखाकर देशभर में गड़वा दिए हों। बौद्ध श्रावकों के लेखों से महाराज अशोक के विषय में अथवा उस काल के विषय में लिखा हुआ, कितना प्रामाणिक हो सकता है, यह भी डॉक्टर महोदय ऊपर की पंक्तियों में लिख चुके हैं।

मनुष्य किसी यंत्र की भाँति निर्जीव तो है नहीं, जो केवलमात्र 'गीयर' बदल देने से राक्षस से देवता बन सकता है। मनुष्य का व्यवहार संस्कारों के अधीन चलता है। संस्कार एक दिन में नहीं बदल सकते।

इसमें सन्देह नहीं कि भारत में अशोक प्रथम सम्राट् था, जिसने देश में साम्प्रदायिक राज्य स्थापित किया।

उक्त इतिहास-लेखक आगे चलकर लिखता है— "परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अशोक की धम्म-विजय सम्बन्धी नीति के कारण राजनैतिक महत्ता को अवश्य धक्का लगा था···देश का सामरिक उत्साह जब ठंडा पड़ा तो देश विदेशी लुटेरों का शिकार हो चला। भारत की उत्तरी सीमा के समीप ही बाख्त्री (बल्हीक) में ग्रीकों का एक उपनिवेश राज्य था। उस आधार से उन राजाओं का आक्रमण आरम्भ हुआ···शीघ्र ही इन विदेशी चोरों से भारत क्षत-विक्षत हो गया और इसका दूरस्थ कारण निस्सन्देह अशोक की अराजनैतिक करुणानीति थी।"

"अशोक के पुत्रों में केवल तीवर का नाम उसके अभिलेखों में मिलता है, जो सम्भवतः अपने पिता के राज्यकाल में ही मर गया था। अशोक का दूसरा पुत्र जलौक, शैव था···वह कश्मीर चला गया था, वहाँ वह स्वतंत्र हो गया। तीसरा पुत्र कुणाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुयशस्) वायुपुराण के अनुसार, आठ वर्ष तक राज्य करता रहा। परन्तु दक्षिणी ग्रन्थों के लेखों के अनुसार उसे अन्धा मान सिंहासन से वंचित कर दिया गया था।....अशोकावदान में एक दूसरी ही कथा कही गई है। उससे ज्ञात होता है कि संघ को निःशेष धन दान कर देने के कारण मंत्रियों के दबाव से अशोक को कुणाल के पुत्र (अपने पौत्र) सम्प्रति के पक्ष में गद्दी छोड़नी पड़ी।"

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का विचार है कि "मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण अशोक की नीति के विरुद्ध ब्राह्मणों का वैमनस्य था। अशोक द्वारा यज्ञों का निषेध, धम्म-महामात्रों की नियुक्ति और व्यवहार तथा दण्ड की अपनी अविषम समता ने ब्राह्मणों को अपना शत्रु बना लिया था।"

अविवादास्पद बात यह है कि अशोक के काल में बौद्ध सम्प्रदाय को धन और राज्यबल से भारी सहायता मिली थी। इस सहायता का दुरुपयोग हुआ था अथवा नहीं, यह कहना कठिन है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि राज्य की ओर से एक सम्प्रदाय को सहायता मिली तो अन्य सम्प्रदाय के लोग असन्तुष्ट हुए ही होंगे।

दक्षिणी लेखक, जो अशोक के राज्य से बाहर रहनेवाले थे, उसको इतना श्रेष्ठ नहीं मानते, जितना उत्तरी और पूर्वी लेखकों ने माना है। यह स्पष्ट है कि वे राज्य के प्रभाव के आधीन थे और साथ ही वे प्रायः बौद्ध श्रावक ही थे। वे अशोक की कृपा पर पलते थे।

विचारणीय बात यह है कि बौद्ध सम्प्रदाय को अशोक-जैसे बलशाली और समृद्ध सम्राट् की सहायता मिलने पर भी वह पनप नहीं सका। अशोक के निधन के कुछ काल पश्चात् बौद्ध सम्प्रदाय का ह्रास आरम्भ हो गया था।

शुंग परिवार और तदनन्तर गुप्त परिवार के हाथ में भारत का राज्य जाने का कारण अशोक के काल में राज्य की ओर से बौद्ध सम्प्रदाय का पक्षपातपूर्ण समर्थन था। अशोक के मरते ही साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा और इसके १२० वर्षों के भीतर ही विदेशी आक्रमण आरम्भ हो गए। पहले मीनांदर का आक्रमण हुआ और उसके बीस वर्ष पश्चात् ही शकों ने आक्रमण किया। इसके उपरान्त हूणों पार्थियनों ने आक्रमण किया, पश्चात् कुषाण और फिर कनिष्क ने। इन सब आक्रमणों में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि देश के बौद्ध-मतावलम्बी विदेशी आक्रमणकारियों का स्वागत और इनकी सहायता करते रहे थे।

इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि बौद्ध विचारधारा ने देश को विदेशियों की दया पर छोड़ दिया था। देश के विद्वानों ने इसको अनुभव किया, परिणामस्वरूप देश में बौद्धों का घोर विरोध आरम्भ हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह माना जाता है कि भारत से बौद्धमत का उन्मूलन शंकर, कुमारिल भट्ट प्रभृति विद्वानों के खण्डन ने किया था। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि यदि बौद्धों के अपने व्यवहार ने जनता को अपना विरोधी न बना लिया होता तो इन विद्वानों का खण्डन-मण्डन कुछ न कर पाता। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि शंकरादि का धर्मप्रचार देश में होने वाली एक रक्तरंजित क्रान्ति को रोकनेवाला सिद्ध हुआ। यदि यह प्रचार आरम्भ न होता तो जनता का ध्यान सत्यासत्य के निर्णय की ओर न जाकर विरोधियों के नाश की ओर चला जाता।

बौद्ध विचारधारा ने एक ऐसे ढलवाँ पथ का निर्माण किया, जिस पर पत्थर लुढ़क पड़े। बौद्ध, जो आत्मा तथा परमात्मा को प्रकृति से पृथक् कुछ नहीं मानते, वे निर्जीव पत्थर की भाँति बौद्ध विचारधारा के ढालू पथ पर लुढ़कने के अतिरिक्त कर भी क्या सकते थे! ढालू पथ पर चलने के लिए सजीव, प्रकृति से श्रेष्ठ वस्तु, के प्रयास की आवश्यकता होती है। ऐसे व्यक्ति वैदिक विचारधारा के माननेवाले ही हो सकते हैं।

देश का राजनैतिक ह्रास होता देख गुप्त वंश ने इसके उत्थान के लिए भारी प्रयत्न किया था और विदेशी आक्रमणकारियों को मार-मारकर हिन्दुकुश के पार भगा दिया था। इस पराजय के पश्चात् भारत में पुनः चैन की वंशी बजने लगी। परन्तु देश के दुर्भाग्य के कारण हर्षवर्द्धन के काल में पुनः बौद्ध विचारधारा को प्रोत्साहन मिला। यद्यपि हर्षवर्द्धन स्वयं अबौद्ध मतावलम्बियों का भी आदर करता था तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वह स्वयं ह्वान-च्वांग के बौद्धमत विवेचन से प्रभावित हो स्वयं बौद्ध बन गया था। हर्षवर्द्धन स्वयं कैसा था, इससे कुछ विशेष प्रयोजन नहीं। परन्तु जिस बौद्धमत को उसने पुनः सहायता दी, उससे देश में एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति उत्पन्न हो गई।

गुप्तकाल में ब्राह्मणों ने जैनियों के तीर्थंकरों की मूर्तियों को देखकर अपने देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी बना ली थीं और उसी काल में वैष्णव सम्प्रदाय का विकास हुआ था। राम और कृष्ण को भगवान् का अवतार भी इस काल में माना गया। उसके बाद हर्षवर्द्धन ने महात्मा बुद्ध को भगवान् बुद्ध बनाया और इसकी मूर्तियों की स्थापना कराकर भगवान् बुद्ध को विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक मनवा दिया। हर्ष के प्रयत्न से हिन्दू वैष्णव धर्म और महायान एक हो गए। यद्यपि, बुद्ध को इन्द्र और ब्रह्मा से भी ऊँचा रखा गया।

बौद्ध सम्प्रदाय की इस नवीन व्यवस्था ने ब्राह्मण और बौद्ध धर्म में अन्तर नहीं रखा और अधिकांश जन दोनों के दुर्गुणों को लेकर एक धर्म मान बैठे। मत-मतान्तरों की वृद्धि हुई और भारत साम्राज्य टूक-टूक होकर अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया।

इन सबका दुष्परिणाम मुसलमानों के सफल आक्रमणों में प्रकट हुआ। बौद्ध, इन आक्रमणों के समय जैसे कैसे भी थे, वे तुरन्त मुसलमान हो गए। इस्लाम से संघर्ष तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणों द्वारा प्रचालित हिन्दू धर्म को ही करना पड़ा। इस काल के धर्मप्रवर्तकों की शिक्षा के अध्ययन से यह विदित होता है कि हर्षवर्द्धन के प्रयास से हिन्दू समाज में जो कुछ भी विचारधारा घुस आई थी, उन्होंने उसे निकालने का यत्न किया था। ज्यों-ज्यों युद्ध से तटस्थता तथा विरोधियों से समझौता की भावना कम होती गई और परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास बढ़ता गया, हिन्दू समाज मुसलमानों का विरोध करने में समर्थ होता गया।

बौद्ध विचारधारा अहिन्दू विचारधारा थी। इस कारण राज्य द्वारा इसका समर्थन हिन्दू-विरोधी माना गया। देश में बौद्ध विचारधारा दो बार पनपी, प्रथम अशोकवर्द्धन के राज्य के समर्थन से और परिणाम हुआ मिनान्दर, इण्डो-बैक्टीरियन, शक, कुषाण, कनिष्क इत्यादि के देश पर सफल आक्रमण। पुनः इसका उत्थान हर्षवर्द्धन के काल में हुआ और परिणाम हुआ देश पर पठान और मुगलों के सफल आक्रमण। देश का विदेशी प्रभुत्व से उद्धार हुआ पहली बार गुप्त वंश के विपुल प्रयास से और दूसरी बार मराठा और सिख गुरुओं के आन्दोलन से। दोनों बार देश को बचाने का श्रेय हिन्दू विचारधारा वालों को ही मिला।

उन्नीसवीं शताब्दी में भी हिन्दू समाज की ईसाइयों से टक्कर हो गई और उसका विरोध करने में जहाँ ब्रह्मसामाज और आर्यसमाज सफल हुए, वहाँ बौद्ध विचारधारा से प्रभावित लोग ईसाई बन गए।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में अंग्रेज़ों से राजनैतिक संघर्ष चला और इसकी सफलता का श्रेय किसको मिला? यद्यपि कांग्रेस को स्थापित करनेवालों ने इसको एक असांप्रदायिक संस्था बनाने का यत्न किया, जिससे भारत के भिन्न-भिन्न मतों के लोग इस संस्था में सम्मिलित हो सकें। परन्तु इस राजनैतिक संघर्ष को चलानेवाले, वे चाहे कांग्रेस के भीतर हों अथवा बाहर के, हिन्दू ही थे। कोई एकाध विरला अहिन्दू इस आन्दोलन में आया तो वह संघर्ष को सफलता की ओर ले-जाने की-अपेक्षा इसके मार्ग में रोड़े अटकानेवाला ही सिद्ध हुआ।

इस ऐतिहासिक वृत्त का एक ही अर्थ निकलता है कि वैदिक मत में कुछ ऐसी बात है, जो अन्य मतों में नहीं है।

"यूनान मिश्र रोमां सब मिट गए जहाँ से
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।"

इसके साथ यदि यह भी कह दिया जाए कि "इस्लाम, बुद्ध, ईसा के अनुयायी वैदिक मत की टक्कर में आकर स्वयं मिट गए" तो अतिशयोक्ति न होगी।

वैदिक विचारधारा में वह क्या बात है, जो इसको सहस्रों वर्षों से जीवित रखे हुए है और जो अन्य मतों में नहीं है, जिस कारण वे मिट रहे हैं? इसका विवेचन एक महान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य है। इस विवेचन का एक अंशमात्र ही इस पुस्तक का विषय है। इस विवेचन के लिए ही यह पुस्तक लिखी गई है। इसके लिए ऐसे काल की इतिहास-पृष्ठभूमि चुनी है, जब राज्य के पूर्ण बल से बौद्ध धर्म का प्रचार किया जा रहा था। उस समय प्रजा में असन्तोष था, जिसका परिणाम महाराजा अशोक का राजगद्दी से उतारा जाना हुआ।

औरंगज़ेब भारत में इस्लाम की जड़ों में तेल देनेवाला सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार लेखक का मत है कि अशोक का बौद्ध मत को प्रोत्साहन भारत में बौद्धमत के ह्रास का बीजारोपण करनेवाला सिद्ध हुआ है।

पुस्तक में लिखी एक बात का विवेचन रह गया है। वह यह कि क्या बौद्ध विहारों में अनाचार होते थे? योरुप में ईसाई धर्म के मठों की स्थापना बौद्ध विहारों की नकल पर ही हुई थी और उनमें हुए अनाचार, बौद्ध विहारों में हुए अनाचारों की सम्भावना को प्रकट करते हैं। असीम संख्या में युवा पुरुषों तथा स्त्रियों को संन्यासी बनाकर आश्रमों में रखने का स्वाभाविक परिणाम अनाचार ही है। ऐसा माना जाता है कि बौद्ध चैत्यों का नाम विहार, उनमें हो रहे अनाचार को देखकर ही पड़ा होगा।

तदपि यह उपन्यास है। ऐतिहासिक घटनाओं को ज्यों-का-त्यों रखते हुए भी अन्य पात्र एवं घटनाएँ काल्पनिक ही हैं।

सन् १९५६ —गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

गंगा में बाढ़ आ रही थी और उसका जल किनारों पर चढ़ आया था। किनारों की मिट्टी बह जाने से, किनारों पर के पेड़ों की जड़ें नंगी हो रही थीं और पेड़ों के शीघ्र ही गिर जाने की सम्भावना थी।

गंगा के उत्तरी किनारे पर एक घना जंगल था। वहाँ के पशु-पक्षी नदी के उद्दाम प्रवाह को देख भयभीत-से हो रहे थे। वे यह समझने लगे थे कि कदाचित् सम्पूर्ण जंगल ही बाढ़ में बह जाएगा। जो भूमि पिछले दिन जल से बाहर थी, आज जलमग्न हो चुकी थी। कल जो पेड़ उन्नत शिखा किए श्रावण की पुरवाई में लहलहा रहे थे, वे आज जड़ों से उखड़, जल में लुढ़क गए थे। अगणित पक्षियों के घोंसले पेड़ों से गिरकर जल में बह गए थे। उनमें अण्डे देनेवाले, तोता, मैना इत्यादि पक्षी गिरे हुए पेड़ों की, जल से बाहर निकली हुई, शाखाओं पर बैठे शोक में रत चीख-पुकार कर रहे थे।

ऐसे समय एक रथ नदी के किनारे-किनारे पश्चिम से पूर्व की ओर वन में से अपना मार्ग बनाता हुआ चला जा रहा था। रथ में घर का सामान लदा था और उसमें एक २०-२१ वर्ष की युवती बैठी थी। रथ के एक ओर अधेड़ अवस्था का पुरुष अश्व पर सवारी करता हुआ जा रहा था। इस पुरुष के कंधे पर धनुष था और पीठ पर बाणों से भरा तूणीर। उसकी कटि में अढ़ाई हाथ का लम्बा खड्ग लटक रहा था। रथ के दूसरी ओर एक भील जाति का वृद्ध पैदल चल रहा था। वेश-भूषा से वह सेवक प्रतीत होता था।

वह पथ, जिस पर रथ चल रहा था, गंगा के तट के साथ-साथ चला गया था, कहीं-कहीं वह तट के साथ ही बाढ़ में बह गया था। अतः वहाँ से रथ को आगे ले जाने के लिए स्वयं मार्ग बनाना पड़ता था।

युवती की मुद्रा शोकाभिभूत थी। अश्वारोही भी गम्भीर मुद्रा बनाए हुए था। युवती रथ के साथ-साथ चलते हुए अश्वारोही से कभी-कभी कुछ बात करती जाती थी।

आगे चलकर पथ ठीक आ गया था क्योंकि गंगा का प्रवाह पथ से दूर हो गया था। मार्ग विस्तृत होने के कारण अश्वारोही घोड़े को रथ के समीप ले आया था। युवती के मन में उठ रहे विचारों को दबाने के लिए वह कहने लगा, "आशा है कि आगे मार्ग ठीक रहेगा और हम मध्याह्न तक नगर में पहुँच जाएँगे।"

"मैं तो यह चिन्ता कर रही हूँ" युवती ने कहा "कि इसका क्या विश्वास है कि जहाँ हम जा रहे हैं वहाँ भी शान्तिपूर्वक रह सकेंगे?"

"देखो भामा! गंगा में बाढ़ आई हुई है। कितने ही तो इसमें पेड़ बह गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने ही पक्षियों के घोंसले उजड़ गए हैं। सुना नहीं था उस सुग्गे का करुण क्रन्दन? हम भी तो बाढ़ में बह रहे हैं। कहाँ किनारा लगेगा, कैसे कहा जा सकता है! क्या पता कि वह स्थान, जहाँ हम जा रहे हैं, हमारे जाने से पूर्व ही बाढ़ में बह चुका हो! यह भी नहीं कहा जा सकता कि हमारे जाने के पश्चात् वह जलमग्न हो जाए।"

"यह बाढ़ तो प्राकृतिक है पिताजी! हमारे साथ तो राज्य की ओर से अन्याय हुआ है।"

"राज्य जब जनसाधारण की इच्छा पर चलने लगता है तो उसका व्यवहार निर्जीव प्रकृति के समान ही हो जाता है। जनता का व्यवहार लुढ़कते पत्थर के समान होता है। जिधर लुढ़क गई उधर लुढ़कती गई।

"यही कारण था कि वैदिक राजनीति में राजा को मन्त्रणा देने का अधिकार केवल विद्वान् ब्राह्मण को ही दिया गया था। यहाँ तो वह बौद्ध संघ राजा का मंत्रदाता बना हुआ है, जिसमें प्रायः अशिक्षित, संसार में असफल और भीरु व्यक्ति सम्मलित हैं। ये लोग राज्य को भी निर्जीव प्रवाह का रूप दिए हुए हैं। युक्ति, न्याय, धर्म इन अशिक्षितों की इच्छा का दूसरा नाम है।

"हाँ, एक बात है। हम वन के पशु नहीं जो अपना सर्वस्व खो देने पर केवल चीख-पुकार ही करके रह जाते हैं। हम मानव हैं, हम अपनी अवस्था सुधारने का यत्न करेंगे।"

एक लम्बी साँस खींचकर वह युवती मौन हो गई। रथ चलता गया और उसके साथ चल रहे अश्वारोही एवं सेवक भी चलते गए। सूर्य सिर पर पहुँच, पश्चिम की ओर ढलने लगा था। आकाश में बादल छा रहे थे और कभी-कभी सूर्य की किरणों को आच्छादित कर, कुछ शीतलता प्रदान कर देते थे। धूप रुक जाने से पथिक सुख का अनुभव करते थे। जब रथ वन को पार करके मैदान में पहुँचा उस समय दिन के तीसरे प्रहर का प्रारम्भ था। दूर नगर की अट्टालिकाएँ दिखाई दे रही थीं। साथ चल रहे सेवक ने कहा, "स्वामी, वह है विशालापुरी।"

"हूँ।"

बस इतनी कुछ ही बात हुई और राही नगर की ओर बढ़ते गए।

विशालापुरी गंगा के उत्तरी तट पर एक समृद्ध नगरी थी। विस्तृत पथ, ऊँचे द्वार, पक्के मकान, सामान से भरपूर दुकानें, हाथी, घोड़े, रथ और उन पर रंग-रंग के सुन्दर वस्त्र पहने आने-जानेवाले। ये सब नगर के बाहर से ही दिखाई देने लगे थे। नगरद्वार से कुछ अन्तर पर ही एक विशाल चैत्य मिला, जिसके चारों ओर की ऊँची दीवारें, उसके अन्तर्भाग को पथिकों की दृष्टि से ओझल कर रही थीं। द्वार इतना ऊँचा था कि उसमें से हाथी सुगमता से आ-जा सकता था। द्वार के कपाट बन्द थे। केवल खिड़की खुली थी जिसमें से सिरमुँडे पीतवसन-धारी श्रावकों को आता-जाता देखकर ही इसके चैत्य होने का ज्ञान होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वह रथ उस विहार के द्वार के आगे से निकला तो अश्वारोही ने इसकी ओर देखकर कहा, "अब तो कोई ऐसा नगर और ग्राम नहीं बचा, जहाँ इस प्रकार के आलस्य और प्रमाद के अड्डे न बन गए हों।"

वह युवती रथ में बैठे-बैठे सो गई थी और उसने अश्वारोही का कथन सुना नहीं था। अश्वारोही पीछे आ रहे सेवक को सम्बोधन करके कहा, "चक्रिक! जानते हो, नगर का पांथागार किस ओर है?"

"स्वामी! विदेशियों के लिए तो नगरद्वार के बाहर है और देशवासियों के लिए नगरद्वार को लाँघकर।"

"किसमें ठहरना उचित होगा?"

"विदेशियों में रहना तो उचित नहीं प्रतीत होगा, यद्यपि वहाँ स्थान खुला मिल सकता है।"

"तो भीतर के ही पांथागार में रहेंगे।"

ये लोग नगरद्वार लाँघकर भीतर के पांथागार के द्वार पर पहुँचे। वहाँ नाम-धाम लिखा जाना था। अश्वारोही ने नीचे उतर घोड़े की लगाम अपने सेवक के हाथ में दी और द्वारपाल के पास जाकर पूछने लगा, "महाशय! क्या निवास के लिए स्थान मिल सकेगा?"

"अवश्य भद्र! आगार संख्या एक में अध्यक्ष महोदय मिलेंगे। उनसे बातचीत करिए।"

अश्वारोही वहाँ जा पहुँचा। अध्यक्ष उसका धनुष-बाण और खड्ग देखकर विस्मय से पूछने लगा, "महानुभाव! क्या चाहते हैं?"

"निवास के लिए स्थान।"

"अकेले हैं क्या?"

"नहीं। मैं हूँ, मेरी पुत्री है और सेवक है। दो आगार साथ-साथ मिल जाएँ तो ठीक रहेगा।"

अध्यक्ष ने बही खोली और लेखनी को मसीपात्र में डाल लिखने के लिए पूछने लगा—

"कृपया नाम लिखवाइए।"

"वज्रबाहु।"

"कहाँ से पधारे हैं?"

"पाण्ढरी गाँव से।"

"अपना पूर्ण परिचय लिखवाइए।"

"पाण्ढरी गाँव में शिवमन्दिर का पुजारी था। अब वह मन्दिर विहार बना लिया गया है, इसलिए यहाँ नगर में जीविकोपार्जन के लिए आया हूँ।"

"पुजारी हैं आप? और यह धनुष-बाण?" अध्यक्ष ने विस्मय में पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब पाण्ढरी गाँव पूर्ण रूप से उपासक हो गया तो मन्दिर का पुजारी भूखा मरने लगा। तब उसने मृगया के लिए ये साधन बनाए और भोजन का प्रबन्ध करने लगा। खेतों में से अन्न, शाकभाजी और मृगया से मांस उपलब्ध कर निर्वाह होता था। कुछ दिनों बाद मिथिला के आयुक्तिक का आदेश हुआ कि मन्दिर विहार बनाया जाता है अतः पुजारी उसको छोड़ दे।"

अध्यक्ष ने इस कथन पर टीका-टिप्पणी न करके आगे प्रश्न किया—

"लड़की का क्या नाम है?"

"भामिनी।"

"आयु?"

"इक्कीस वर्ष।"

"इसकी माँ?"

"देहान्त हो चुका है।"

"सेवक का नाम?"

"चक्रिक।"

"आगार संख्या २५ तथा २६ में रह सकते हैं।"

रथ के पांथागार के सम्मुख खड़े होने से भामिनी की नींद खुल गई। वह सीधी होकर बैठ गई और रथ को खड़ा पा प्रश्नभरी दृष्टि से चक्रिक की ओर देखने लगी। चक्रिक ने उसके देखने का अभिप्राय समझकर बताया, "यह पांथागार है बिटिया! पुजारी महाराज स्थान का प्रबन्ध करने के लिए भीतर गए हैं।"

भामिनी रथ में बैठी-बैठी थक गई थी। इस कारण लपककर वह रथ से उतर आई। वह अभी उतरकर अँगड़ाई ही ले रही थी कि एक बौद्ध भिक्षुक नगरद्वार से भीतर आया और पांथागार के द्वार पर खड़ा होकर भामिनी की ओर देखने लगा।

श्रावक अभी अल्प-वयस्क ही था। उसका सिर मुँडा हुआ था। दाढ़ी-मूँछ यदि थे, तो वे सफाचट थे। पीतवस्त्र पहने, हाथ में कमण्डलु लिये वह रथ और रथ से उतरकर खड़ी हुई भामिनी की ओर उत्सुकतापूर्वक देखने लगा। भामिनी ने भी उस युवक को देखा और इतनी कम आयु में उसे संन्यास धारण किए हुए देख विस्मय में वह चक्रिक से बोली, "दया आती है इस श्रावक को देखकर।"

चक्रिक ने भी युवक की ओर देखा। युवक इन दोनों से कुछ दूरी पर खड़ा था। इनकी भाव-भंगी को देख वह यह समझ रहा था कि दोनों उसके विषय में ही बात कर रहे हैं। फिर भी वह इतनी दूरी पर था कि सुन नहीं सकता था कि वे क्या कह रहे हैं।

चक्रिक उस युवक को देखकर बोला, "बहुत ही ओजस्वी बालक प्रतीत होता है। बेचारे का जीवन नष्ट हो रहा है।"

"वह हमारी ओर क्यों देख रहा है?"

"हम विदेशी हैं। कदाचित् हमारी अवसन्न अवस्था का अनुमान लगाकर मन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143 GUR-L
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Central Library 167974 Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

सहानुभूति अनुभव कर रहा है।"

"पर यह भी तो मोह है! क्या श्रावक हो जाने के पश्चात् भी मोह रहता है?"

"बिटिया! मोह तो मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। श्रावक हो अथवा गृहस्थी हो, सबके भीतर यह रहता है। प्रश्न तो केवल यह है कि किसका किससे मोह?"

तभी वज्रबाहु आ गया। वह भामिनी के समीप आकर बोला, "जाग पड़ी हो बेटी? आओ, आगार २५, २६ मिल गया है। एक मास तक यहाँ रह सकेंगे। इस बीच नगर में कोई भवन ढूँढ लेंगे।"

चक्रिक ने सामान भीतर ले चलने के लिए सारथि को कहा और स्वयं वह अश्व को घुड़साल में बाँधने के लिए ले गया। वज्रबाहु और भामिनी द्वार के भीतर चल पड़े। द्वार पर खड़े श्रावक ने कमण्डलु आगे बढ़ाकर कहा, "भिक्षां देहि भन्ते!"

वज्रबाहु मुस्कराया और श्रावक की ओर देखकर कहने लगा, "भद्र! क्या राजकोष रिक्त हो गया है, जो पथिकों से भिक्षा माँगने की आवश्यकता आन पड़ी है?"

युवक ने आँखें नीची किए हुए कहा, "भगवन्! भिक्षा से प्राप्त दान पवित्र माना गया है।"

"हम ऐसा नहीं मानते। यह भिक्षा माँगनेवालों को हीन, दीन और निर्लज्ज बना देती है।"

फिर भी भामिनी ने अपने आँचल से दो टके निकालकर श्रावक के कमण्डलु में डाल दिए। श्रावक ने 'बुद्धं शरणं गच्छ, संघं शरणं गच्छ, धम्मं शरणं गच्छ' कहकर आशीर्वाद दिया।

वज्रबाहु पुनः मुस्कराया और द्वार के भीतर प्रवेश कर आगार की ओर चल पड़ा। भामिनी उसके साथ थी। वह श्रावक भी उनके पीछे-पीछे कुछ अन्तर पर चल रहा था। वज्रबाहु ने भामिनी से पूछा, "इसको भिक्षा देने से क्या मिला तुमको?"

"क्यों?"

"इनको देने से कुछ लाभ नहीं होता।"

"दान देने मात्र से ही चित्त को शान्ति मिलती है।"

"हाँ, यह तो ठीक है, परन्तु जब विदित हो कि इससे भी अधिक योग्य पात्र संसार में हैं और उनको देने के लिए हमारे पास कुछ नहीं बचा, तो शान्ति के स्थान पर अशान्ति ही होगी न?"

"उस समय यदि मेरे पास देने को नहीं होगा, तब भी अशान्ति नहीं होगी!"

वज्रबाहु चुप रहा। वह लड़की के मन की भावनाओं को दबाना नहीं चाहता था। वह शिक्षा का तात्पर्य नियन्त्रण नहीं मानता था। शिक्षा को वह प्रेरणामात्र ही मानता था। इस कारण अपने मन की बात कहकर वह चुप हो गया। परन्तु उस श्रावक का विषय इतने में ही समाप्त नहीं हो गया। जब ये लोग अपने आगार के सम्मुख पहुँचे तो वह श्रावक भी उनके समीप आ खड़ा हुआ। वज्रबाहु ने सारथि को सामान भीतर रखने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए कहा और भाड़ा देने के लिए जेब से मुद्राएँ निकालने लगा। उस समय श्रावक ने कहा, "मैं इस कारण चला आया हूँ कि यदि श्रीमान् को किसी विषय में ज्ञान प्राप्त करने अथवा सहायता की आवश्यकता हो तो बता सकूँ और सहायता कर सकूँ।"

"धन्यवाद। हमारे साथ हमारा सेवक चक्रिक है, जो इस नगर से भली-भाँति परिचित है। वह २० वर्ष तक इस नगर में यहाँ के एक प्रसिद्ध सेठ की सेवा में रह चुका है।"

"तब तो ठीक है। फिर भी किसी अधिकारी से मिलना हो अथवा उससे कोई प्रयोजन सिद्ध करवाना हो तो सहायता कर सकता हूँ।"

"परन्तु····आप क्यों सहायता करेंगे?"

"सेवा हमारे वर्ग का धर्म है।"

"धन्यवाद। क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ?"

"मेरा नाम निरुपम भद्रायण है। यों तो मैं शिक्षित युवक हूँ और लिखने-पढ़ने के कार्य में भी सहायक हो सकता हूँ, तो भी हम श्रावकों का कार्य भूले-भटकों को मार्ग-दर्शन कराना ही है।"

"तो तुम सबको मार्ग का दर्शन कराते हो?"

"जहाँ तक सम्भव है और जितनी मेरी सामर्थ्य है, उसके अनुसार मैं सेवा और सहायता करता हूँ।"

अभी तक भामिनी को बौद्धों का अत्यन्त कुत्सित स्वरूप ही विदित था। वह पाण्डरी गाँव में भिक्षु चिदानन्द के व्यवहार को देख चुकी थी। उसी के कारण उन्हें गाँव के मन्दिर से निकलना पड़ा था। भिक्षु चिदानन्द ने बहुत यत्न किया था कि भामिनी को श्राविका बना ले। इसमें असफल होने पर उसने ही मिथिला के आयुक्तिक की सहायता से उनके मन्दिर को विहार बनवा दिया था।

निरुपम के साथ वार्तालाप करने पर भामिनी को अपनी धारणा निर्मूल प्रतीत हुई।

जब वे अपने आगारों में अपना सामान खोलकर यथास्थान रखकर विश्राम कर चुके तो नगर-निरीक्षण के लिए तैयार हो गए। उस समय भामिनी ने अपने मन में उमड़ रही बात प्रकट कर दी— "पिताजी, यहाँ जो श्रावक मिला था, वह तो चिदानन्द से सर्वथा भिन्न प्रकार का प्रतीत होता था!"

"हाँ, परन्तु यह भेद वैसा ही है जैसा गाँव और नगर का होता है। मिट्टी दोनों में एकसमान ही लगी है। जहाँ गाँव में मिट्टी और काष्ठ से कुटिया ही बन पाई है वहाँ नगर में इन पदार्थों से महल बन गए हैं।"

"तो आपका कहना है कि भेद बाह्य आकार का ही है?"

"हाँ, सिद्धान्ततः दोनों समान ही हैं। देखो भामा! जहाँ तक व्यक्तिगत विचारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सम्बन्ध है, वे कुछ भी हो सकते हैं। कोई परमात्मा के अस्तित्व को माने अथवा न माने। कोई आत्मा को भी माने अथवा न माने, परन्तु मनुष्य तो अपने व्यवहार से ही, जो इन विचारों के अनुरूप अथवा किसी अन्य कारण से बने हों, जाना जाता है।

"चिदानन्द हो या निरुपम, दोनों बौद्ध संघ के अंग हैं। जैसा बौद्ध संघ का व्यवहार होगा वैसा ही इनका भी होगा। विपरीताचरण से ये संघ द्वारा दूध में से मक्खी की भाँति निकाल दिए जाएँगे।

"निरुपम भिक्षा-वृत्ति करने आया है अथवा भेदिया बनकर आया है, यह कहना कठिन है। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वह संघ के काम से आया है।"

भामिनी वज्रबाहु की बात का उत्तर तो नहीं दे सकी, फिर भी उसकी सहानुभूति उस श्रावक युवक के साथ ही थी। उसके विषय में उसकी धारणा थी कि वह सभ्य है, सुशील है और विनम्र है।

वे तीनों नगर में भ्रमणार्थ गए। विशालापुरी मिथिला में द्वितीय श्रेणी का नगर था। प्रथम श्रेणी की मिथिलापुरी थी। विशालापुरी गंगा के तट पर एक ऊँचे स्थान पर बसी हुई थी। वह व्यापार का केन्द्र थी। गंगा के दक्षिण में मगध देश था जो धन-धान्य से परिपूर्ण था। मगध की राजधानी पाटलिपुत्र, विशालापुरी से ४० कोस पूर्व की ओर गंगा के दक्षिण-तट पर बसी थी। दोनों नगरों में नौकाओं द्वारा व्यापार होता था। विशालापुरी मिथिला की मण्डी कहलाती थी और पाटलिपुत्र तो मगध का शिरोमणि नगर था ही। यहाँ नदी-तट पर बड़े-बड़े छाजनों के नीचे, जाने तथा आनेवाले माल के ऊँचे-ऊँचे अम्बार लगे थे। कहीं तो नौकाओं पर माल लादा जा रहा था और कहीं उतारा जा रहा था। सैकड़ों कर्मचारी भाग-दौड़ में व्यस्त थे।

गंगातट के साथ-साथ पक्का बाँध बना हुआ था और उस बाँध पर घूमने-फिरने के लिए मार्ग बना हुआ था। वज्रबाहु, भामिनी और चक्रिक तीनों उस बाँध पर चले गए और गंगातट की शोभा निहारते रहे। जब वे उस स्थान पर टहल रहे थे, भामिनी की दृष्टि उसी पीतवसनधारी श्रावक निरुपम पर पड़ी। वह बाँध पर बने घाट पर बैठा हाथ-पाँव प्रक्षालन कर रहा था। भामिनी ने उसकी ओर संकेत करके उसे अपने पिता को दिखाया तो वज्रबाहु ने कहा, "उपासना में बैठने लगा प्रतीत होता है।"

वे उसके पास से होकर आगे निकल गए। बाँध पर से वे नगर के बाज़ार में चले गए। वहाँ माल से लदी दूकानों को देख वे चकित रह गए। सोने-चाँदी के बर्तनों, भूषणों और ज़रीदार कपड़ों, दरियों, कालीनों तथा अन्न के भण्डार भरे पड़े थे। मिष्ठान्न की दूकानें तथा पाकशालाएँ भी पर्याप्त संख्या में थीं। जैन मंदिर तथा बौद्ध उपासनागृह प्रचुर संख्या में थे और कहीं-कहीं शिव-मन्दिर भी दिखाई देते थे। भव्य भवन, विशाल उद्यान, विस्तृत पथ, गगनचुम्बी कलश और उच्च अट्टालिकाएँ विशालापुरी की शोभा थीं।

इनको नगर में भ्रमण करते-करते सायंकाल होने लगा तो वे पांथागार की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौट पड़े। अब पुनः दूरी पर उनको निरुपम जाता दिखाई दिया।

पांथागार में पहुँच और भोजन से निबटकर वे सो गए।

अगले दिन स्नानादि से निवृत्त हो वे जलपान कर रहे थे कि आगार के बाहर से आवाज़ आई, "भिक्षां देहि!"

भामिनी उठी और भिक्षुक को दो टके देने चली गई। भिक्षुक वही श्रावक निरुपम था। भामिनी ने दो टके श्रावक के कमण्डलु में डाले तो श्रावक ने आशीर्वाद दिया, "बुद्धं शरणं गच्छ, संघं शरणं गच्छ, धम्मं शरणं गच्छ!"

श्रावक के ऐसा कहने पर भामिनी की हँसी निकल गई। श्रावक ने आँख उठाकर उसकी ओर देखा। जब दोनों की आँखें मिलीं तो श्रावक का मुख रक्तवर्ण हो गया। उसने तुरन्त आँखें नीची कर लीं और कहा, "बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि।" और साथ ही अपने पाँव पीछे की ओर घुमा लिये।

उसके घूमते ही भामिनी ने कहा, "देवता! यह अशुद्ध उच्चारण क्यों करते हो?"

निरुपम वहीं खड़ा हो गया और मुँह आगे को किए हुए ही बोला, "क्या अशुद्ध है देवी?"

"शब्द धम्म नहीं, धर्म है।"

"बोलचाल की भाषा में धर्म को धम्म ही कहते हैं, और हम जनसाधारण की बोलचाल की भाषा में ही अपना प्रचार करते हैं।"

"तो आप भगवान् से प्रार्थना न करके जनता में प्रचार कर रहे हैं।"

"नहीं....हाँ ....नहीं ....कुछ नहीं।" यह कहता हुआ वह विदा हो गया।

भामिनी हँसती हुई भीतर चली गई। वहाँ पहुँच उसने अपने पिता से श्रावक की घबराहट और उसके प्रति किए गए उपहास का वर्णन किया। यह सब सुनकर वज्रबाहु और चक्रिक भी हँसने लगे।

"न जाने यह श्रावक हमारे पीछे क्यों लगा है?" वज्रबाहु ने कहा।

"हमसे क्या ले लेगा! दो टके में कौन-सा साम्राज्य बना लेगा?" भामिनी का उत्तर था।

"मुझको तो इन बौद्धों पर सन्देह बना ही रहता है। ये नास्तिक हैं। जब इनसे कोई बात बिगड़ जाती है तो उसी को ठीक बताते हुए उसका कारण और युक्ति बताने लगते हैं।"

चक्रिक नगर में कोई अच्छा-सा मकान ढूँढने लग गया और बज्रबाहु जीविकोपार्जन का कोई उपाय। वज्रबाहु के मन में एक बार विशालापुरी के आयुक्तिक से कोई काम पाने की इच्छा हुई, परन्तु मन में बौद्धों के प्रति घृणा ने इस इच्छा को दबा दिया।

श्रावक निरुपम नित्य पांथागार में आता और भिक्षा प्राप्त करके चला जाता। वह भिक्षाकार्य में वज्रबाहु के आगार के सामने आकर भी आवाज़ देता, "भिक्षां देहि देवी!" भामिनी भी कभी अन्न, कभी धन उसे भिक्षा में दे देती। भिक्षु आँखें नीची किए खड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता और भामिनी उसको जी भरकर देखती। इसी क्रम में एक मास व्यतीत होने को हुआ।

एक दिन भिक्षु ने भिक्षा लेने के पश्चात् आँखें नीची किए हुए ही पूछा—

"देवी ! कोई मकान निवास के लिए नहीं मिला न ?"

"नहीं। आपने कैसे जाना ?"

"पांथागार का अध्यक्ष कह रहा था। नियमानुसार आप एक-दो दिन ही और यहाँ टिक सकेंगे।"

"हाँ, वह हमको पहले ही सचेत कर गया है।"

"तो कहाँ जाएँगे आप लोग ?"

"अभी निर्णय नहीं किया।"

"यदि स्वीकार करें तो मैं कुछ सहायता करूँ ?"

"कर सकते हैं तो अवश्य करें। हमारी हार्दिक इच्छा है कि हम इसी नगर में निवास करें। पिताजी को कार्य मिल रहा है। इससे निर्वाह तो होने लगेगा, परन्तु निवास की समस्या सुगम प्रतीत नहीं होती।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि आपके सेवक को नगर के विषय में कुछ अधिक ज्ञान नहीं। इसी कारण वह अभी तक मकान नहीं खोज पाया।"

"नहीं, यह बात नहीं ! मकान तो उसने कई देखे हैं, परन्तु हम देहात के मुक्त वातावरण में रहनेवालों को कोई पसन्द ही नहीं आता।"

"मैं कल देखकर आपको उपयुक्त निवासगृह का पता बताऊँगा।"

इतना कहकर आज फिर उसने भामिनी की आकृति की ओर देखा। दोनों की आँखें चार होते ही उनके मुख पर लाली दौड़ गई। श्रावक ने तुरन्त ही आँखें नीची कर लीं। भामिनी को ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो उड़ते हुए युगल कपोतों को दबोचकर भूमि पर बैठा दिया गया हो। वह देखती ही रह गई और भिक्षु अपना पथ नापता चला गया।

भामिनी आगार के भीतर जाकर अपने हृदय की धड़कन पर विस्मय करने लगी। वह सोचने लगी कि क्यों उसने श्रावक के कुछ देर और ठहरने और उससे बात करने की इच्छा की ? बात तो एक क्षण में ही समाप्त हो गई थी। उसके पश्चात् श्रावक को चला ही जाना चाहिए था। फिर भी उसने अपने मन में ऐसी इच्छा की ? वह समझ नहीं सकी।

वज्रबाहु अपने आगार में लौटकर आया तो पूछने लगा, "भामा ! चक्रिक आया कि नहीं ?"

"नहीं पिताजी !"

"एक कार्य में तो सफलता मिली है। जैन पुस्तकालय में पुस्तकाध्यक्ष का कार्य मिल गया है। पचास स्वर्ण मासिक वेतन मिलेगा। अब मकान की समस्या शेष रह गई है। कोई मकान हमको शीघ्र ही ले लेना चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भिक्षुक निरुपम आया था और कहता था कि वह कल तक हमारे योग्य मकान ढूँढकर बताएगा।"

"तो वह अभी भी यहाँ आता है?"

"वह नित्य भिक्षा-वृत्ति करने आता है। आज पांथागार के अध्यक्ष ने उसको बताया है कि हमको ये आगार छोड़ने पड़ेंगे। इससे उसने स्वयमेव हमारी सहायता करने को कहा है।"

यह सुनकर वज्रबाहु का मुख गम्भीर हो गया। वह कितनी ही देर तक मौन धारण किए अपने आसन पर बैठा रहा। भामिनी ने यह देखा तो इसका कारण जानने के लिए पूछा, "क्या है पिताजी! आप क्या विचार कर रहे हैं?"

"मैं तुम्हें एक भेद की बात बताना चाहता हूँ। वह अभी तक मैंने तुमसे छिपाकर रखी हुई थी। मैं तुमको अभी तक बालिका ही समझता था, परन्तु आज मुझको यह अनुभव होने लगा है कि अब तुम सज्ञान हो गई हो। इसलिए तुमको अब अपने तथा तुम्हारे माता-पिता के विषय में बताना आवश्यक समझता हूँ।"

"अपने माता-पिता के विषय में? तो क्या मैं आपके विषय में सब-कुछ नहीं जानती?"

"नहीं। बहुत कम जानती हो। सुनो! तुम मेरी लड़की नहीं हो, मैं तुम्हारा संरक्षकमात्र हूँ। तुम ब्राह्मणकन्या नहीं, अपितु राजकन्या हो।

"कलिंग जनपद के गणपति श्री केशव माधव, मगधाधिपति महाराज अशोकवर्द्धन से युद्ध के पक्ष में नहीं थे, परन्तु मगधाधिपति ने हठ किया कि कलिंग राज्य मगध राज्य का अंग बन जाए जो गणपति स्वीकार नहीं कर सके। गणपति मित्रता चाहते थे और महाराज अशोक आधिपत्य। फिर भी कलिंग ने युद्ध आरम्भ नहीं किया। युद्ध मगधाधिपति की ओर से आरम्भ हुआ। कलिंग पर आक्रमण हुआ और कलिंग-सैनिकों तथा नागरिकों के महान् प्रयत्न पर भी मगध की ही विजय हुई। इस युद्ध में गणपति केशव तथा कलिंग देश के दो लक्ष सैनिक मारे गए और मागधों ने कलिंग की राजधानी तोसाली को लूट लिया, वहाँ की स्त्रियों का अपहरण किया और लाखों को मौत के घाट उतार दिया। अन्त में नगर को आग लगाकर भस्म कर दिया।

"गणपति केशव माधव की पत्नी तिलोत्तमा गर्भवती थी। जब विजय से उन्मत्त मागधी सैनिक नगर में उत्पात करने लगे तब महारानी ने मुझको बुलाकर अपनी अवस्था और सन्तान की रक्षा करने की इच्छा प्रकट की। वे अपने पति की वंश-परम्परा की रक्षा करना चाहती थीं।

"मैं गणपति के आगार में शिवमन्दिर का पुजारी था। जब रानी जी का बुलावा आया तब तक सैनिक दुर्ग के भीतर घुस चुके थे और प्रासाद की दास-दासियाँ अपनी जान बचाने के लिए भाग रही थीं। उस समय मन्दिर को और मेरे गृह को आग लग चुकी थी। मेरी धर्मपत्नी पर कुछ मागधों ने बलात्कार करने का यत्न किया था, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने अट्टालिका की छत से कूदकर अपनी मर्यादा बचाई थी। फिर भी मैं रानी जी के आदेश की अवहेलना नहीं कर सका था। मैं अपने स्वामी की होने वाली सन्तान की रक्षा के लिए रानी जी के सम्मुख जा पहुँचा। रानी जी दासियों के वस्त्र धारण कर भाग निकलने के लिए तैयार खड़ी थीं।

"मैं मन्दिर में रहनेवाले अपने सम्बन्धियों की और प्रासाद की अन्य अबलाओं का चीत्कार सुन रहा था, परन्तु मुझे कलिंग के गणपति की एकमात्र सन्तान की रक्षा में अपनी रक्षा से अधिक सार प्रतीत हुआ। मैं महारानी जी को प्रासाद के पिछवाड़े की ओर ले-जाकर भागने की योजना पर विचार करने लगा। यह कार्य उस समय की परिस्थिति में अति दुष्कर था। नगर से बाहर जाने का मार्ग मागधी सेना में से होकर ही जाता था।

"मुझको एक युक्ति सूझी। एक मागधी सैनिक कलिंग के एक सौदागर को मारकर उसकी जेबें टटोल रहा था। मैंने इधर-उधर देखा। एक मृत सैनिक का शव दिखाई दिया। शव के हाथ में खड्ग था। मैंने वह खड्ग लिया और मागधी सैनिक पर, जो उस समय अपनी क्रिया में रत था, टूट पड़ा। मेरे एक ही वार से उसका सिर धड़ से अलग हो गया। तदनन्तर मैं उस मागधी सैनिक के शव को घसीटकर ओट में ले गया तथा उसके वस्त्र उतारकर स्वयं पहन लिये। इस प्रकार एक मागधी सैनिक का रूप धारण कर रानी जी को अपनी योजना बता, उनका हाथ पकड़कर चल पड़ा। जैसी आशा थी, ठीक वैसा ही हुआ। पूर्ण नगर धू-धू करता हुआ जल रहा था। नागरिक चीत्कार करते हुए घरों से निकल अपनी जान बचाने के लिए भागने का यत्न कर रहे थे। सैनिक उनकी हत्या कर रहे थे।

"मैं मागधी सैनिक के रूप में था और रानी जी को हाथ से पकड़कर ऐसे घसीटता हुआ ले-जा रहा था, मानो वे मेरा लूट का माल थीं। इस कारण लूट मचा रहे सैनिकों ने मुझको रोकने का यत्न नहीं किया।

"फिर भी नगरद्वार पर कठिनाई उपस्थित हो गई। वहाँ भारी संख्या में विजेता सैनिक खड़े थे। उनके नायक ने मुझसे पूछा, "इसे कहाँ लिये जा रहे हो?"

"शिविर में।"

"वहाँ रख सकोगे?"

"मैं इसका अर्थ नहीं समझा। इस कारण थोड़ा विचार कर बोला, महाराज से स्वीकृति ले लूँगा।"

"तो यह स्त्री महाराज न रख लेंगे? इतनी सुन्दर स्त्री भला तुम्हारे-जैसे सैनिक के योग्य कैसे हो सकती है?"

"मुझको अपने भाग्य की परीक्षा करने दो।"

"जा सकते हो।"

"जब मैं द्वार से निकलने लगा तो नायक का अपने साथी के प्रति कहा हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथन सुनाई दिया—

"यह मूर्ख महाराज को नहीं जानता। मैं तो ऐसी सुन्दर स्त्री को महाराज-जैसे रसिक के सम्मुख ले-जाने से पूर्व सौ बार विचार करूँ।"

"परन्तु वह स्त्री तो उसके साथ ऐसे जा रही है, जैसे उसने ही इसको पसन्द किया हो।"

"देखें क्या बनता है!"

"नगर से बाहर निकल एक पेड़ के नीचे अँधेरे में खड़े होकर हम विचार करने लगे कि किधर जाएँ? जब हम वहाँ खड़े थे, उसी समय आततायी स्वयं घोड़े पर सवार होकर नगर की ओर जाता दिखाई दिया। उसके पीछे पचास के लगभग अन्य सैनिक अश्वों पर सवार जा रहे थे। जानेवालों के आगे-आगे दो अश्वारोही हाथों में प्रकाश-शलाकाएँ लिये हुए प्रकाश कर रहे थे। उनको आते हुए देख मैं महारानी जी को लेकर मार्ग से दूर हट गया और पेड़ों के पीछे छुप गया।

"हम रातभर चलते रहे। दिन हमने जंगल में छिपकर बिताया। पूर्ण देश में मागधी सैनिक फैल गए थे और सर्वत्र वही कुछ कर रहे थे जो उन्होंने राजधानी में किया था। इस प्रकार दिन को छिपते और रात को चलते हुए हम जौगढ़ जा पहुँचे। वहाँ हमने यात्रा के साधन एकत्रित किए और काशी जी पहुँच गए। काशी से हम विशालापुरी और वहाँ से पाण्ढरी में छुपकर रहने लगे। वहाँ के शिवमन्दिर में हमको आश्रय मिल गया।

"यहीं उस मन्दिर में तुम्हारा जन्म हुआ। तुम्हारे जन्म के दूसरे दिन रानी जी ने प्राण छोड़ दिए। मरने से पूर्व उन्होंने तुम्हें मुझे सौंपते हुए कहा था—

"इसके पिता और इसके देश के साथ हुए अपमान का बदला लेने के लिए इस कन्या का, किसी सुयोग्य एवं वीर पुरुष के साथ विवाह करना!"

इतना बताने के उपरान्त कुछ रुककर वज्रबाहु ने पुनः कहा—

"देखो भामा! मैं चाहता था कि तुम्हारा विवाह ऐसे व्यक्ति से करूँ, जो अपनी पूर्ण जाति के साथ किए गए अपमान का बदला ले सके। परन्तु अब तुम सज्ञान हो गई हो और मैंने तुम्हें तुम्हारी जीवन-कथा सुना दी है। अब जो तुम उचित समझो, वह करो।

"मैं समझता हूँ कि रानी जी का अभिप्राय तो कलिंग देश को पुनः स्वतंत्र करने का था। मैंने मन में यह विचार कर कि जब तुम विवाह के योग्य होगी तब तक तो कलिंग देश का अस्तित्व ही मिट जाएगा, इस कारण तुम्हारे सज्ञान होने की प्रतीक्षा किए बिना ही मैंने मातृभूमि को स्वतंत्र करने का प्रयास किया था। मैंने शैव मत के धर्मगुरुओं को अशोक की क्रूरता का चित्र खींचकर लिखा। मैंने यह बताया कि कैसे इस निर्दयी सम्राट् ने अपने एक सौ के लगभग सम्बन्धियों को मृत्यु के घाट उतारकर राजगद्दी हथिया ली है। मैंने यह भी लिखा कि यदि यह निर्दयी अन्यायी राजसिंहासन पर बैठा ही रहा तो भारत में धर्म का समूल नाश हो जाएगा। इस पत्र के लिखने के पश्चात् तुमको चक्रिक के पास छोड़ मैं देशभर में घूम गया और स्थान-स्थान पर सम्राट् के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध आग लगा दी।

"यह करना मेरा काम था। मैं ब्राह्मण हूँ और देश में अन्यायाचरण का विरोध करना मेरा कर्तव्य है। दो वर्ष के अनथक प्रयत्न के पश्चात् भारत के शैवों में प्रतिकार की भावना जाग उठी और अशोक अपने को एक ज्वालामुखी पर बैठा हुआ अनुभव करने लगा। उस समय बौद्ध धर्म ने उस आततायी को आश्रय दिया। अशोक ने भी शैवों द्वारा चलाए इस आन्दोलन को समाप्त करने के लिए बौद्ध मत का आश्रय लिया। बौद्ध संघ ने यह नहीं देखा कि वह किसको आश्रय दे रहा है। उसने एक निर्दयी और अन्यायी की प्रशंसा आरम्भ कर दी। बौद्धों की सेवा और दया के आवरण में यह हमारा शत्रु न केवल बच गया और राजगद्दी पर आरूढ़ रहा, प्रत्युत एक देवता के रूप में प्रकट होने लगा। सिद्धान्त से तो बात वही रही, केवल भेरीनाद के स्थान पर धम्मनाद होने लगा।

"अशोक अशोक ही रहा। उसने बौद्ध संघ को इतना प्रोत्साहन दिया कि जो स्वार्थसिद्धि वह पहले खड्ग के बल पर करता था, अब वह बौद्ध संघ के बल पर करने लगा। जहाँ पहले उसके स्वार्थ के विरोधी तलवार के घाट उतारे जाते थे, अब वे धम्म की तलवार के सम्मुख दीन-हीन बनाए जाने लगे। राज्यबल और इसके सब प्रलोभन बौद्ध बनाने के लिए प्रयुक्त होने लगे। राज्यकोष बौद्ध विहारों पर खाली होने लगा और इसके लिए जनता पर अधिकाधिक कर लगाए जाने लगे।"

भामिनी इस कथा को सुनकर स्तब्ध रह गई। वह ब्राह्मण की लड़की नहीं, प्रत्युत एक महानात्मा क्षत्रिय की कन्या है। वह मैथिलकन्या नहीं, प्रत्युत कलिंग की राजकुमारी है। उसका अपना परिवार ही नहीं अपितु उसका पूर्ण देश एक आततायी के पैरों तले कुचल दिया गया है। वह अब निःसहाय एक पांथागार में पड़ी है और एक सज्जन ब्राह्मण की चिन्ताओं का कारण बनी हुई है। यह सब-कुछ इतना अकस्मात् और विचित्र था कि भामा समझ न सकी कि वह क्या है, क्यों है और कहाँ है।

वज्रबाहु ने अपनी कहानी का अन्त इस प्रकार किया, "भामा! तुम राजकन्या हो। मैं तुम्हारा पालन-पोषण वैसा नहीं कर सका, जैसा तुम्हारे परिवार में हो सकता था; परन्तु तुम्हारा परिवार नहीं रहा था, सब-कुछ मिट गया था। मेरे पास साधन बहुत सीमित थे। इस कारण तुमको इतनी ही शिक्षा और सुख दे सका हूँ। मुझको ऐसा प्रतीत हुआ है कि तुम उस भिक्षुक की ओर आकर्षित हो रही हो; इस कारण आकर्षण का परिणाम तुम्हारा श्राविका बनना हो सकता है अथवा उसका गृहस्थाश्रम में लौट आना और तुम्हारा उससे विवाह हो जाना। मैं इस प्रकार की किसी भी प्रगति में बाधक नहीं बनूँगा। तुम अपना इतिहास जान गई हो और अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करने के योग्य हो।"

प्रतिदिन की तरह अगले दिन निरुपम फिर आया। भामिनी उसको भिक्षा देने आई तो उसका मुख मलिन हो रहा था। निरुपम तो उसके पाँवों की ओर ही देख रहा था, इस कारण उसके मुख की मलिनता का उसको भास नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भामिनी ने भिक्षा दी तो निरुपम ने कहा, "देवी के पिता भीतर हैं क्या ?"

उत्तर मिला—"हैं।"

"मैं मकान का पता कर आया हूँ। यदि वे चाहें तो मेरे साथ चलकर देख सकते हैं।"

वज्रबाहु उनमें होने वाले वार्तालाप को सुनने के लिए किवाड़ की ओट में आ खड़ा हुआ था। जब भामिनी ने "पिता जी !" कहके पुकारा तो वह बाहर आ गया और पूछने लगा—

"युवक ! कहाँ है वह मकान ?"

"मेरे साथ चलिए। मकान खुला है, हवादार है और एक खुले मैदान में है। देवी ने बताया था कि आपको देहात में रहने के कारण नगर की घनी वीथिकाएँ पसन्द नहीं हैं।"

वज्रबाहु कुछ विचार कर साथ चलने को तैयार हो गया।

वज्रबाहु का साथ चलने का आशय यह भी था कि वह इस युवक की योग्यता और मानसिक विकास की परीक्षा कर ले। इस कारण पांथागार से निकलते ही उसने बात आरम्भ कर दी।

"श्रावक ! तुमने बहुत अल्प वयस में ही संन्यास ले लिया प्रतीत होता है ?"

"हाँ भगवन् ! मैं आठ वर्ष का था जब मेरी विधवा माँ ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। पश्चात् वह श्राविका बन गई और मैं विहार में जा बैठा। धीरे-धीरे मेरी शिक्षा-दीक्षा वहीं होने लगी। अब मैं पचीस वर्ष की आयु का हूँ और अपने विहार के अधिकारियों द्वारा समाज-सेवा के लिए भेजा जाता हूँ।"

"कुछ पढ़े-लिखे भी हो युवक ?"

"हाँ भगवन् ! मेरे गुरु पूज्यपाद श्री विचक्षण कौल्यायन भी विहार में रहते हैं। वे मुझको पढ़ाते थे। मैं देवभाषा को भली प्रकार पढ़ और समझ सकता हूँ। मैंने शास्त्र, पुराण और इतिहास पढ़े हैं और अब जो समय सेवाकार्य से बचता है, वह बौद्ध जातक लिखने में व्यतीत करता हूँ।"

"बौद्ध मत के विषय में तुम क्या समझते हो ?"

"यह मत एक दार्शनिक विचार के आधार पर निर्माण किया गया है। परन्तु यह आधार इस संसार में सर्वथा असफल सिद्ध हो रहा है।"

"जो विचार असफल हो रहा है वह सत्य नहीं हो सकता न ?"

"सत्य-असत्य की विवेचना अनन्त काल तक चलेगी और तब भी मूल सत्य क्या है कोई जान नहीं सकेगा। भगवान् तथागत की बात ही विचारणीय है। वे मृत्यु-पर्यन्त भ्रम में फँसे हुए ही सिद्ध हुए हैं। मरने से कुछ ही समय पहले वे एक निर्धन वृद्धा के यहाँ से वराह का मांस खा आए थे। उनका विचार था कि वे उसको पचा लेंगे। ऐसी अज्ञान की बात कोई मुक्त-आत्मा नहीं कर सकता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यदि ऐसी ही बात है तो तुम इस जाल में क्यों फँसे हो?"

"मैं ज्ञान-लाभ कर रहा हूँ और विहार मेरा एक आश्रय-स्थान बना हुआ है।"

"तो विहार के बाहर रहनेवाले संसार के सब लोग निराश्रय ही हैं?"

"मैंने इस विषय पर बहुत विचार किया है। मैं श्रावक हूँ, इस कारण बौद्ध संघ मेरे पालन-पोषण का भार वहन करता है। मैं आज गृहस्थी हो जाऊँ तो भूखों मर जाऊँगा। बौद्ध संघ से बाहर के लोगों का जीवन अति कठिन हो रहा है।"

"देखो युवक! मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। इस समय मेरी आयु पचास वर्ष से ऊपर है। फिर भी मैं अपनी जीविका-उपार्जन के लिए भाग-दौड़ कर रहा हूँ। एक जैन-मन्दिर में पुस्तकाध्यक्ष का कार्य मिला है। इससे अपना तथा अपनी पुत्री का निर्वाह करूँगा।"

"किस जैन पुस्तकालय में कार्य मिला है भन्ते?"

"त्रिशरण पुस्तकालय में।"

निरुपम मुस्कराया और विस्मय में वज्रबाहु का मुँह देखने लगा। वज्रबाहु इसका अर्थ नहीं समझा। निरुपम ने बात बदलकर कहा, "सेठ लक्ष्मीचन्द बहुत ही भद्र व्यक्ति हैं।"

"तो तुम जानते हो उनको?"

"मैं विशालापुरी के प्रत्येक ज्ञातव्य व्यक्ति को जानता हूँ।"

इसके पश्चात् दोनों अपने-अपने विचारों में लीन हो चलते रहे। वे समीप चलते हुए भी एक-दूसरे से दूर थे। वज्रबाहु विचार कर रहा था कि यह युवक बौद्ध नहीं रह सकता। इसमें धर्म पर आरूढ़ होने की भावना जागृत करनी चाहिए। परन्तु क्या भामिनी अपने जन्म की कथा सुनने के पश्चात् इसके साथ विवाह कर सकेगी? फिर उसको वह दृश्य स्मरण हो आया जो देवानांप्रिय प्रियदर्शी अशोक ने तोसाली में प्रस्तुत किया था। जो रक्तप्रवाह और अग्निकांड वहाँ हुआ था, वह उसकी आँखों के सामने नाचने लगा। उसकी भृकुटि तन गई। फिर उसको वह बात याद आई, जब शैव मतानुयायी अशोक के विरुद्ध प्रचार करने लगे थे और अनेक स्थानों पर छुटपुट विद्रोह होने लगे थे।

निरुपम मन में विचार कर रहा था कि यह भद्रपुरुष ठीक ही कहता है कि बुद्धि से बौद्धमत को हीन मानकर भी वह इनके पचड़े में फँसा हुआ है। यदि वह श्रावक न होता तो भामिनी से खुलकर प्रेम प्रकट कर सकता था। वह जानता था कि वह कम आकर्षक नहीं है। उसकी योग्यता और ज्ञान भी कम नहीं है। बौद्ध धर्म से तो वह जैन धर्म में ही रहता तो अच्छा होता।

वह विचार कर रहा था कि कई भिक्षुणियाँ विहार में उसके आगे-पीछे घूमा करती हैं और वह स्वयं अपना प्रेम भामिनी पर प्रकट नहीं कर सकता। इस विचार से उसके मस्तिष्क में उन्माद चढ़ता जाता था। वह इसी उन्माद में वज्रबाहु से कुछ कहने वाला था कि वह मकान आ गया, जिसको दिलाने के लिए वह उसको साथ लाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने वज्रबाहु की ओर देखकर कहा, "लीजिए, यह मकान है।"

मकान तीन छत का था। उसमें कई आगार थे। मकान के बाहर एक उद्यान भी था और उसमें फूल खिल रहे थे। मकान के आँगन में एक कुँआ था और उसके समीप एक तुलसी का क्षुप्र लगा था। आँगन के चारों कोनों में आम के पेड़ लगे थे और इन पेड़ों के लिए स्थान छोड़कर पक्का आँगन बना हुआ था।

मकान हवादार, खुला और स्वच्छ था। पिछवाड़े में एक बहुत खुला मैदान था, और मैदान के पार एक छोटा-सा वन था जो नगर-प्राचीर के साथ तक जा लगा था। वज्रबाहु मकान देखकर पुलकित हो उठा। उसने पूछा, "क्या भाड़ा है इसका?"

"एक स्वर्ण मासिक।"

"बस?"

"जी!"

"किसका है यह?"

"इसके जानने की आपको क्या आवश्यकता है? जिसका है उसका सेवक प्रतिमास आकर भाड़ा ले जाया करेगा।"

"फिर भी वह है कौन जिसने इतना सुन्दर मकान बनवाया है? नगरभर में और ऐसा मकान तो दिखाई नहीं दिया?"

"हाँ, यह मकान यहाँ के बहुत ही बड़े व्यक्ति के लिए बनवाया गया था। इस समय इसकी स्वामिनी नगर की प्रसिद्ध वेश्या इन्दु है।"

"वेश्या?"

"जी!"

"और आप उससे यह मकान हमको ले देंगे?"

"मैंने उनसे पूछ लिया है। यह मकान आप ले सकते हैं।"

"तो हमारे लिए आप वेश्या से मिलने गए थे?"

"मैं प्रायः उनके यहाँ भिक्षा-वृत्ति करने जाया करता हूँ। कल गया तो इस मकान की स्वामिनी से भेंट कर उनसे आपके लिए माँग लिया है।"

"और उन्होंने बिना हमको जाने-बूझे इसे देना स्वीकार कर लिया है?"

"वे मुझे कभी किसी वस्तु के लिए इन्कार नहीं करतीं। वे प्रबल बौद्ध उपासिका हैं।"

"इन्दु वेश्या बौद्ध उपासिका है?"

"हाँ, बौद्ध मत में सबके लिए स्थान है। सबको उन्नति करने का अवसर है। इन्दु तो पढ़ी-लिखी विदुषी स्त्री है। हमारे मत में तो अनपढ़, गँवार, चरित्रहीन स्त्री-पुरुष भी आ सकते हैं। भगवान् का उपदेश सबके लिए समान रूप से है।"

"तो इन्दु को उपदेश कौन देता है?"

"प्रति सप्ताह रविवार के दिन हममें से किसी को इस कार्य के लिए नियुक्त कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाता है। मैं भी कभी-कभी इस कार्य के लिए वहाँ जाया करता हूँ।"

वज्रबाहु ने निरुपम की आँखों में देखा और उसको निर्भीकता से अपनी ओर देखते हुए पाया। विस्मय में पूछने लगा, "क्या उपदेश देते हैं आप उसको?"

"इस संसार से मोह-त्याग करने की बात बताया करता हूँ।"

"इस उपदेश का कभी प्रभाव भी हुआ है?"

"अनेक बार मेरे कहने पर वे भारी त्याग कर चुकी हैं। अब एक और बात के लिए प्रेरणा कर रहा हूँ। आशा है कि वे मान जाएँगी।"

"क्या त्यागने को कह रहे हैं आप उसको?"

निरुपम मौन रहा। वह मन में सोचने लगा कि इस विषय में बताए अथवा नहीं। फिर कुछ विचार कर बोला, "कोई चोरी की बात नहीं है। केवल समय से पहले बात के विख्यात हो जाने से विघ्न पड़ने का भय है। फिर भी, मैं यह विचार करता हूँ कि आप तो यहाँ परदेशी हैं। आपकी यहाँ के लोगों से जान-पहचान है नहीं, इससे बात के प्रकट होने की सम्भावना नहीं। आपको बताने से आपके मन में बौद्ध मत के लिए श्रद्धा ही उत्पन्न होगी। बात यह है कि इन्दु की एक लड़की है ज्योति। वह लगभग १९ वर्ष की होगी। अति सुन्दर और अभी कुँवारी ही है। उसके सौन्दर्य के भोग के अभिलाषी उसके आगे-पीछे घूम रहे हैं। मैं इन्दु को उसका किसी भद्रपुरुष के साथ विवाह कर देने की प्रेरणा कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि वह वेश्यावृत्ति ग्रहण न करे।"

वज्रबाहु ने अपने संशय को शान्त करने के लिए उससे पूछा, "तो आप स्वयं उससे विवाह करने के इच्छुक हैं?"

"आप इन्दु को नहीं जानते, इसी से ऐसा कह रहे हैं। वह अपार सम्पदा की स्वामिनी हैं। उसकी लड़की बहुत सुख-सुविधा में पली है। वह मेरे-जैसे निर्धन से प्रेम नहीं कर सकती। फिर मैं तो संन्यासी हूँ; मेरे तो विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"मैं समझता हूँ" वज्रबाहु ने बात बदलते हुए कहा, "एक स्वर्ण मासिक इस मकान के भाड़े के लिए बहुत कम है। इतना कम भाड़ा इन्दु ने आपको प्रसन्न करने के लिए ही बताया होगा। मैं नहीं चाहता कि हमारे लिए आप एक वेश्या के आभारी हों।"

"नहीं भगवन्, इसमें कोई आभार नहीं। यह मकान वर्षों से रिक्त पड़ा है। यह कहो कि अब इसका भाड़ा मिलने लगेगा।"

"पर यह मकान इतना बड़ा है कि एक स्वर्ण मासिक बहुत कम है।"

"तो आप जितना उचित समझते हैं, दे दीजिएगा।"

"शायद मैं इतना उचित भाड़ा दे नहीं सकूँगा।"

"तो आप एक स्वर्ण में जितना मकान उचित समझते हैं उतना प्रयोग कर लीजिए। शेष में किसी और को रख दिया जाएगा।"

"हाँ, यह हो सकता है। इसमें पन्द्रह आगार हैं। मैं केवल चार ही प्रयोग में लाऊँगा और उसके लिए एक स्वर्ण मासिक दे दिया करूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है, मैं जाकर इन्दु को बता दूँगा।"

अगले दिन निरुपम जब इन्दु के मकान पर पहुँचा और उसने 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का उच्चारण किया तो द्वार पर बैठी सेविका ने कहा, "भिक्षु, देवी ने आपको भीतर बुलाया है।"

इन्दु, विशालापुरी की गणिका, का प्रासाद सब प्रकार की सुख-सुविधाओं से पूर्ण था। संगमरमर की भूमि, पत्थर की दीवारें, जिन पर अनेक प्रकार की कलापूर्ण चित्रकारी हो रही थी, आगारों की छतें, जिन पर भाँति-भाँति के आकाश-चित्र बने थे, आँगन, जिनमें पुष्प-उद्यान और जल-प्रपात बने थे, छज्जे, छतें और चबूतरे इत्यादि अनेकानेक प्रकार की बनावटों से यह प्रासाद अलंकृत था। ड्योढ़ी में आते ही अति सुन्दर रमणियों की मूर्तियाँ रंग-रंग के पत्थरों से बनी हुई थीं। ड्योढ़ी लाँघकर एक प्रांगण था, जिसके मध्य में एक बृहत् जल-प्रपात बना था और इसके चारों ओर क्यारियों में पुष्प लगे थे। इन क्यारियों के बीच आने-जाने के लिए पत्थर के मार्ग बने थे। जल-प्रपात का जल एक विशाल कुण्ड में गिरता था, जिसमें कई रंग की मछलियाँ कल्लोल करती दिखाई देती थीं। यह कुण्ड और प्रपात दूध के समान श्वेत पत्थर का बना था।

इस प्रांगण को लाँघकर एक विशाल आगार में पहुँचा जाता था। यह प्रतीक्षा-भवन था। इसमें नगर के बीसियों धनी-मानी पुरुष घंटों ही गणिका के दर्शन के लिए बैठा करते थे। प्रतीक्षा-भवन की भूमि पर यवन देश की एक कोमल स्थूल कालीन बिछी रहती थी, जिस पर चलने से पाँव नीचे धसने-सा लगता था। इस भवन की दीवारों पर भाँति-भाँति की मुद्रा में नर्तकियों के चित्र बने हुए थे। ये प्रतीक्षा करनेवालों के मनोरंजन के लिए थे। आराम से बैठने के लिए गद्देदार चौकियाँ थीं। छत से बड़े-बड़े दीप-पुञ्ज लटक रहे थे; इनमें दो सौ से ऊपर दीपक जला करते थे। इसके अतिरिक्त दीवारों के साथ भी दीपक लगे थे। रात के समय यह आगार जगमग-जगमग करता था।

जब निरुपम दिन के इस समय भिक्षा माँगने आया तो अनेक नागरिक देवी के दर्शनों के लिए बैठे थे। उन सबकी अवहेलना कर निरुपम को प्रतीक्षा-भवन में उन सबके बीच में से होकर प्रासाद के भीतरी भाग में जाना पड़ा। उसको एक अन्य प्रांगण में से, जो पहले से भी अधिक सजा हुआ था, ले-जाया गया।

निरुपम इस प्रांगण में पहले भी कई बार आ चुका था। इसमें कितने ही लताकुंज थे और देवी से भेंट इन्हीं में हुआ करती थी। जब वह उपदेश करने आया करता था तो इन्हीं लताकुंजों में इस प्रासाद के निवासियों की गोष्ठी हुआ करती थी। आज उसको इससे भी आगे देवी के शयनागार तक ले-जाया गया। दासी, जो शयनागार के द्वार पर खड़ी थी, भिक्षु को देख मुस्कराई और बोली, "प्रभु! देवी आज रुग्ण हैं, उन्होंने आज आपको शयनागार में ही आने का कष्ट दिया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शयनागार?" निरुपम के ओष्ठ फड़के और ये शब्द उसके मस्तिष्क में शूल की भाँति चुभे। वह एक क्षणभर वहाँ ठहर गया और पश्चात् दीर्घ श्वास खींच, ग्रीवा ऊँची कर दासी के पीछे-पीछे आगार में चला गया। दासी ने भिक्षु को वेदी के रत्न-जटित पलँग के समीप ले-जाकर खड़ा कर दिया। आगार में पर्याप्त अँधेरा था। आज देवी की आज्ञा से खिड़कियाँ खोली नहीं गई थीं। छत से लटका एक दीपक धीमा-सा प्रकाश कर रहा था।

इस धीमे प्रकाश में निरुपम इस विशाल आगार के सामान को भली-भाँति नहीं देख पाया था। पलँग पर लेटी देवी को भी वह अभी नहीं देख सका था।

दासी ने निरुपम के बैठने के लिए एक चौकी पलँग के समीप रख दी और धीरे से कहा, "देवी, भिक्षु आए हैं।"

इन्दु ने आँखें खोलीं और करवट ली। पश्चात् भिक्षु को देखकर बोली, "प्रभु! पधारिये।"

निरुपम बैठ गया। अभी तक वह अपने पाँव की ओर ही देख रहा था। उसको साहस नहीं हुआ कि देवी को पलँग पर लेटा हुआ देखे।

अब तक उसकी आँखों को इस अर्धांधकार में देखने का अभ्यास हो रहा था और वह उस आगार की सुवासित वायु का सौरभ प्राप्त करने लगा था। चौकी पर सुकोमल आसन के सुख को अनुभव करने लगा था। वह अभी भी आँखें नीची किए देवी के बात करने की प्रतीक्षा कर रहा था।

इन्दु ने उसको इस प्रकार चुप बैठे देख कहा, "मुझको आज ज्वर है। मैं बाहर नहीं जा सकी, इस कारण आपको यहाँ आने का कष्ट दिया है।"

"ज्वर! तो वैद्यराज को बुलाना चाहिए।"

"उनसे औषध मँगवाई है और नाली में फेंक दी है।"

"क्यों?"

"वह मूर्ख है। मेरे रोग का निदान नहीं कर सका। आप उससे अधिक जान और समझ सकेंगे। मुझको ज्योति की भारी चिन्ता लग रही है। उस चिन्ता में मैं कई रात से सो नहीं सकी। यही ज्वर का कारण है और उस चिन्ता का उपाय वैद्यराज की औषध नहीं, प्रत्युत आपकी शुभ सम्मति है।"

"कैसी चिन्ता है देवी जी को? ज्योति आपकी पुत्री है। आपसे अधिक सुन्दर और पढ़ी-लिखी है। वह अपना मार्ग इस संसार में स्वयं ढूँढ लेगी। मैंने उसे अपनी सम्मति दी है। उस सम्मति को मानना उसके अपने निर्णय करने की बात है। मैं समझता हूँ कि इसमें आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।"

"विशालापुरी के नगरसेठ लक्ष्मीचन्द ने कल ज्योति से विवाह का प्रस्ताव किया है। मैं इसको पसन्द नहीं करती।"

"लक्ष्मीचन्द भले व्यक्ति हैं। आयु में भी···।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो आपकी सम्मति है कि ज्योति का उससे विवाह हो जाना चाहिए?"

"मैंने ऐसा नहीं कहा देवी! मैं तो यह कहा रहा हूँ कि वह भला मनुष्य है और यदि उसको समझाया जाए तो वह लड़की का धर्मपिता बन उपयुक्त व्यक्ति के साथ उसका विवाह करने के लिए तैयार हो जाएगा।"

"वह एक लक्ष स्वर्ण वार्षिक लड़की को देने को कह रहा है और लड़की प्रलोभन में फँस गई है।"

"तो वह उससे विवाह करने के लिए तैयार हो गई है?"

"हाँ, उसी की इस बात से तो मुझे ज्वर हो आया है।"

इस समय तक निरुपम को कमरे के अँधेरे में सब-कुछ दिखाई देने लगा था। उसने देवी के ज्वर की पुनः बात सुनी तो उसकी आँखें इन्दु का मुँह देखने के लिए ऊपर उठीं। मलमल की झीनी चादर में से उसके सुन्दर शरीर को देख वह काँप उठा। उसका रक्त सिर की ओर चढ़ने लगा। यत्न से उसने अपने मन को नियंत्रित कर कहा, "यदि आपको ज्वर है तो यह पतला कपड़ा तो हानिकर है। आप मोटे कपड़े पहन लीजिए। खुलकर पसीना आ जाएगा तो ज्वर छूट जाएगा।"

"पर वह मेरे रोग की चिकित्सा नहीं होगी।"

"रोग के कारण को दूर करने का यत्न किया जाएगा। परन्तु यह तो आप सन्निपात को निमन्त्रण दे रही हैं। ज्वर में निर्वस्त्र-सा रहना तो ठीक नहीं।"

"अच्छी बात है, मैं कपड़े पहन लेती हूँ। परन्तु प्रभु! आपको हमारी सहायता करनी चाहिए।"

निरुपम उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं आपकी बाहर प्रतीक्षा करता हूँ। आप वस्त्र पहन और ज्योति को साथ लेकर वहाँ आ जाइए। मैं उसको समझाने का यत्न करूँगा।"

"बाहर नहीं, यहीं ठहरिए। मैं अभी वस्त्र पहनकर तैयार हो जाती हूँ।"

इतना कह उसने मलमल की चादर को हटा दिया और पलँग पर खड़ी हो छत से लटक रही डोरी को खींचने लगी। निरुपम इससे घबरा उठा और मुँह मोड़ दीवार पर बने चित्र देखने लगा।

डोरी खींचने से आगार के बाहर घंटी बजी और दासी भीतर आ गई। वह निरुपम को नग्न इन्दु की ओर पीठ किए खड़ा देख हँस पड़ी। स्वामिनी ने दासी की हँसी में साथ दिया और कहा, "प्रभु अभी भी मोह-राग में फँसे हैं। इस कारण इनको मेरी ओर पीठ कर मेरा अनादर करना क्षम्य है।"

दासी ने इन्दु के लिए वस्त्र लाकर दिए और पहनाने लगी। पहनते हुए इन्दु ने कहा, "प्रभु! यह शरीर मिट्टी का ढेला है, आत्मा कुछ वस्तु नहीं है, वासना विकार है, इत्यादि उपदेश क्या हम क्षुद्र जीवों के लिए ही हैं? आपके अपने लिए कुछ नहीं है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देवी !" निरुपम ने बिना मुँह घुमाए कहा, "उपदेश तो सबके लिए ही है। मेरी तपस्या अभी इतनी नहीं कि मैं अग्नि में हाथ डालकर भी जलने से बच सकूँ। मैं इस अग्नि से बचकर ही रहना चाहता हूँ।"

"मेरी शुभ कामना आपके साथ है। भगवान् तथागत आपकी सहायता करें।"

"धन्यवाद ! तो अब मैं बाहर प्रांगण में आपकी प्रतीक्षा करता हूँ।" इतना कह वह शयनागार के द्वार की ओर घूमा। अभी दो पग ही द्वार की ओर बढ़ा था कि ज्योति ने आगार में प्रवेश किया और निरुपम को द्वार की ओर जाते हुए तथा अपनी माँ को वस्त्र पहनते हुए देख विस्मय प्रकट करते हुए पूछने लगी, "प्रभु ! आप माँ के शयनागार में ? मैं आपसे यह आशा नहीं रखती थी।"

"ज्योति !" निरुपम ने गम्भीर भाव में कहा, "यह बचपन तुम छोड़ोगी अथवा नहीं ? अब तुम युवा हो गई हो, इसलिए तुम्हारा व्यवहार लज्जायुक्त एवं विचारशील होना चाहिए।"

"तो आप-जैसे भद्रपुरुषों से समझदारी के व्यवहार की आशा नहीं ?"

यह सुनकर दासी खिलखिलाकर हँस पड़ी। ज्योति ने बात जारी रखी—"मुझको माँ ने आपसे मिलने के लिए यहाँ बुलाया है और आप किधर जा रहे हैं ?"

"ठहरो प्रभु !" इन्दु ने निरुपम को उत्तर देने का अवसर न देते हुए कहा—"मैं अब तैयार हूँ और ज्योति से यहीं बात करनी उचित होगी।"

इन्दु ने वस्त्र पहन लिये थे। साड़ी ओर चोली ही पहनी थी। तथापि उसके शरीर का अधिक भाग अब ढका हुआ था। वह पलँग से उतर आई और उसी आगार के एक कोने में रखी चौकियों पर निरुपम और ज्योति को बिठाकर स्वयं भी बैठ गई।

"प्रभु ! यह लड़की अब सीमा से अधिक उच्छृंखल हो रही है। मैंने इसको बताया है कि सेठ इसके पिता हैं। इसके जन्मदाता हैं। उनसे इसका विवाह उचित नहीं और न ही यह सुखकर हो सकेगा।"

"तो यह क्या कहती है ?"

"इससे ही पूछ लीजिए।"

"प्रभु !" ज्योति ने गम्भीर होकर कहा, "मैं सेठ जी से विवाह नहीं कर रही अपितु वे मुझसे विवाह करना चाहते हैं। उन्होंने इस अवसर पर इतना कुछ देने को कहा है कि मैं अस्वीकार नहीं कर सकी। रहा उनका मेरा जन्मदाता होना, यह तो मैं जान नहीं सकी और उनको भी मेरे पिता होने पर सन्देह है। सन्देह की बात छोड़कर भी उनका कहना है कि वे जैनी हैं। वे अपने धर्म के स्याद्वाद पर दृढ़ विश्वास करते हैं। एक पदार्थ में दो परस्परविरोधी गुणों का होना वे सम्भव मानते हैं। उनकी दृष्टि में एक स्त्री का पत्नी-पुत्री आदि अनेक रूपों में होना न केवल सम्भव ही है, प्रत्युत स्वाभाविक भी है।"

"यह हो सकता है।" निरुपम का कहना था, "कई धर्म-ग्रंथ ऐसे ही शाब्दिक जाल में फँसे हुए हैं। फिर भी मेरा कहना है कि सेठ जी वृद्ध हैं। तुम्हारा उनका जीवन-भर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ नहीं हो सकेगा। विधवा होने पर तुम देश में एक समस्या बन जाओगी और क्या जाने तुम्हारे कारण रक्तपात भी हो जाए!"

"तो आप मुझको इतनी सुन्दर समझते हैं?"

"हाँ, मैं तो समझता हूँ कि तुम पिछले जन्म की स्वर्गिक अप्सरा हो। तुम्हारी माँ सुन्दर है, परन्तु तुम उससे भी सुन्दरतम हो।"

"तो एक बात कहूँ?" ज्योति ने निरुपम की ओर व्यंग्यमयी दृष्टि से देखकर पूछा।

"हाँ, कहो?"

"आप मुझसे विवाह कर लीजिए।"

इस प्रस्ताव पर तो निरुपम किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा होकर देखता रह गया। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल सका। इन्दु ने शान्ति भंग की और कहा, "बेटी! धीरे-धीरे चलो। एकदम करोड़पति सेठ से उतरकर एक भिक्षु की गोद में आ गिरने से अपनी हड्डी-पसली चूर-चूर कर बैठोगी।"

ज्योति हँस पड़ी। निरुपम अभी भी निस्तब्ध, विस्मय में दोनों की ओर देख रहा था।

"मेरे गुरुदेव को मेरे सौन्दर्य की प्रशंसा का मूल्य मिलना चाहिए था न? मेरे कहने का अर्थ तो यह है कि यदि मैं अति सुन्दर हूँ तो प्रकृति ने मुझको या तो किसी धनकुबेर के लिए बनाया है अन्यथा किसी निर्धन सन्त महात्मा के लिए। इन दोनों के अभाव में भारत-सम्राट् ही इस सुन्दरता के अधिकारी हो सकते हैं। धनकुबेर तो मैदान में उतर आए हैं। संत महात्मा भी यहाँ उपस्थित हैं। दोनों मेरे मूल्य को पहचानते हैं। भारत-सम्राट् न तो यहाँ हैं और न ही विवाहयोग्य हैं। महाराज के सुपुत्र हैं। वे भी चालीस वर्ष की आयु के हैं और चक्षुहीन हैं।"

ज्योति की इस बात पर निरुपम का धैर्य कुछ बँधा। उसने साहस करके कहा, "देवी, एक और हैं। युवराज कुणाल के सुपुत्र सम्प्रति की आयु तुम्हारे समान ही है।"

"जब तक कुमार सम्प्रति सम्राट् बनेगा, तब तक वह वृद्ध हो जाएगा। अभी तो महाराज अशोक भी जीवित हैं। उनके स्वर्गवास के पश्चात् अन्ध-देव राजगद्दी सँभालेंगे और क्या जाने इन लोचनविहीन महाराज के राज्यकाल में ही मगध का साम्राज्य सिकुड़कर एक जागीरमात्र ही रह जाए!"

"महाराज कुणाल अन्धे हैं। उनको भारत-सम्राट् का उत्तरदायित्वपूर्ण पद मिलना नहीं चाहिए। इसके लिए यत्न किया जा सकता है।"

"तो मुझको महारानी बनने के लिए पिता-पुत्र में झगड़ा उत्पन्न करना होगा?"

"झगड़ा तो मौर्य-परिवार में आरम्भ हो चुका है। देवानांप्रिय ने अपने एक सौ बन्धुओं को स्वर्गारोहण कराया था और आज भी राजकुमार कुणाल की अपने पिता से नहीं बनती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह सब व्यर्थ है प्रभु ! हाथ में आई एक मुद्रा आने वाली दो के लोभ में छोड़नी उचित नहीं।"

"यह मुद्रा है? तुम मिट्टी के ढेले को रत्न समझ बैठी हो, ज्योति! सेठ लक्ष्मीचन्द भद्रपुरुष होते हुए भी तुम्हारे योग्य नहीं। मैं तो स्पष्ट देखता हूँ कि विवाह के एक वर्ष के भीतर ही या तो तुम विधवा होकर बौद्ध श्राविका बन जाओगी या तुम्हारे सौन्दर्य को अरक्षित देख लुटेरे सदलबल लूटने चले आएँगे।"

"देखिए प्रभु ! मेरा तो केवलमात्र यह कहना है कि या तो माँ मेरा विवाह सेठ से करा दें या आप मुझसे विवाह स्वीकार करें। एक तीसरी बात भी हो सकती है कि आप मुझको पाटलिपुत्र ले चलें और मुझको अपने भाग्य की परीक्षा करने दें। लेकिन आपके बिना मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।"

"तो तुम सेठ जी से विवाह कर लो। अन्य दो बातें...."

निरुपम आगे कहने लगा था कि 'असम्भव है' परन्तु वह रुक गया। उसका मन इनको असम्भव नहीं मानता था। उसे चुप देख ज्योति ने कहा "हाँ, कहिए न ! अन्य दो बातों का क्या है?"

"मैं श्रावक हूँ, संन्यास व्रत लिये हुए हूँ।"

"यदि मैं इतनी ही सुन्दर हूँ जितनी आप कहते हैं, तो आप इसके लिए पुनः गृहस्थी क्यों नहीं बन सकते?"

"मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकूँगा। ना ही तुम्हारा व्यय वहन कर सकूँगा।"

"माँ बहुत धनी हैं। धन की आवश्यकता नहीं होगी। आप बुद्धिमान् हैं और विद्वान् भी हैं। आप युक्ति से मेरी रक्षा कर सकेंगे।"

"मैं गृहस्थी के झंझट में नहीं पड़ना चाहता।"

"तो मैं समझती हूँ कि आप मेरी झूठी प्रशंसा कर रहे हैं। जब मेरा सौन्दर्य एक श्रावक को मोल नहीं ले सकता है तो सम्राट् के पौत्र पर क्या प्रभाव डाल सकेगा? फिर उसको उसके पिता के विरुद्ध कैसे किया जा सकता है?"

"तो क्या तुम्हारे सौन्दर्य की प्रशंसा इससे पूर्व किसी ने नहीं की?"

"की है, तभी तो विवाह का प्रस्ताव आया है।"

"मेरा अभिप्राय सेठ लक्ष्मीचन्द के अतिरिक्त किसी अन्य से है।"

"कम-से-कम एक और है।"

"वह कौन है?"

"आप, प्रभु ! मैं तो आपके साथ नरक में भी जाने को तैयार हूँ।"

"पर मैं तो नरक में नहीं जाना चाहता।"

"तब ठीक है। दोनों एक-साथ ही स्वर्गारोहण करेंगे।"

"आपकी तीनों बातों पर विचार करूँगा। फिर किसी दिन बात करेंगे।"

इस समय कुंकुम तथा कस्तूरी से सुवासित गौ-दुग्ध आया और एक पात्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुपम के सम्मुख रख दिया गया। पहले भी जब कभी निरुपम उपदेशार्थ आया करता था, तब वह प्रातः का अल्पाहार वहाँ पर ही किया करता था। इस कारण उसने दूध स्वीकार कर लिया। इन्दु और ज्योति के लिए भी दूध आया और वे भी पीने लगीं। निरुपम ने अब वज्रबाहु की बात छेड़ी। उसने कहा—

"आपका प्राचीर के समीप वाला भवन उन्होंने ले लिया है। पण्डित वज्रबाहु का कहना है कि उस गृह का भाड़ा एक स्वर्ण मासिक बहुत कम है। अधिक भाड़ा वे दे नहीं सकते। अतएव वे गृह का एक भाग ही प्रयोग में लाएँगे।"

"इससे मुझको क्या लाभ अथवा हानि हो सकती है? उनसे कह दीजिए कि मुझको और भाड़ा नहीं चाहिए। वे जैसे और जितने में चाहें रह सकते हैं।"

"वे सेठ लक्ष्मीचन्द के त्रिशरण पुस्तकालय में कार्य पा गए हैं।"

"बहुत विद्वान् हैं क्या वे? सेठ कहते थे कि किसी अधपढ़े को पुस्तकालय में नहीं रखेंगे।"

"तो सेठ जी ने परीक्षा ली होगी। मैं उनकी विद्वत्ता के विषय में कुछ नहीं जानता।"

"सेठ जी का कहना है कि उनका यह पुस्तकालय लाखों स्वर्ण की लागत का है और किसी गँवार, अनपढ़ के हाथ में देकर वे इसका सत्यानाश कराना नहीं चाहते।"

"वज्रबाहु ने अवश्य सेठ जी को सन्तुष्ट कर लिया होगा।"

"वे भी देखने योग्य व्यक्ति होंगे।"

निरुपम आज नगर में भ्रमण करने नहीं गया और न ही वह भामिनी के पास भिक्षा-वृत्ति करने गया। वज्रबाहु को पांथागार को छोड़ प्राचीर के समीप वाले गृह में स्थानान्तरण करना था।

निरुपम के मन में ज्योति के प्रस्ताव ने उथल-पुथल मचा दी थी। ज्योति का यह कहना कि वह निरुपम के लिए नरक में भी जाने को तैयार है, उसके मन में गुदगुदी उत्पन्न करने लगा था। इस प्रस्ताव की आशा वह स्वप्न में भी नहीं करता था।

इसी प्रकार के विचारों में लीन वह विहार की ओर चला जा रहा था कि उसका साथी, सोम, भिक्षा से लौटता हुआ मार्ग में मिल गया। निरुपम का आना-जाना अधिक घरों में था, इस कारण वह प्रातः का गया प्रायः सायं ही लौटा करता था। सोम मध्याह्न के समय ही लौट आया करता था। अतएव आज निरुपम को भी उसी समय लौटते देख वह विस्मय से पूछने लगा, "मित्र! क्या है आज? गंगा-घाट पर नहीं गए क्या?"

"नहीं, कुछ अस्वस्थता का आभास हो रहा है। इस कारण विश्राम के लिए लौट रहा हूँ।"

"तो तुम्हारा भी शरीर अस्वस्थ रहने लगा है? कहीं काम-ज्वर ने तो नहीं आ दबाया?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सोम! मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि ऐसी बातें करने से मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।"

"देखो निरुपम! इन्दु के निवासगृह में जाकर शरीर तथा मन का स्वस्थ रखना असम्भव है। या तो वहाँ जाना बन्द कर दो या फिर वहाँ जाने से जो स्वाभाविक इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, उनकी पूर्ति कर लो। मैं अपना अनुभव बताता हूँ कि जब एक बार मन में किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हो जाए तो उसको पूर्ण कर ही लेना चाहिए। इसी से मन में शान्ति स्थापित हो सकती है। अपूर्ण इच्छाएँ तो अशान्ति ही उत्पन्न करती हैं।"

"परन्तु भगवान् तथागत का तो कहना ही यह है कि इच्छाओं की पूर्ति से इच्छाएँ बढ़ती हैं, घटती नहीं।"

"इसके लिए तो इच्छाओं को उत्पन्न ही न होने देना चाहिए। यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि तुम-जैसे युवा पुरुष को पहले तो अनुपम सुन्दरी वेश्या के घर पर भिक्षा के लिए भेजा जाए और उसके परिणामस्वरूप इच्छाएँ उत्पन्न हों तो कहा जाए कि संयम करो। देखो निरुपम! अनेक प्रतिबन्ध रखते हुए भी श्रावक और श्राविकाएँ परस्पर मिलते ही रहते हैं और फिर इसके परिणाम भी स्पष्ट दिखाई देते हैं।"

निरुपम इस बात को सुन गम्भीर विचार में डूब गया। वह सोम से अनेक बातों में मतभेद रखता था, परन्तु वह उसके इस कथन की सत्यता को अनुभव करता था। उसे इस प्रकार विचार-मग्न देख सोम ने कहा—"इतिहास में यह बात लिखी है कि भगवान् तथागत भी प्रथम इसी विचार के थे, परन्तु वे अपने शिष्यों का आग्रह अस्वीकार नहीं कर सके। वे तो चाहते थे कि बौद्ध धर्म में केवल पुरुष ही संन्यासी हों। परन्तु उनके शिष्यों का कहना था कि पुरुष और स्त्री में भेद-भाव करके वे ठीक नहीं कर रहे। वे मान गए। स्त्रियों को भी संन्यास लेने की स्वीकृति मिली तो पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ संन्यास लेने लगीं और फिर उनके पुरुषों के साथ रहने से भोग-विलास की प्रवृत्ति बढ़ने लगी।

"यह तो एक चिकनी ढलान पर लुढ़कते पत्थर की भाँति ही हुआ। एक बार स्त्री-पुरुष दोनों श्रावक बने तो विषय-लोलुपता बढ़ने लगी और किसी भी प्रकार का यत्न इसको रोक नहीं सका। अब जो कुछ है, सो तुम जानते ही हो।"

"तुम ठीक कहते हो, सोम! मैं भी इस समस्या को इसी प्रकार सोचता हूँ। प्रथम तो युवा पुरुष को संन्यास लेना ही नहीं चाहिए। यदि वह संन्यास ले तो उसको प्रलोभनों से दूर रहना चाहिए, और यदि वह इनसे दूर नहीं रह सकता तो उसको पुनः गृहस्थ में प्रवेश कर विवाह कर लेना चाहिए। मैं विचार कर रहा हूँ कि इन्दु के प्रासाद में जाना बन्द कर दूँ।"

"तो क्या आज कोई अनोखी घटना घटी है?"

"....हाँ। अभी वहीं से लौट रहा हूँ। भगवान् तथागत के आशीर्वाद का ही फल है कि वहाँ से अछूता चला आ रहा हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोम हँस पड़ा और बोला, "तो एक बात करो। महाप्रभु से कहकर मुझको उस ओर भिक्षा-वृत्ति करने के लिए जाने की स्वीकृति ले दो। महाप्रभु तुम्हारा कहा टाल नहीं सकते।"

"एक बार तुम गए तो थे। पुनः स्वीकृति के लिए प्रयत्न किया जा सकता है।"

"तब तो दासियों ने मुझसे हँसी-ठट्ठा करना आरम्भ कर दिया था। इन्दु स्वयं तो उपहास में सम्मिलित नहीं हुई, पर उन दासियों में से ही एक इन्दु बन गई और उसने मुझको खूब उल्लू बनाया।"

"इसलिए यदि तुम फिर वहाँ गए तो सब फिर हँसेंगी। क्या तुम राधिका के व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं हो?"

राधिका एक विधवा उपासिका थी और सोम उसके घर पर भिक्षा करने जाता था। उसका नाम सुन सोम ने नाक चढ़ाकर कहा—"क्या बात करते हो, निरुपम! कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली! वह चालीस वर्ष की वृद्धा, इन्दु और ज्योति से क्या तुलना रख सकती है! वह बहुत स्वादिष्ट भोजन खिलाती है और दो टका दक्षिणा में भी देती है, परन्तु जो मूल्य वह इसके उपलक्ष्य में चाहती है, वह बहुत अधिक है।"

इस प्रकार बातें करते हुए दोनों विहार के मध्यवर्ती प्रांगण में घूम रहे थे। इस समय महाप्रभु कौल्यायन अपने कार्यालय को जाते हुए दिखाई दिए। निरुपम सोम को वहीं छोड़कर उनके पीछे-पीछे कार्यालय में जा पहुँचा। महाप्रभु कौल्यायन भी उसके मलिन मुख को देखकर उससे पूछने लगे—"क्या है भद्रायण! मुख मलीन क्यों हो रहा है?"

निरुपम ने इन्दु के निवास पर घटित घटना का वर्णन किया और पश्चात् कहा—"मेरे स्थान पर अब किसी अन्य भिक्षुक को वहाँ भेजना ठीक रहेगा।"

"क्यों?"

"मैं अपने में इतना संयम नहीं पाता कि ज्योति जैसी सुन्दरी से वासना में लिप्त होने से बच सकूँ। मैं मन से यह कुछ नहीं चाहता, परन्तु प्रलोभन अति प्रबल है। इससे बचने के लिए अति घोर तपस्या की आवश्यकता है।"

महाप्रभु का कहना था, "देखो निरुपम, ज्योति से संघ ने भारी कार्य कराना है और उससे वह कठिन काम कराने के लिए यह आवश्यक है कि उस पर प्रबल प्रभाव रखने वाला व्यक्ति उसके साथ रखा जाए। मैंने एक-एक कर कई भिक्षुओं को वहाँ भेजा है, परन्तु जो प्रभाव तुम्हारा उन माँ-बेटी पर है, वह अन्य किसी का नहीं हो सका। इस कारण संघ के लिए तुम उनसे अपना सम्बन्ध बनाए रखो। इसी से उनका कल्याण होगा तथा संघ की नीति का भी संचालन होगा।"

"परन्तु प्रभु! मेरा क्या होगा? मैं पतित हो जाऊँगा, मेरा तप क्षीण हो जाएगा और मैं पथभ्रष्ट होकर जन्म-जन्मान्तर के जंजाल में फँसा रहकर संसार में भटकता रह जाऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऐसा क्यों होगा ? यदि तुम मन से निर्लिप्त होकर और संघ की उन्नति के लक्ष्य से थोड़ा वासना में भी पड़ गए तो तुम्हारी हानि तो कुछ होगी नहीं, परन्तु इससे संघ का और उससे अन्य लक्ष-लक्ष भिक्षुओं और उपासकों का भला होगा। इस भलाई से तुम्हारी आत्मा निर्वाण-पथ पर अग्रसर होगी।"

"मुझको भय है कि कहीं मैं मोह में फँस गया तो सब किया-कराया नष्ट हो जाएगा।"

"जब तुम परोपकार की भावना से मोह में फँसोगे तो वह तुमको पतन की ओर ले जाने के स्थान पर उन्नति की ओर ले जाने में सफल होगा।"

"महाप्रभु ! यह बौद्ध विचारधारा तो नहीं है। यह तो भगवान् कृष्ण द्वारा कथित भगवद्गीता के वचन हैं।"

"कुछ भी हो, यह बुद्धिवाद है, बुद्धिवाद ही बौद्ध विचारधारा है।"

"पर आप ज्योति से संघ का कौन-सा कार्य लेने वाले हैं ?"

"यह अभी एक गुप्त रहस्य है। समय पर सब बात स्पष्ट हो जाएगी। संघ की शरण में रहो, वह तुम्हारी रक्षा करेगा।"

निरुपम भद्रायण को इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह दो विभिन्न आकर्षणों की ओर खिंच रहा था। एक ओर भामिनी थी, दूसरी ओर ज्योति। वह भामिनी को अपनी ओर आकर्षित करने का यत्न कर रहा था और ज्योति उसको अपनी ओर खींचने का यत्न कर रही थी। ज्योति उन्माद थी, जो उसके सिर पर चढ़ रही थी; भामिनी सौम्य थी। निरुपम प्रकृति से भामिनी को पसन्द करता था, परन्तु वह गुरुदेव के आग्रह की अवहेलना भी नहीं कर सकता था।

वह बिना कुछ कहे वहाँ से उठ अपने आगार में आकर लेट गया।

वज्रबाहु ने पांथागार छोड़ नगर की प्राचीर वाला मकान ले लिया। यद्यपि वज्रबाहु ने कह दिया था कि वह केवल चार आगार ही प्रयोग में लाएगा, फिर भी शेष आगार रिक्त ही पड़े रहे। एक आगार भामिनी ने अपने अधिकार में कर लिया, एक वज्रबाहु ने और एक चक्रिक ने। चौथा आगार, जो मकान के अग्रभाग में था, बैठक बना दिया गया। उसमें दरी, चौकियाँ और चित्र आदि लगाकर सजा दिया गया।

जब वज्रबाहु पुस्तकालय में चला जाता, भामिनी बैठक में ही बैठा करती थी। चक्रिक प्रायः घर पर ही रहता था। वह दिन के समय पेड़ की छाया में और रात को अपने आगार में रहता था। केवल घर का सामान खरीदने के लिए वह बाहर जाया करता था। एक भृत्य रख लिया गया था जो भोजन तैयार करता था और चौका-बासन कर लिया करता था।

निरुपम नियमपूर्वक भीख माँगने आने लगा था। भामिनी मन में उससे प्रेम करने लगी थी। जब वह आता तो प्रायः बौद्धिक चर्चा के लिए ठहर जाता और इतिहास,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराण तथा साहित्य पर चर्चा होने लगती।

इतिहास पर चर्चा होते-होते कभी कलिंग पर बात चल पड़ती तो महाराज अशोक पर जली-कटी सुनाए बिना भामिनी से नहीं रहा जाता था। इतनी घनिष्ठता होने पर भी उसने निरुपम को अपना परिचय, जैसा वज्रबाहु ने बताया था, नहीं दिया। धीरे-धीरे निरुपम और भामिनी में विचार-साम्य होता जाता था। एक बात पर दोनों सहमत होते जा रहे थे और वह था बौद्ध मत का अव्यवहारिकपन। संन्यास धर्म सबके लिए नहीं हो सकता था। साधारण परिस्थिति में यह वृद्धजनों के धारण करने का कार्य था। इस विचार-साम्य के पश्चात् निरुपम के श्रावक बने रहने का प्रश्न स्वाभाविक रूप में ही उपस्थित हो उठा था। फिर भी निरुपम अन्तिम निर्णय नहीं कर पाता था। उसका ज्योति के साथ पाटलिपुत्र जाना निश्चित हो रहा था।

निरुपम भामिनी को एक भद्र परिवार की युवती समझता था और उसके लिए मन में प्रेम अनुभव करने लगा था। वह मन में विचार किया करता था कि यदि उसने गृहस्थ में प्रवेश करना ही है तो वह भामिनी से ही विवाह करेगा।

भामिनी से ज्योति अधिक सुन्दर थी, परन्तु वह उसके विचारों को पसन्द नहीं करता था। एक दिन उसको पता चल गया कि वह धन-सम्पद् और पद की लालसा रखती है। उसने विश्लेषण किया कि जब तक उसके मन में पाटलिपुत्र जाने का विचार नहीं था वह सेठ लक्ष्मीचंद के पीछे पड़ी थी, और ज्यों ही उसको पाटलिपुत्र जाने की बात सुझाई गई वह सेठ का विचार छोड़कर निरुपम के साथ पाटलिपुत्र जाने का यत्न करने लगी। वह पहले बौद्ध संघ से घृणा करती थी, परन्तु यह जान कि पाटलिपुत्र में बौद्ध संघ की तूती बोलती है, वह बौद्ध उपासनाओं में सम्मिलित होने लगी। जहाँ पहले वह बौद्ध संघ और श्रावकों को ढोंगी, स्वार्थी और विषय-लोलुप कहा करती थी, अब वह बौद्धों की प्रशंसा करती नहीं अघाती थी।

निरुपम यह सब देख रहा था और उसके इस व्यवहार से वह ज्योति के आकर्षण से बच रहा था। फिर भी वह इन्दु के घर जाता था, क्योंकि ऐसी उसको आज्ञा थी। विहार के अध्यक्ष महाप्रभु विचक्षण कौल्यायन समझ रहे थे कि ज्योति में विचार-परिवर्तन निरुपम भद्रायण के कारण हो रहा है। निरुपम एक दिन ज्योति के व्यवहार से बहुत घबराया। वह साप्ताहिक उपदेश के पश्चात् विहार को लौटने वाला था कि ज्योति ने कहा, "प्रभु! मैं समझती हूँ कि मुझको अपने विवाह के विषय में अन्तिम निर्णय कर लेना चाहिए।"

"ऐसा करना ठीक ही है।" निरुपम ने उत्तर दिया।

"इस निर्णय में आपकी सहायता की आवश्यकता है।"

"बताओ, क्या चाहती हो?"

"आप मेरे आगार में आइए, आपसे बहुत-कुछ पूछना है।"

"यहीं उद्यान में एक ओर बैठ जाते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं प्रभु ! मैं अभी यह बात अति गुप्त रखना चाहती हूँ।"

"गुप्त मन्त्रणा तुम अपनी माँ से कर लो, वे मुझसे बात कर लेंगी।"

"पर मेरी बात तो माँ से भी गुप्त होगी। तनिक आइए।"

निरुपम विवश हो गया। उसकी धारणा थी कि श्रावकों का दूसरों की उन्नति के मार्ग में सहायक होना परम धर्म है। वह ज्योति के साथ उसके आगार में जा पहुँचा। ज्योति ने द्वार भीतर से बन्द कर लिया और उसको एक आसन पर बैठा, स्वयं उसके समीप बैठ गई। निरुपम दूर हटने लगा तो उसने उसका हाथ पकड़कर कहा, "आपको मुझसे भय लगता है क्या?"

"हाँ, तुम ज्वाला हो और मुझको उसमें जल जाने का भय है।"

"क्या मैं ज्योति नहीं हूँ, जो जगत् को प्रकाशमान कर रही है?"

"अवश्य हो, परन्तु एक टिमटिमाते दीपक की। सूर्य के महान् प्रकाश की तुलना में तुम कुछ नहीं हो।"

"पर सूर्य तो दूर है और दीपक समीप होता है।"

"फिर भी उसका प्रकाश अधिक दूर तक फैला होता है और उसके अस्त पर होने पर ही दीपक में अधिक प्रकाश होता है। सूर्य से हम प्रकाश और ऊष्मा प्राप्त करते हैं, परन्तु दीपक से आग लग जाने की सम्भावना बनी रहती है।"

"फिर भी दीपक अधिक सुन्दर और आकर्षक होता है।"

"हाँ, केवल रात्रि के अंधकार में। जब सूर्य निकल आता है तब दीपक का प्रकाश फीका तथा निस्तेज प्रतीत होने लगता है। उस समय लोग दीपक को बुझा देते हैं।"

"आपका सूर्य निकल आया प्रतीत होता है।"

"हाँ, भगवान् तथागत के पश्चात् एक श्रावक के लिए संसार-सौन्दर्य और वैभव फीका हो जाता है।"

"फिर भी एक श्रावक महाप्रभु हैं, जो मेरे सहवास के लिए उतावले हो रहे हैं।"

"कोई निम्न कोटि के पतित जीव ही ऐसे हो सकते हैं।"

"आपके महाप्रभु विचक्षण कौल्यायन क्या निम्न कोटि के श्रावक हैं?"

"तो वे तुम्हारी इच्छा करने लगे हैं?"

"आपको मेरे कहने का विश्वास नहीं है क्या?

"अति विचित्र बात है!"

"फिर भी यह सत्य है, परन्तु वे वृद्ध हैं, श्रावकमात्र हैं और फिर उनकी इच्छा उनमें उत्पन्न हुई वासनामात्र की सूचक है। मैं अपने को इतने कम मूल्य पर नहीं दे सकती।"

"तो तुम अपना मूल्य जानती हो?"

"क्या आप मुझको मूर्ख समझते हैं?"

"हाँ देवी ! मुझ-जैसे निर्धन श्रावक को तुमने वासना की दृष्टि से देखा है। यह स्वयं को कूड़े-करकट में फेंकने के समान ही तो है!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरे मन में आपके प्रति वासना की भावना नहीं। मैं आपसे वास्तव में प्रेम करती हूँ।"

"तो तुम्हारी पाटलिपुत्र जाने की योजना का क्या हुआ?"

"वह है। और उसको शीघ्र कार्य रूप में परिणत करने के लिए ही आपको यहाँ लाई हूँ। यह तो व्यर्थ की बात चल पड़ी थी।"

"तो छोड़ो इसको, उसकी बात करो।"

"आपको मेरे साथ पाटलिपुत्र चलना होगा।"

"क्यों?"

"मेरे संरक्षक बनकर।"

"मैं तो श्रावक हूँ।"

"सहायता करना आपका धर्म है।"

"मैं विशालापुरी नहीं छोड़ूँगा।"

"क्यों, क्या यहाँ किसी से मोह हो गया है?"

"मोह तो बहुत व्यक्तियों से है। तुमसे भी मोह है। तुम्हारे व्यवहार को उचित न मानते हुए भी तुम्हें उपदेश देने चला आता हूँ। परन्तु मेरा यह मोह स्वार्थमय नहीं है।"

"निस्स्वार्थ मोह को क्या कहते हैं?"

"कर्तव्य।"

ज्योति हँस पड़ी। जब निरुपम को उसके हँसने का कारण समझ में नहीं आया तो ज्योति ने अपना आशय समझाया— "देखिए प्रभु! साधारण जनता की भाषा में जब मोह स्वार्थरहित है तो उसको प्रेम कहते हैं, सो मैं आपसे प्रेम करती हूँ।"

"तो तुम मुझसे प्रेम किए जाओ। मुझको इसमें क्या आपत्ति हो सकती है!"

"अभिप्राय यह कि आपको मुझसे डरना नहीं चाहिए।" इतना कहकर उसने निरुपम का हाथ पकड़कर अपना कोमल हाथ उस पर सहलाते हुए कहा, "आपको मेरे साथ पाटलिपुत्र चलना होगा।"

निरुपम परास्त हो गया। वह मान गया कि ज्योति को पाटलिपुत्र ले जाएगा और वहाँ पर उसकी कुमार सम्प्रति से भेंट कराने का यत्न भी करेगा।

निरुपम और भामिनी में कभी भी प्रेम तथा विवाह के विषय में बातें नहीं हुईं। उनके वार्तालाप का विषय सर्वदा बौद्धिक होता था। भामिनी ने बौद्ध धर्म के विषय में बहुत-सी बातें उससे जान लीं और वह समझ गई कि यह धर्म राज्य से प्रोत्साहित होने पर भी फैल नहीं सकता। यों तो व्यक्तिगत रूप से बौद्धों में कई गुणवान और त्यागमूर्ति महानुभाव भी थे, परन्तु वे अपवादमात्र थे। बौद्ध श्रावक और श्राविकाएँ प्रायः अशिक्षित और संसार में असफल व्यक्ति होते थे। श्रावक-श्राविकाओं के परस्पर मिलने में बाधाएँ होने पर भी परस्पर समागम होते थे। इस प्रकार वे राज्यकोष के आश्रय में पलते थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता पड़ने पर यौन-तृषा की तृप्ति भी कर सकते थे। इससे उनका जीवन सुगम था।

निरुपम एक दिन भामिनी के पास आया तो उसका मुँह मलिन हो रहा था। भामिनी ने देखा तो विस्मय से पूछा, "प्रभु! क्या बात है? मुख पर चिन्ता की रेखाएँ दिख रही हैं।"

"कुछ विशेष बात तो नहीं है। मैं शीघ्र ही कुछ काल के लिए पाटलिपुत्र जाने वाला हूँ।"

"क्या काम है वहाँ आपको?"

"महाप्रभु की आज्ञा है। एक उपासिका को वहाँ पहुँचाना है।"

"एक उपासिका को पाटलिपुत्र पहुँचाने के लिए एक श्रावक की नियुक्ति हुई है? ऐसी कौन सौभाग्यशालिनी है?"

"इस गृह की स्वामिनी, इन्दु की पुत्री ज्योति।"

"आपने तो बताया था कि वह वेश्या है?"

"उसकी लड़की राजप्रासाद में पहुँचना चाहती है। मैं यहाँ के बौद्ध संघ के प्रमुख चालक से परिचयपत्र लेकर उसके साथ जा रहा हूँ।"

"एक वेश्या को राजप्रासाद में पहुँचाने की क्या आवश्यकता हुई है?"

"यह बात संघ की कूटनीति से सम्बन्ध रखती है।"

"क्या आयु है उस लड़की की?"

"उन्नीस-बीस वर्ष प्रतीत होती है। माँ तथा पुत्री से मेरा केवल तीन वर्ष का परिचय है।"

भामिनी इस परिचय से उदास ही हुई। इसके पश्चात् उसके पास वार्तालाप के लिए कोई विषय नहीं रहा। दोनों अपने-अपने विचारों में लीन हो गए। भामिनी यह विचार कर रही थी कि निरुपम भी अन्य श्रावकों की भाँति वेश्याओं और भिक्षुणियों से घिरा हुआ है। वह भी उनकी भाँति स्त्रियों से मेल-मिलाप रखता है। फिर भी उसको अपने मन को टटोलने की आवश्यकता पड़ी। वह भली-भाँति समझती थी कि उसका मन निरुपम की ओर खिंच रहा है। वह श्रावक है, इस कारण उससे विवाह नहीं कर सकती। निरुपम स्वयं बौद्ध मतानुयायी तो नहीं, परन्तु संघ का आश्रय भी छोड़ नहीं सकता। इससे उसको इस ओर से अपना मन हटाना चाहिए। इतना कुछ तो वह पहले ही विचार कर चुकी थी। अब इस समाचार से कि वह एक वेश्या की कुमारी लड़की को साथ लेकर पाटलिपुत्र जा रहा है, उसकी रही-सही आशा भी विलुप्त हो गई।

निरुपम विचार कर रहा था कि वह ज्योति के साथ क्यों जा रहा है? वह भामिनी से विवाह करना चाहता है। उसके लिए वह गृहस्थाश्रम में आने का विचार कर रहा है। फिर भी वह न तो ज्योति को न कर सका और न महाप्रभु कौल्यायन को।

इस प्रकार ज्योति की अनुपस्थिति में वह मन में संकल्प करने लगा कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योति और महाप्रभु को जाकर कह देगा कि वह पाटलिपुत्र नहीं जा सकेगा। परन्तु क्या वह भामिनी को सब-कुछ बता दे? उसके मन में विचार आया कि पहले ज्योति और महाप्रभु से छुटकारा पा ले, उसके पश्चात् वह भामिनी को सब-कुछ बता देगा, और उससे विवाह करके सुख से जीवन व्यतीत करेगा।

इतना विचार करके उसने भामिनी से विदा माँगने के लिए मुँह उठाया। भामिनी वहाँ से भीतर के आगार में जा चुकी थी। उसे अनुपस्थित देख वह विस्मय करता हुआ वहाँ से चला गया। उसके मन में आया कि वह तुरन्त जाकर ज्योति और महाप्रभु से छुट्टी ले ले। इस प्रकार संकल्प करता हुआ वह विहार की ओर चल पड़ा।

भामिनी को जब यह विश्वास हो गया कि निरुपम से विवाह का विचार करना व्यर्थ है तो मन को मसोसकर निरुपम को वहीं छोड़ शयनागार में जा चादर ओढ़कर लेटी रही। वज्रबाहु के लौटने का भी समय हो गया, परन्तु वह पलँग पर लेटी हुई विचार में लीन थी। चक्रिक जब उसको बुलाने आया और उसने आगार का द्वार खटखटाया तो वह उठी और पूछने लगी, "कौन है?"

"चक्रिक, बेटी!"

"क्या बात है?"

"पण्डित जी के साथ सेठ लक्ष्मीचन्द और दो स्त्रियाँ आई हैं। पंडित जी ने कहा है कि तुम्हें उन महिलाओं का आदर-सत्कार करना चाहिए।"

विवश भामिनी उठी और बाहर चली आई। उसके आने पर वज्रबाहु ने सेठ लक्ष्मीचन्द से उनका परिचय कराया, "श्रीमान्, यह है मेरी लड़की भामिनी।"

सेठ ने उसको सिर से पाँव तक देखा और कहा, "बेटी! सौभाग्यवती होवो।"

भामिनी ने हाथ जोड़कर नमस्कार की। फिर वज्रबाहु ने अभ्यागतों का परिचय कराते हुए कहा, "बेटी भामिनी! यह सेठ जी के साथ हमारे घर की स्वामिनी देवी इन्दु हैं और यह इनकी पुत्री देवी ज्योति।"

सेठ लक्ष्मीचन्द और दोनों स्त्रियाँ भवन देखने आई थीं। इस कारण वज्रबाहु ने कहा, "भामिनी बेटी! तुम इनके लिए अल्पाहार तैयार करवा दो, मैं इनको भवन दिखला देता हूँ।"

इन्दु और सेठ मकान देखने चले गए। वे पहले उधर गए जिधर के आगार रिक्त पड़े थे। ज्योति उनके साथ नहीं गई। वह भामिनी के पास खड़ी, उसको सिर से पाँव तक देखती हुई मुस्कराकर बोली, "भामिनी, बहुत सुन्दर नाम है तुम्हारा। रूप-रंग भी सुन्दर है। बहन! दिनभर यहाँ तुम्हारा क्या कार्यक्रम रहता है?"

भामिनी इस प्रकार के वार्तालाप की आशा नहीं रखती थी। फिर भी जब प्रश्न पूछा ही गया तो शिष्टाचार के नाते उत्तर देने लगी, "जब से हम यहाँ आए हैं कुछ विशेष काम नहीं है। दिनभर पुस्तकें पढ़ना और विचार-लोक में विचरना, बस यही काम है।"

"तो हमारे निवास-गृह पर आ जाया करो। मन बहल जाया करेगा— मेरा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तुम्हारा भी।"

"पर आप तो शीघ्र ही यहाँ से चली जाने वाली हैं न?"

"मैं! कहाँ? किसने कहा है तुमसे?"

"एक श्रावक ने, जो आपके साथ पाटलिपुत्र जा रहे हैं। वे यहाँ नित्य ही भिक्षा-वृत्ति करने आते हैं।"

"प्रभु निरुपम भद्रायण? वे यहाँ भिक्षा-वृत्ति करने आते हैं क्या? ठीक, मैं समझ गई। निस्सन्देह तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो।"

भामिनी अपने मन की बात के ज्योति पर प्रकट हो जाने से लज्जा से लाल हो गई। ज्योति उसकी बाँह में बाँह डालकर उसके साथ चल पड़ी। भामिनी पाकशाला की ओर जा रही थी। ज्योति ने उसके कान के समीप होकर पूछा, "बहन! मुख लाल हो गया है? क्यों? क्या कोई रहस्य है इसमें?"

भामिनी तब तक सँभल गई थी। उसने मुस्कराते हुए कहा, "आप-जैसी सुन्दरी रमणी के मुख से अपने को सुन्दर कहे जाने पर मुझको लज्जा लगने लगी थी।"

"निरुपम का भेद खुल जाने पर नहीं?"

इस कथन से तो भामिनी को रोमांच हो आया और उसकी आँखें तरल हो उठीं। भामिनी के शरीर में कँपकँपी होने का अनुभव कर ज्योति ने उसके मुख पर देखा और उसकी आँखों में अश्रु-जल देख खिलखिलाकर हँस पड़ी। इससे भामिनी ने उसकी बाँह में से बाँह निकाल ली और पाकशाला की ओर जाने के स्थान अपने शयनागार की ओर घूम गई। ज्योति ने यह जान कि वह भाग रही है, उसकी बाँह को पकड़ लिया और कहा, "कहाँ जा रही हो मेरी प्यारी बहन? देखो, तुम्हारे मन की बात को मैं जान गई तो कुछ हानि नहीं हुई, परन्तु कहीं वे पुरुष जान गए तो फिर श्राविका बने बिना कोई दूसरा उपाय नहीं रहेगा।"

भामिनी इस कथन का अर्थ समझने के लिए खड़ी हो गई और प्रश्नसूचक दृष्टि से ज्योति को देखने लगी। ज्योति ने कहा, "चलो, पहले भृत्य को कुछ मिष्ठान्न-पानक लाने के लिए कह दें, पश्चात् एकान्त में बैठकर वार्तालाप करेंगी।"

भामिनी समझ गई कि उसको इनके लिए अल्पाहार का प्रबन्ध करना है। इस कारण अपनी ओढ़नी के आँचल से आँखें पोंछ, पाकशाला में जा पहुँची। वहाँ नौकर बैठा सायं के लिए सब्जी काट रहा था। भामिनी ने उसको कहा, "पिंगल! अतिथि आए हैं, उनके लिए मिष्ठान्न और पानक का प्रबन्ध कर दो।"

इतना कहकर वह स्नानागार में जा मुख-प्रक्षालन करने लगी। ज्योति उसके साथ ही थी। जब भामिनी मुख-प्रक्षालन कर शान्त हो गई तो ज्योति ने उसको सान्त्वना देने के लिए कहा, "क्या बहुत प्रेम है तुम्हारा उससे?"

"किससे?"

"वाह, अब फिर मुझको बनाने लगी हो? निरुपम भद्रायण की ही तो बात हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे थे?"

अब भामिनी को अपने मन की बात उससे कहने पड़ी, "वे यहाँ भिक्षा-वृत्ति करने आते हैं। वे सभ्य हैं, सुशील, विद्वान् और सुन्दर हैं। उनसे कोई भी स्त्री प्रेम किए बिना नहीं रह सकती। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमारा विवाह होगा ही।"

"ओह! तो श्रावक महोदय विहार के भीतर की बातों का प्रचलन यहाँ भी करना चाहते हैं?"

"विहार के भीतर की बातों का? वे बातें क्या हैं? मैं उन बातों को नहीं जानती।"

"मैं जानती हूँ, भामिनी! विहार के भीतर के आचरण और बाहर के आचरण में बहुत अन्तर है। विहार की कोई भी स्त्री अपना एक पति स्थायी रूप से नहीं बना सकती। विहार के बाहर तो एक पति की एक ही पत्नी होती है और पत्नी का एक ही पति। विहार में चोरी और छिप-छिपकर यौन-सम्बन्ध बनते हैं, बिगड़ते हैं और किसी को अधिकार नहीं कि वह किसी से इस बिगड़ने अथवा बनने के लिए रोष प्रकट कर सके। एक उफ़ान आता है और वह निकल जाता है। उफ़ान में हुए हानि-लाभ का कोई ध्यान नहीं रखता।"

इस समय वज्रबाहु की आवाज़ आई, "बेटी भामिनी! इधर आओ। अल्पाहार तो भिजवा दिया है, परन्तु तुम दोनों कहाँ हो?"

भामिनी और ज्योति बातें करती-करती भामिनी के शयनागार में पहुँच गई थीं। वज्रबाहु की पुकार सुन दोनों बाहर के आगार में चली आईं। सेठ लक्ष्मीचन्द और इन्दु वहाँ बैठे थे। पिंगल उनके सामने दूध और मिष्ठान्न परस गया था। वज्रबाहु उनके सामने खड़ा हो उनको आहार लेने के लिए कहने लगा। इन दोनों के बैठने पर वज्रबाहु ने भी बैठते हुए कहा, "देखो भामिनी! सेठ जी को इस गृह की आवश्यकता आ पड़ी है, और वे इस मकान की स्वामिनी से इसको दस सहस्र स्वर्ण पर मोल ले रहे हैं। इस कारण हमको अब अपने निवास के लिए कोई अन्य प्रबन्ध करना पड़ेगा।"

"सेठ जी से ही कहिए न पिता जी! कि हमारे लिए वे कहीं अन्य गृह ढूँढ दें।"

"वे तो कह रहे हैं कि उनके अपने गृह का एक भाग रिक्त पड़ा है, हम वहाँ रह सकते हैं।"

"हम वहाँ रह सकते हैं तो यहाँ क्या होगा, जो वहाँ नहीं हो सकता?"

"सेठ जी को अपने रहने के लिए चाहिए। ये एक और विवाह कर रहे हैं। इनकी नववधू यहाँ आकर रहेगी।"

"सेठ जी?" विस्मय से भामिनी के मुँह से निकल गया।

ज्योति खिलखिलाकर हँस पड़ी और कहने लगी, "देखो भामिनी! मैं बताती हूँ।" उसने भामिनी के गले में बाँह डालकर कह दिया, "मेरा सेठ जी से विवाह हो रहा है और मैं यहाँ आकर रहने वाली हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु···"

ज्योति समझ गई थी कि वह उसके पाटलिपुत्र जाने की बात कहने वाली है, इस कारण उसकी बातचीत बीच में ही काटकर उसने कहा, "परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं। मैं तो यहाँ आऊँगी ही। हाँ, मैं यह चाहती हूँ कि इस ओर के ये चार आगार आपके लिए छोड़ दूँ। आप भी रहना और मैं भी रहूँगी। बताओ ठीक है न? फिर तुम और मैं नित्य मिल सकेंगी। अन्यथा मैं यहाँ अकेली उदास ही तो रहा करूँगी।"

भामिनी अस्वीकार नहीं कर सकी। फिर भी वह इस बात पर विस्मय करती रही कि ज्योति का विवाह सेठ लक्ष्मीचन्द से होगा अथवा वह पाटलिपुत्र जाएगी?

निरुपम विहार से लौटा तो सीधा महाप्रभु कौल्यायन के पास पहुँचा। महाप्रभु दिन-रात विहार के प्रबन्ध में लगा रहता था। कई सहस्र श्राविक-श्राविकाओं के भोजन, वस्त्र तथा निवास का प्रबन्ध उसे करना होता था। यद्यपि कई श्रावक इसमें उसका हाथ बटाते थे, तथापि अध्यक्ष होने के नाते उसे सब बातों का निरीक्षण स्वयं करना होता था।

सायंकाल प्रबन्ध समाप्त कर वह कार्यालय से निकला ही था कि निरुपम उसके समक्ष आ खड़ा हुआ।

"कैसे आए हो?" महाप्रभु ने पूछा।

"मैं विहार छोड़ना चाहता हूँ।"

"क्यों, क्या हुआ है?"

"आप अपने निवासगृह में ही चल रहे हैं न? वहाँ चलकर एकान्त में बता दूँगा।"

"हाँ, चलो।"

दोनों महाप्रभु के आगार में जा पहुँचे। यह आगार अन्य आगारों से कुछ बड़ा था। यद्यपि इसमें किसी प्रकार की सजावट नहीं थी, तो भी यह साफ-सुथरा और पक्का बना था। सोने के लिए एक कोने में लकड़ी का एक तख्त रखा था। आगार में स्वाध्याय इत्यादि के लिए बीचोंबीच आसन लगा था। इस आसन के समीप कुछ आसन और भी लगे थे।

कौल्यायन एक आसन पर बैठ गया और अपने सामने के आसन पर निरुपम को बैठने के लिए कहकर पूछने लगा, "हाँ, तो अब बताओ विहार क्यों छोड़ना चाहते हो और विहार छोड़कर कहाँ जाना चाहते हो?"

"मैं गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होना चाहता हूँ।"

"क्यों?"

"एक लड़की से मेरा प्रेम-सम्बन्ध हो गया है और उससे विवाह करने की इच्छा है।"

"प्रेम? तुम जैसे पढ़े-लिखे विद्वान् को अभी तक प्रेम के अर्थ समझ में नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आए? अति विस्मयजनक बात है, निरुपम! क्या तुम नहीं जानते कि उस लड़की के साथ यौन-सम्बन्ध रखकर भी तुम श्रावक रह सकते हो? यद्यपि वह व्यवहार कुछ अच्छा नहीं, तो भी यह उतना निकृष्ट नहीं, जिनता कि विवाह करके मोहजाल में फँस जाना।

"प्रेम यौन-आकर्षण का दूसरा नाम है। इसको शान्त करने का एक उपाय सम्भोग है। आकर्षण का लक्ष्य यदि प्राप्त हो सके तो ठीक है, अन्यथा उसका विकल्प ढूँढ लेना चाहिए। सम्भोग के पश्चात् उसको भूल जाना ही उचित है। स्मरण रखने से मोह बढ़ता है और मोह निर्वाण के मार्ग में बाधा बनकर खड़ा हो जाता है।"

निरुपम इस मीमांसा को सुनकर मुस्कराया और बोला, "प्रभु! आपकी इस जीवन-मीमांसा पर ही मुझको विश्वास नहीं रहा। मैं विचार करता हूँ कि यदि हम सब प्रकृति के ही भिन्न रूप हैं, तो फिर निर्वाण की आवश्यकता और उपादेयता क्या है? जब सब-कुछ शान्त हो जाएगा तो मैं और आप में अन्तर ही क्या रह जाएगा और हम उस निर्जीव निर्वाण और निश्चल अवस्था को प्राप्त करने के लिए क्यों कुछ करें? जिस अवस्था में सब-कुछ नकारात्मक ही है, उस अवस्था के अस्तित्व में ही क्या भरोसा हो सकता है?"

महाप्रभु खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, "तुम्हारे चले जाने से विहार सूना नहीं रह जाएगा? मेरी सम्मति तो यही है कि तुम यहाँ रहो। हमारे यहाँ पढ़े-लिखे श्रावकों की कमी है। जो जातक तुम लिख रहे हो वे बहुत सुन्दर बन रहे हैं। मैंने उनमें से दो ग्रन्थ महाराजाधिराज देवानांप्रिय प्रियदर्शी की सेवा में भेजे थे। पाटलिपुत्र में उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है। दस लेखक निरन्तर उनकी प्रतिलिपि करने में लगे हुए हैं। ऐसी अवस्था में संघ तुम्हारे लिए सब-कुछ करने को तैयार है।"

"मैं अपनी प्रेमिका से विवाह करना चाहता हूँ।"

"वह कौन है?"

"सेठ लक्ष्मीचन्द जैन-धर्मावलम्बी के त्रिशरण पुस्तकालय के अध्यक्ष की पुत्री भामिनी।"

"तो यदि हम उसको श्राविका बना लें और तुम संघ में रहते हुए अपनी प्रेम-तृषा तृप्त कर सको, तो कैसा रहे?"

"मैं विहार में अपना दम घुटता-सा पाता हूँ। जहाँ मैं स्वयं नहीं रहना चाहता, उसको यहाँ लाकर रखने की सम्मति भला कैसे दे सकता हूँ?"

"इतना विस्तृत मैदान, संगति करने के लिए इतनी संख्या में साथी और इतनी सुख-सुविधा अन्यत्र कहाँ मिल सकती है? यहाँ खाने-पहनने की चिन्ता नहीं, विनोद और रहने की चिन्ता नहीं, सर्वत्र मान-प्रतिष्ठा प्राप्त है। संसार से वैराग्य प्राप्त करने का ऐसा अनुपम अवसर और कहाँ मिल सकता है?"

ये प्रलोभन अति आकर्षक थे। निरुपम इनकी अवहेलना नहीं कर सकता था। इस कारण वह बोला, "प्रभु! मैं विहार में रहने के इन लाभों को जानता हूँ और उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य, जो एक व्यक्ति को देना पड़ता है, वह भी जानता हूँ। मैं यह बात भलीभाँति समझ गया हूँ कि बौद्ध संघ का संगठन अद्वितीय है, परन्तु इस संघ के उद्देश्य पर मेरा विश्वास नहीं रहा। मुझको पढ़ने-लिखने का व्यसन है, यदि यह पूरा हो सके और इसके साथ ही मेरी प्रेमिका मुझको मिल सके तो मुझको आपके जातक लिखने में कोई आपत्ति नहीं।"

"तो हम उसको श्राविका बना लेते हैं।"

"पर इससे मेरी इच्छा की पूर्ति तो न होगी! मैं तो उस पर अपना और केवल अपना ही आधिपत्य चाहता हूँ। यह तभी संभव है जब मैं गृहस्थाश्रम में प्रवेश करूँ। श्राविका बन जाने से क्या जाने उसको भी यहाँ का वैराग्य-रोग लग जाए! भोग-विलास करना और फिर निर्मम निर्मोही बन प्रेम के पात्र को भूल जाना, यह बात मुझको पसन्द नहीं।"

"निरुपम! तुम एक महान् भ्रम में फँस गए हो। पत्थर के एक ढेले का किससे और कैसे मोह तथा प्रेम हो सकता है? मोह ही तो दुःख का कारण है। इसी को छुड़ाने के लिए ही भगवान् तथागत का अवतार हुआ है।"

"पर प्रभु! मैं अपने को केवलमात्र प्रकृति का एक ढेला नहीं मानता। मैं अपने को चलायमान, चंचल, विचारशील और भले-बुरे में भेदभाव करने के योग्य आत्मा मानता हूँ। यह शरीर उससे विद्रोह कर निश्चल होने जा रहा था, मैंने इस रहस्य को समझकर उसको पुनः कार्य पर आरूढ़ कर लिया है।"

"निरुपम! तुम घोर पतन की ओर अग्रसर हो रहे हो। मैं अपने मत के सिद्धान्तों के अनुसार तुमको विवश करना नहीं चाहता। तुम गर्त में गिरो अथवा उन्नति के शिखर की ओर जाओ, इसमें मेरा कुछ भी लाभ अथवा हानि नहीं। फिर भी मैं यही कहूँगा कि भगवान् तथागत तुम्हारा कल्याण करें, वे तुम्हारा उचित मार्गदर्शन करें।

"परन्तु एक बात बताओ, तुम ज्योति को लेकर पाटलिपुत्र जा रहे हो अथवा नहीं?"

"मैं इस कार्य में अब कोई रुचि नहीं रखता।"

"देखो, तुम गृहस्थ में जा रहे हो; वहाँ तुमको धन की आवश्यकता होगी। ज्योति का कार्य करने से तुमको अपार धन मिलेगा।"

"कितना धन मिलेगा?" निरुपम इस सत्य को समझता था कि इस संसार में धन एक बहुत भारी शक्ति है, इससे वह नम्र पड़ गया।

महाप्रभु ने उसको लोभ में फँसते देख प्रसन्न होकर कहा, "यदि तुम उसके साथ जाओगे तो केवलमात्र जाने के लिए भोजन-वस्त्रादि के अतिरिक्त पाँच सौ स्वर्ण-मुद्रा। वहाँ पर रहने का, जितना भी समय लगे, उसमें पाँच सौ स्वर्ण-मुद्रा प्रति-मास। उसके कार्य में सफल होने पर एक सहस्र स्वर्ण उपहार के रूप में और लौटने के लिए पाँच सौ स्वर्ण-मुद्रा और अधिक।"

निरुपम इतनी धनराशि की बात की अवहेलना नहीं कर सका। फिर भी उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, "मैं विचार करके कल अपना निर्णय बताऊँगा।"

निरुपम अपने मन को धिक्कारता था कि वह अपने को लोभ से बचा क्यों नहीं सका? भामिनी के सम्मुख तो वह मन में यह निर्णय किए था कि अब ज्योति का मुँह नहीं देखेगा। ज्योति के सम्मुख वह उसके सौन्दर्य के तेज को सहन नहीं कर सका और अब महाप्रभु की युक्तियों से वह परास्त हो गया था। इस प्रकार अपने मन की चंचलता को देख वह अपने-आपको कोसने लगा। वह विचार करता था कि वह विचित्र संन्यासी है, जिसमें वासना, प्रेम, धन का लोभ और जीवन का मोह सब विद्यमान हैं।

इस पतन का रहस्य उसको एक दिन भामिनी ने बताया था। शरीर में जो आत्मा है, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न उस आत्मा के स्वभाव हैं। इस आत्मा को परमानन्द परमात्मा में लीन कर देने से ये स्वभाव छूट सकते हैं। इसके लिए भक्ति, ज्ञान और कर्म की आवश्यकता है। कर्म में निर्लिप्त रहने के लिए निष्काम भावना की आवश्यकता है।

कर्म के विषय में तो महाप्रभु कौल्यायन ने भी माना है। उसने कहा था कि निर्लिप्त और निस्स्वार्थभाव से घृणित-से-घृणित कार्य करने पर भी मोक्ष में बाधा नहीं पड़ेगी। परन्तु ज्ञान और भक्ति द्वारा परमात्मा में लीन होने की बात उसने नहीं कही थी और वह ऐसा कह भी तो नहीं सकता था, क्योंकि उसका परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं था।

निरुपम के चित्त में अशान्ति थी। वह समझने लगा था कि उसके मन में भगवान् पर दृढ़ निष्ठा नहीं, तभी तो वह बिना साधन गृहस्थ में प्रवेश करने से डरता है। उसकी समझ में आया कि उसके चित्त में लोभ का मूल कारण ही परमात्मा में अविश्वास है। उसके मन में परमात्मा पर विश्वास और भक्ति उत्पन्न करने के उपायों पर विचार उठने लगे। वह अपने मन में यह विचार करने लगा कि वह अगले दिन इस विषय पर भामिनी से बात करेगा।

विहार गंगा-तट पर था और वह वहाँ पर उपासना के लिए चला गया। आज उसका मन चंचल हो रहा था और वह अपने मन को एकाग्र नहीं कर सका। इस प्रकार उपासना करने को व्यर्थ समझ वह वहाँ से उठा और अपने आगार में चला आया। वहाँ उसका साथी सोम उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह सोम की ओर ध्यान दिए बिना ही अपने आसन पर बैठ, कागज-कलम ले लिखने लगा। सोम ने उसको कार्य में लगते देख पूछा, "कहाँ थे निरुपम?"

"गंगातट पर उपासना में लीन होने का यत्न कर रहा था।"

"शान्ति मिली?"

"नहीं।"

"तो यहाँ की सुन लो। महाप्रभु की ओर से दो बार बुलावा आ चुका है। निरुपम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की खोज पूर्ण विहार में हो रही है।"

निरुपम कुछ काल तक विचार करता रहा। पश्चात् वह उठा और महाप्रभु के निवास की ओर चल पड़ा। वहाँ महाप्रभु गम्भीर विचार में मग्न बैठा था। निरुपम को देख उसको चेतना हुई और उसने कहा, "निरुपम! तुम अभी नगर लौट जाओ और ज्योति से मिलकर निश्चय कर आओ कि किस दिन पाटलिपुत्र जाना है। पाँच दिन के भीतर यहाँ से चल देना चाहिए। पाटलिपुत्र में उसकी प्रतीक्षा की जा रही है।"

"भगवन्! कल प्रातःकाल यह काम कर दूँगा।"

"नहीं, आज सायंकाल ही यह संदेश जाना चाहिए। कल तक तो देरी भी हो सकती है। सेठ अपनी ओर से ज्योति से विवाह का पूर्ण यत्न कर रहा है।"

निरुपम इन्दु के प्रासाद में जा पहुँचा। एक ऊँचे चबूतरे पर संगमरमर के ऊँचे द्वार के भीतर से प्रासाद में प्रवेश मिलता था। द्वार पर चार सुभट सदैव खड़े रहते थे। इन सुभटों का नायक नगर के प्रायः उन सब व्यक्तियों को भलीभाँति पहचानता था, जो इस मन्दिर में यात्रा के लिए आया करते थे। अपरिचित व्यक्ति को तब तक भीतर जाने नहीं दिया जाता था, जब तक उसको लानेवाला कोई परिचित साथ न हो।

इन्दु इस समय प्रतीक्षा-गृह में आती थी और भेंट के लिए आए लोगों से मिलती, बातचीत करती और उस समय नृत्य, संगीत आदि मनोरंजन की बातें होती थीं। ऐसे समय में निरुपम भद्रायण को देख द्वार पर खड़े भट और नायक विस्मय करने लगे। फिर भी उन्होंने उसे रोका नहीं। वह द्वार के भीतर जाकर प्रतीक्षा-गृह में पहुँच गया। वहाँ इन्दु का नृत्य हो रहा था। नगर के सौ से अधिक धनाढ्य जन बैठे सुरापान करते हुए नृत्य देख रहे थे। निरुपम वहाँ पहुँचा तो आगार के एक कोने में जा खड़ा हुआ। इन्दु पाँव में घुँघरू बाँधे नाच रही थी। मृदंग और वीणा का साथ हो रहा था। दर्शक इन्दु की प्रत्येक मुद्रा पर वाह-वाह कर रहे थे। निरुपम इन्दु के शरीर की गठन और लचक पर विस्मय करता रह गया। वास्तव में इन्दु के नृत्य में रस था, भाव था और सौन्दर्य।

निरुपम का विचार था कि ज्योति वहीं पर होगी। पर वह वहाँ नहीं थी। इस कारण कुछ काल पर्यन्त वह वहाँ का दृश्य देख प्रतीक्षा-भवन से बाहर निकल आया और एक सेवक को, जो मद्य के जूठे पात्र उठाकर ले-जा रहा था, संकेत से बुलाकर पूछने लगा, "देवी ज्योति कहाँ मिलेगी?"

"अपने भवन में।"

"उसकी दासियाँ कहाँ मिलेंगी?"

सेवक ने एक दासी की ओर संकेत कर दिया। निरुपम उसके समीप जा ज्योति के विषय में पूछने लगा। दासी ने कहा, "वे संगीत का अभ्यास कर रही हैं।"

"क्या उससे भेंट नहीं हो सकती?"

"इस समय नहीं। परन्तु····" दासी ने कुछ झिझकते हुए कहा "सम्भव है वे आपको इन्कार न करें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो कैसे पता चले कि वे मिल सकेंगी अन्यथा नहीं?"

दासी ने एक अन्य दासी की ओर संकेत कर दिया। निरुपम उसके पास गया और भेंट के विषय में पूछने लगा। वह दासी बोली, "शायद आपके लिए मनाही नहीं है। देखिए, उस दूसरे प्रांगण में मीनार मिलेगी। उससे पूछिए।"

निरुपम प्रतीक्षा-भवन के पीछे से होकर दूसरे प्रांगण में जा पहुँचा। वहाँ एक प्रतिहार से मीनार के विषय में पूछने पर उसको एक सामने के आगार में जाना पड़ा। वहाँ उसे तीन-चार दासियाँ हँसी-ठट्ठा करती हुई मिलीं। निरुपम के वहाँ पहुँचने पर वे सब गम्भीर हो गईं। निरुपम ने कहा, "मुझे मीनार दासी से काम है।"

एक दासी ने एक सर्वथा अल्पवयस्क युवती की ओर संकेत कर कहा, "यह मीनार है।"

"नहीं।" उस अल्पवयस्क दासी ने कहा, "प्रभु! मैं नहीं, यह स्वयं मीनार है।"

इस पर एक अन्य दासी बोल उठी, "नहीं भगवन्! ये दोनों नहीं, प्रत्युत मैं मीनार हूँ, कहिए क्या सेवा है?"

इस पर पहली फिर बोल उठी, "ऊँह! मैं मीनार हूँ। क्यों एक भले पुरुष की हँसी उड़ाती हो? प्रभु! मीनार तो वही है जिसकी ओर मैंने पहली बार संकेत किया था। परन्तु भगवन्! सूर्यास्त के पश्चात् एक श्रावक के साथ यह युवती किसी भी काम से नहीं जा सकती, इसी कारण अपने-आप को छुपा रही है।" अब तो सब दासियाँ चिल्लाकर कहने लगीं, "मैं मीनार हूँ।"

निरुपम समझ गया कि उसकी हँसी उड़ाई जा रही है। उसने सबको चुप कराकर कहा, "देखो! तुममें से कोई भी मीनार हो, यह सुन लो कि महाप्रभु कौल्यायन ने मुझको एक विशेष सन्देश देकर देवी ज्योति के पास भेजा है। मैं उनसे भेंट करना चाहता हूँ।"

यह सुन सब गम्भीर हो गईं। कुछ देर पश्चात् वह अल्पवयस्क दासी कहने लगी, "देवी इस समय संगीत का अभ्यास कर रही हैं और महाप्रभु का संदेश कल प्रातःकाल ही दिया जा सकेगा।"

"यह बहुत आवश्यक है।"

"यदि आप अपने नाम पर कुछ कहें तो शायद वे मिलने के लिए तैयार हो जाएँ।"

"तो मेरे नाम पर ही कह दो।"

यह सुन सब खिलखिलाकर हँसने लगीं और वह अल्पवयस्क दासी उठकर कहने लगी, "आप यहीं ठहरिए, मैं सूचना देने जा रही हूँ।"

जब मीनार चली गई तो एक दासी बोली, "भगवन्! पधारिये, खड़े-खड़े थक जाइएगा।"

वहाँ कोई पृथक् आसन नहीं था। केवल वह स्थान, जहाँ मीनार बैठी हुई थी, रिक्त पड़ा था। उसी स्थान पर बैठने का निमन्त्रण निरुपम को मिला था। परन्तु वह बैठा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब निरुपम नहीं बैठा, तो सब हँसने लगीं। एक ने व्यंग्य किया, "इस रात्रि के समय प्रभु ! देवी ज्योति से क्या काम आ पड़ा है ?"

"दिन और रात तो काल के कृत्रिम भेद हैं, हमारे लिए एक समय और दूसरे समय में कोई भेद नहीं होता।"

"ठीक है।" वही दासी बोली, "पुरुष पुरुष ही है और स्त्री स्त्री ही, दिन हो अथवा रात।"

फिर सब हँसने लगीं। निरुपम चुप और गम्भीर बना रहा। उस दासी ने बात जारी रखी, "स्वामिनी तो दिन-रात आपकी माला जपती रहती हैं। आप यदि उन पर तनिक-सी कृपादृष्टि रखें तो उनके लिए भी दिन-रात का भेद उड़ जाएगा।"

निरुपम इस पर भी चुप रहा। वह इन दासियों के व्यंग्य सुन मन-ही-मन आनन्द का अनुभव कर रहा था। दासी ने आगे कहा, "भगवन् ! आप जब उपदेश देने नहीं आते तो देवी उपासना में ऊँघने लगती हैं। और आपके समक्ष मंत्रमुग्ध हो बैठी हुई आपका मुँह देखा करती हैं। क्या मंत्र फूँका है आपने उन पर ?"

निरुपम अपनी प्रंशसा सुन क्रुद्ध नहीं था। वह चुपचाप खड़ा रहा और उसका व्यंग्य-कथन सुनता रहा। उसी समय मीनार आई और मुस्कराते हुए बोली, "चलिए महाराज ! देवी जी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

निरुपम जब वहाँ पहुँचा तो ज्योति हाथ में चौतारा लिये एक बहुत बड़े दर्पण के सामने बैठी तानालाप कर रही थी। उसके सम्मुख उसका शिक्षक और मृदंग बजाने वाले बैठे थे। निरुपम जिस द्वार से भीतर आया था, वह ज्योति की पीठ की ओर था। ज्योति ने उसको प्रवेश करते हुए दर्पण में देखा और ज्यों ही दोनों की आँखें मिलीं, ज्योति ने मुस्कराकर उसका अभिवादन किया। निरुपम उसकी पीठ के पीछे ही खड़ा हो उसकी दर्पण में देखने लगा। वह अभ्यास कर रही थी—

ग़ म ध नि सं। सं नि ध म। प-धम ग़ रि स
सं नि ध म, नि ध म प, म ग़ रे स, ग़ म ध नि स।
मधु मास आया।
पवन चली मदमाती, मधु मास आया।
कुसुमित कुसुम भये अब रंग रंग मन भाया॥
नव कलियन के ऊपर मतवारे भँवरे।
मँडराते फिरते हो क्यों मन ललचाया॥
जब सुरभित पवन चली कुसुम पराग लिये॥
मंत्र मुग्ध मानस ने विरह गीत गाया॥
हा···ग़ म ध नि सं, म ध नि सं ध नि सं, सं नि ध म ग़ रि
ग़ म ध नि सं मधु मास आया॥

शिक्षक ने उसके आलाप में संशोधन किया :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं मं ग्रं रिं सं, ग्रं रिं सं नि धम पध म, ग रि स मधुमास आया ॥

कितनी ही देर तक यह अभ्यास चलता रहा। इस सब समय में निरुपम गायिका की पीठ के पीछे खड़ा उसको दर्पण में देखता रहा। वह देख रहा था उसके सुन्दर मुख को, उसके कोकिल-सम काले चमकीले बालों को, उसकी लम्बी-लम्बी चौतारे पर चलती हुई अँगुलियों को, उसके रक्ताभ बारीक ओष्ठों को, उसकी मृग-समान मोटी-मोटी आँखों को और उसकी लम्बी ग्रीवा को। वह सुन रहा था, चाँदी की घंटियों के समान बारीक स्वर को, और मन में विचार कर रहा था, कितना सुखमय है यह संसार, जिसका उसने श्रावक बनकर त्याग किया हुआ है। क्या उसने ज्योति के उसके साथ विवाह के प्रस्ताव को ठुकराकर भूल नहीं की? क्या उसने इतनी रूपराशि का स्वामी बनना अस्वीकार कर मूर्खता नहीं की?

ज्योति ने संगीत बन्द किया, परन्तु निरुपम अभी भी मंत्रमुग्ध हुआ उसके रूप-लावण्य को निरख रहा था। ज्योति उसको इस प्रकार विस्मय में खड़े देख खिलखिलाकर हँस पड़ी। इससे उसकी मौक्तिक-माल-सम दंत-पंक्ति देख निरुपम को अपनी भूल का ज्ञान हो गया।

ज्योति उठ खड़ी हुई और शिक्षक तथा मृंदग बजानेवाले को छुट्टी देकर घूमी, और निरुपम को झुककर नमस्कार कर बोली, "प्रभु! क्या आज्ञा है?"

"महाप्रभु कौल्यायन ने यह संदेश देकर भेजा है कि आपको पाँच दिन के भीतर ही यहाँ से चला जाना है।"

"बस, इतनी-सी बात के लिए आपको कष्ट दिया है महाप्रभु ने?"

"कुछ कष्ट नहीं हुआ देवी! आज इस समय जो कुछ मैंने देखा है वह अलौकिक था और इसके लिए मुझे महाप्रभु का आभारी होना पड़ेगा।"

"क्या देखा है आपने?"

"अद्वितीय सौंदर्य, स्वर्गिक संगीत और अनुपम स्वरमाधुरी।"

"तब तो आपने कुछ नहीं देखा। इस संगीत से पूर्व मैं नृत्य का अभ्यास कर रही थी यदि मेरा नृत्य देखते तो आप अपने-आपको भी विस्मरण कर बैठते।"

"सच?"

"हाँ! देखेंगे आप?"

"बहुत रात व्यतीत हो चुकी है।"

"तब क्या हुआ? आप तो महाप्रभु की आज्ञा से ही विहार से बाहर हैं न? इस कारण आप पर कोई आपत्ति नहीं करेगा।"

"क्या आपत्ति उठ सकती है? और फिर अब तो मैं विहार ही छोड़ रहा हूँ।"

"सत्य? तब तो बैठिए। आज मैं पुनः नाचूँगी।"

निरुपम अभी विचार कर ही रहा था कि ज्योति ने ताली बजाई। एक दासी, जो शायद द्वार के समीप खड़ी उनकी बातें सुन रही थी, भीतर आकर सामने खड़ी हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जाओ," ज्योति ने आज्ञा दी—"विट्ठल जी को बुला लाओ !"

विट्ठल मृदंग बजानेवाले का नाम था। देवी के बुलाने पर वह घबराया हुआ लौट आया। उसके भयभीत मुख को देखकर ज्योति ने कहा, "दादा विट्ठल ! तनिक फिर से मृदंग पर थपकी दो। मैं नाच रही हूँ। आज मेरा जी बार-बार नाचने को कर रहा है।"

"देवी, बहुत नाच चुकी हो आज।" विट्ठल ने वक्र दृष्टि से श्रावक की ओर देखा।

"नहीं दादा !" ज्योति ने विट्ठल की पीठ पर लटक रही मृदंग को निकालकर भूमि पर रख दिया। विवश विट्ठल ने बैठकर मृदंग को स्वर में करना आरम्भ कर दिया।

दासी घुँघरू ले आई और ज्योति के पाँवों में बाँधने लगी। निरुपम को दासियों का व्यंग्य स्मरण आने लगा। उन्होंने कहा था कि देवी दिन-रात उसके नाम की माला जपती रहती हैं। यदि बात ऐसी है तो फिर ज्योति पाटलिपुत्र क्यों जा रही है? इस पर उसको अपने द्वारा विवाह-प्रस्ताव अस्वीकार करने की बात स्मरण हो आई। वह अनेकानेक विचारों में खो गया। अभी भी वह दर्पण के सम्मुख खड़ा था। उस दर्पण में उसे अपनी पूर्ण देह दिखाई दे रही थी। वह देख रहा था कि ज्योति भी खड़ी है और दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब देख रही है। दर्पण में जब दोनों की आँखें मिलीं तो ज्योति मुस्कराई जिससे निरुपम को रोमांच हो आया। ज्योति उठ खड़ी हुई और उसने ठनका देना शुरू कर दिया—छन छन छननन छन छन छन छन।

बस वह लगी भूमि पर उड़ने। कभी तो ऐसा प्रतीत होता था कि वह चल नहीं रही प्रत्युत नौका की भाँति तैर रही है। कभी ऐसा प्रतीत होने लगता था कि वह चिड़िया की भाँति फुदक रही है। कभी फूल के समान कोमल पगों से चलती और कभी छन छननन छन की धमक चौदस मचा देती।

निरुपम अपने-आपको पूर्णतया विस्मरण कर चुका था। उसको समय का ज्ञान नहीं रहा और पत्थर की मूर्ति की भाँति जहाँ खड़ा था, खड़ा ही रह गया।

जब नृत्य बंद हुआ तब भी वह वहाँ खड़ा किसी अन्तर्लोक में विचर रहा था। ज्योति उसके सामने आ खड़ी हुई और उसको सर्वथा संज्ञाहीन देख, बाजू से पकड़ हिलाने लगी। उसे उसने 'प्रभु' कहकर पुकारा।

निरुपम की संज्ञा लौटी तो उसको ज्ञान हुआ कि ज्योति उसका बाजू पकड़कर हिला रही है। उसको पुनः रोमांच हुआ और अनुभव हुआ कि निर्वाण का मार्ग मिथ्या है, सत्य यह है और यहाँ है।

जब निरुपम विदा होने लगा तो ज्योति ने पूछा, "कब जाना होगा पाटलिपुत्र?"

"बृहस्पतिवार के दिन।"

"आप साथ चलेंगे न?"

"अन्य कोई चारा नहीं रहा।"

"इस विचार से भटक तो नहीं जाएँगे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भटकने के लिए भी कोई मार्ग नहीं रहा।"

"भामिनी का आग्रह भी नहीं?"

"भामिनी!" भामिनी का नाम सुन वह स्तब्ध रह गया। वह समझ नहीं सका कि यह नाम ज्योति को कैसे पता चल गया। ज्योति ने प्रेमभरी चितवन से उसकी ओर देखकर कहा, "हाँ भामिनी····पर क्या मैं उससे कम सुन्दर हूँ?"

"नहीं। सुन्दरता में तो वह तुम्हारी परछाईं के तुल्य भी नहीं। परन्तु देवी! वह एक दृढ़निष्ठ है, तुम विचलित हो रही हो।"

"नहीं प्रभु! यह आपका भ्रम है। मैंने आज आपको अपना प्रेमोपहार दिया है। अब वह अन्य किसी को नहीं प्राप्त हो सकता।"

"तो पाटलिपुत्र जाने का प्रयोजन क्या है?"

"यह राजनीति है। इसका व्यक्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं। यदि आप जानना चाहते हैं तो सुनिए। मैं अपने मन की बात आपको बताने में कोई संकोच नहीं कर रही। मैं आपकी हो चुकी हूँ। इस कारण आपसे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखना चाहती।

"मैं बौद्ध मत से घृणा करती हूँ। यह केवलमात्र कुछ विशेष व्यक्तियों द्वारा अनुसरण करने का जीवन-मार्ग हो सकता है, जनसाधारण के ग्रहण का मार्ग नहीं। साधारण जीवन में और विहार के जीवन में यदि किसी बात का अन्तर है तो वह केवल यह है कि जहाँ संसार का भोग, विहार से बाहर, जीवन का एक अंग मानकर किया जाता है, वहाँ विहार में इसको भूल मानकर किया जाता है। भूल हो जाती है तो फिर उसके परिणामों से छूटने के लिए उससे तटस्थता को ग्रहण कर लिया जाता है।

"यदि आप यह कह दें कि ज्योति से आपका सम्बन्ध भूल था और आप उसके परिणामों में उत्तरदायी नहीं तो आप श्रावक हैं, और यदि आप यह मान जाएँ कि ज्योति आपकी पत्नी है और अब आपके इसके पत्नी मानने से जो भी उत्तरदायित्व आता है, आपका है, तो आप गृहस्थी हैं। मैं इस दूसरी अवस्था को श्रेष्ठ मानती हूँ।

"भारत में इस समय राज्य इस दूषित नीति को प्रोत्साहन दे रहा है। यों तो यह दूषित नीति राज्य को, देश को और इस मत को रसातल में ले जाएगी, फिर भी यह प्रक्रिया कम-से-कम काल में सम्पन्न हो, इसमें अपना योग देने के लिए मैं वहाँ जा रही हूँ।"

निरुपम भी ऐसे ही विचार रखता था। उसकी पूर्ण शक्ति भामिनी से वार्तालाप में ही व्यय हो जाती थी। आज एक वेश्या की लड़की को इतनी दूर की बात कहते देखकर वह आश्यर्य करने लगा। उसकी बौद्धमत के प्रति ज्योति की भावना में सन्देह नहीं हुआ। हाँ, उसको बौद्धमत में उपादान बनकर पाटलिपुत्र में जाना, मात्रा से अधिक अहंमन्यता प्रतीत हुई। इस पर उसने मुस्कराकर कहा, "देवी! जातियों के उत्थान-पतन में और राज्यों के पलटने में हम-जैसे क्षुद्र जीव क्या कर सकते हैं? हमारा इस प्रकार की बातें करना, छोटे मुँह बड़ी बात ही होगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं प्रभु ! हम छोटे नहीं हैं। मुझेको भगवान् ने सौन्दर्य दिया है और आपको विद्वत्ता। हमारे अतिरिक्त एक और व्यक्ति है। उसने योगसाधना से ज्ञान-चक्षु प्राप्त किए हैं। वह दूर तक देख सकता है। हम तीनों इस कार्य को सम्पन्न कर सकेंगे।"

"वह तीसरा कौन है?" निरुपम के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगी और उसको यह सुन कि कोई तीसरा भी है, जो ज्योति के कार्य-संचालन में योग देता है, असह्य होने लगा था।

निरुपम के इस प्रश्न पर ज्योति ने बहुत ही प्यार से उसकी ओर देखते हुए कहा, "वे महात्मा अभी प्रकट होना नहीं चाहते। समय आने पर आपको सब मालूम हो जाएगा। अब आप जाएँ और महाप्रभु कौल्यायन से कह दें कि बृहस्पतिवार की प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में मैं यहाँ से विदा हो जाऊँगी। परन्तु मेरे जाने की बात सर्वथा गुप्त रहनी चाहिए। मेरी माँ को भी पता नहीं चलना चाहिए।"

"क्यों?"

"यह नीति है। इसमें आपसे मेरा मतभेद हो सकता है। परन्तु इस कार्य में मेरी-आपकी किसी की नहीं चलेगी। वह तीसरा व्यक्ति ही इसमें आज्ञा देने का अधिकारी है।"

निरुपम जब विहार में पहुँचा तो सूर्य निकल आया था। विहार के द्वार पर पहुँचते ही उसे सीधा महाप्रभु के आगार में ले-जाया गया और द्वारपाल ने बताया कि श्रावक निरुपम भद्रायण रात्रि-भर विहार से बाहर रहा है। महाप्रभु ने द्वारपाल को विदा कर निरुपम से पूछा, "कहाँ रहे निरुपम?"

"देवी ज्योति के प्रासाद में।"

"क्या करते रहे?"

"देवी रात-भर नाचती तथा गाती रही है। उसके मधुर संगीत को सुन वहाँ से आने की इच्छा नहीं हुई।"

"कौन-कौन थे वहाँ पर?"

"देवी की सखियाँ थीं, मृदंग तथा वीणा बजानेवाले थे।"

"और कुछ··· ?"

"कुछ नहीं भगवन् !"

"तुम्हारा मुख मलिन प्रतीत होता है।"

"रात-भर जागने के कारण अत्यन्त थका हुआ हूँ।"

"तुमको मध्यरात्रि से पूर्व आ जाना चाहिए था।"

"भगवन् ! आपका सन्देश देना था। देवी रात्रि के तीसरे प्रहर तक नृत्य तथा गान में लीन रही। तब तक सन्देश देने के लिए एकान्त नहीं मिल सका।""

"क्या उत्तर लाए हो?"

"आपके आदेशानुसार बृहस्पतिवार प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में प्रस्थान होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"और तुम उसके साथ जाओगे?"

"हाँ। परन्तु मैं अब विहार में रहना नहीं चाहता। ज्योति को वहाँ छोड़कर मैं लौटकर भामिनी देवी से विवाह करना चाहता हूँ।"

"ठीक है। परन्तु जिस कार्य से तुम जा रहे हो, वह इस श्रावक के रूप में ही सम्पन्न हो सकेगा। वह कार्य सम्पन्न कर तुम श्रावक-पथ का त्याग कर सकते हो।"

"मुझको स्वीकार है।"

वहाँ से निरुपम अपने आगार में पहुँचा और सो गया। उस दिन वह भिक्षा-वृत्ति करने नहीं जा सका। सायंकाल जब वह एकान्त में बैठा तो पिछली रात की सब बातें उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। भामिनी की आँखों में अपने लिए प्रेम-भाव देख उसने निश्चय किया था कि विहार छोड़ देगा और ज्योति के साथ पाटलिपुत्र नहीं जाएगा। महाप्रभु ने उसको ज्योति के पास सन्देश देकर भेजा। वहाँ ज्योति का नृत्य, संगीत और फिर स्वादिष्ट भोजन के साथ सुवासित मद्य-सेवन और पश्चात् ज्योति का उससे प्रेमालाप, इन सब बातों को स्मरण कर उसका मन अपार आनन्द से भर जाता था। वह समझने लगा था कि यदि वह केवलमात्र प्रकृति का एक ढेला है तो इस ढेले का यह जीवन अति सुफल, सुन्दर और रसमय है। इसके समक्ष श्रावक का जीवन निष्फल, नीरस, निरर्थक और अति दुस्तर है। इसकी क्या आवश्यकता है? निर्वाण से होगा क्या? किसने देखा है इसे?

भगवान् तथागत ने निर्वाण प्राप्त किया था, इस पर भी कैसे विश्वास किया जा सकता है? उनकी मृत्यु वराह का मांस खाने से हुई थी। इससे वे निर्वाण कैसे प्राप्त कर गए? रही भगवान् तथागत की कथाएँ, वैसी तो वह स्वयं प्रतिदिन मन से घड़कर लिख रहा है।

इसी प्रकार पिछली रात की स्मृति के आनन्द-अनुभव में वह अपने आगार में पड़ा रहा। दिनभर सोने के कारण रात को वह सो नहीं सका। उसका विचार था कि अगले दिन भामिनी से मिलकर अपनी योजना बताएगा, परन्तु अब अपने ज्योति के साथ सम्बन्ध को उसे बताने में वह लज्जा अनुभव करने लगा। वह नहीं जानता था कि कैसे भामिनी के पास जाकर बताए कि वह ज्योति के साथ पाटलिपुत्र जा रहा है?

दिन चढ़ा। वह स्नानादि से निवृत्त हो उपासना में सम्मिलित होने चला गया। एक प्रहर दिन निकलने तक बैठा रहा। उपासना में उसका चित्त नहीं लगा। अब उसको "बुद्धं शरणं गच्छामि" में कुछ रस प्रतीत नहीं होता था। रह-रहकर उसको ज्योति की नृत्य-मुद्राएँ स्मरण आने लगी थीं। जब वह अपने मन को एकाग्र नहीं कर सका तो उठा और अपना कमण्डलु पकड़ भिक्षा के लिए विहार से निकल पड़ा। उसका विचार था कि वह भामिनी के निवास-गृह को जाएगा, परन्तु मार्ग में चलते-चलते अनेकानेक विचारों में लीन हो वह अपने को भूल गया। बिना इच्छा और प्रयत्न के उसके पाँव उसे बरबस इन्दु वेश्या के प्रासाद की ओर ले गए। वहाँ द्वारपाल ने झुककर नमस्कार की और पूछा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भन्ते ! किनसे मिलने आए हैं ?"

उसके मुँह से अनायास निकल गया, "भिक्षां देहि देवि !"

द्वारपाल मुस्कराया और निरुपम भीतर चला गया। ज्योति के आगार के समक्ष खड़े होकर उसने पुकारा, "बुद्धं शरणं गच्छ, संघं शरणं गच्छ, धम्मं शरणं गच्छ !"

उसके स्वर के प्रत्युत्तर में भीतर से कई स्त्रियों के हँसने का शब्द हुआ। श्रावक ने पुनः कहा, "भिक्षां देहि देवि !"

एक दासी द्वार से बाहर आकर उससे कहने लगी, "देवी भीतर बुला रही हैं।"

निरुपम जिस प्रकार यन्त्रचालित-सा वहाँ तक आ पहुँचा था वैसे ही भीतर चला गया। उसे प्रतीक्षा-आगार में बैठा दिया गया।

ज्योति की समस्या को भामिनी समझ नहीं सकी। निरुपम ने बताया था कि ज्योति पाटलिपुत्र जा रही है और उसकी इच्छा वहाँ राज-परिवार में स्थान पाने की है। दूसरी ओर ज्योति ने स्वयं उसे बताया था कि उसका विवाह सेठ लक्ष्मीचन्द से होने वाला है और वह उसी मकान में आकर रहेगी। ये दोनों परस्पर-विरोधी बातें थीं। अतएव अगले दिन वह उत्सुकता से निरुपम के आने की प्रतीक्षा करने लगी, जिससे वह अपने मन के संशय को दूर सके।

परन्तु निरुपम नहीं आया। कई दिन व्यतीत हो गए और श्रावक महोदय के दर्शन नहीं हुए। इससे वह उदास रहने लगी। कई मास से प्रतिदिन मध्याह्न के समय निरुपम आया करता था और दोनों में साहित्य-चर्चा हुआ करती थी। इस कारण जब उसने आना बन्द कर दिया तो उसके लिए दोपहर का समय निकालना कठिन हो गया।

इस काल में सेठ साहब की ओर से उस गृह के रिक्त आगारों को सजा दिया गया। यह निश्चित-सा ही प्रतीत होता था कि सेठ महोदय अपना विवाह कर अपनी नवीन पत्नी को उसी गृह में रखेंगे। आगार अच्छी प्रकार सजाए गए, परन्तु सेठ जी की नवीन पत्नी नहीं आई।

एक दिन भामिनी ने वज्रबाहु से पूछ ही लिया, "पिता जी ! सेठ जी का नवीन विवाह कब होगा ?"

वज्रबाहु हँस पड़ा। जब भामिनी इसका अर्थ नहीं समझी तो वज्रबाहु ने बताया—"बेटी ! सेठ जी को वह वेश्या की लड़की उल्लू बनाकर, उसी श्रावक के साथ भाग गई है, जो भिक्षा-वृत्ति के लिए आया करता था।"

"निरुपम भद्रायण के साथ ?"

"हाँ बेटी ! देखने में तो वह बहुत ही भोला-भाला प्रतीत होता था, परन्तु ऐसा लगता है कि उस वेश्या की लड़की ने उसको अपने मोहजाल में फँसा लिया है। पिछले बृहस्पतिवार को सायंकाल विवाह होना था और प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त के समय वह लड़की बिना अपनी माता को बताए उस श्रावक के साथ भाग गई है। अभी तक पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं चला कि वे किस ओर गए हैं।"

"पर यह कैसे पता चला कि उसको ले-जानेवाला निरुपम भद्रायण ही है?"

"कई रातों से वह ज्योति के प्रासाद में ही सोता था। उसने विहार छोड़ दिया था। भागने की पहली रात भी वह वहीं था और दोनों एक-साथ ही लुप्त हुए हैं। विचित्र बात तो यह है कि भागने का सारा व्यय सेठ जी से ही लिया गया है। विवाह-प्रबन्ध के लिए सेठ जी ने दस सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ ज्योति की दी थीं और इसके अतिरिक्त नख से शिख तक के भूषण भी थे। यह सब-कुछ ज्योति अपने साथ ले गई है।"

"सेठ जी को दुःख तो बहुत हुआ होगा?"

"दो दिन तो उन्होंने भोजन तक ग्रहण नहीं किया। जब सेठ जी के लड़के ने अपने पिता को आश्वासन दिया कि वह इस वेश्या से सारा धन वापस लाकर रहेगा, तब कहीं जाकर उन्होंने अन्न स्वीकार किया। सेठ जी का ज्येष्ठ पुत्र माधव उनकी खोज में निकल गया है।"

ज्यों-ज्यों वज्रबाहु यह कथा सुनाता जाता था, भामिनी का मुख मलिन होता जाता था। उसकी आँखें पथराती जाती थीं। उसके होंठ फड़फड़ाने लग गए थे और उसके मुख से शब्द नहीं निकल रहे थे। उसको न तो सेठ जी से कोई सहानुभूति थी और न ही उसको ज्योति पर कोई दया आ रही थी। उसका पूर्ण ध्यान निरुपम भद्रायण पर केन्द्रित था। यद्यपि दोनों में इस विषय में कोई भी बात नहीं हुई थी, तो भी दोनों समझते थे कि दोनों परस्पर प्रेम करते हैं। और अब उसका एक वेश्या की लड़की के साथ भाग जाने का अभिप्राय वह निरुपम की ओर से मूक वचनभंग समझ रही थी।

वह उठकर अपने शयनागार में गई और पलँग पर जाकर लेट रही। रातभर विचार करने पर उसका रोष ठंडा हुआ। वह सोचने लगी कि यह कैसे समझा जा सकता है कि निरुपम का ज्योति से अनुचित सम्बन्ध रहा है? पाटलिपुत्र जाने का विचार तो था ही। उसने मानवता के नाते ज्योति का एक वृद्ध से विवाह रोकने के लिए, उसके साथ भाग जाना उचित माना होगा। वह मन में सोचती थी कि वह प्रेम ही कैसा हुआ, जो अपने प्रेमी पर विश्वास न कर सके? उसको उसकी धर्मनिष्ठा पर और उसके शुद्ध हृदय पर विश्वास करना चाहिए।

इस विचार का परिणाम यह हुआ कि अगले दिन पुनः वह अपने नित्यप्रति के कार्य में पूर्ववत् लग गई। वज्रबाहु उसके व्यवहार को देख प्रसन्न था। उसने समझा कि भामिनी के मन पर इस भिक्षुक का कोई गम्भीर प्रभाव नहीं पड़ा।

दिन व्यतीत होने लगे। वज्रबाहु पुस्तकालय के कार्य पर नियमपूर्वक जाता रहा। उसका काम वहाँ पर न केवल पुस्तकों की देखभाल करना था, प्रत्युत पुरानी पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ तैयार करवाना भी था। वह पुस्तकालय में पहुँच एक प्रहर-भर तो ग्रन्थ-निरीक्षण करता रहता था और पश्चात् तीन प्रहर-भर वह किसी जर्जर पुस्तक को ले लेता और इस प्रकार उन पुस्तकों के जीवन को और बढ़ा देता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योति को विशालापुरी छोड़े दो मास हो चुके थे। इस समय पाटलिपुत्र से सूचना मिली कि सेठ का लड़का माधव, जो निरुपम और ज्योति की खोज में गया था, वहाँ राज्य का बन्दी बना लिया गया है। उस पर एक श्रावक की हत्या का आरोप लगाकर उसको न्यायालय में उपस्थित किया गया है। इस समाचार ने सेठ लक्ष्मीचन्द के सब कार्यों को अस्त-व्यस्त कर दिया।

समाचार सुनते ही सेठ जी पुस्तकालय में आए और वज्रबाहु से कहने लगे—"पण्डित जी! मैं समझता हूँ कि माधव ने जो मेरे लिए उस श्रावक का पीछा किया है, उसको बचाना मेरा धर्म भी है। अतएव तुम जाओ और उसको बचाने के लिए प्रत्येक प्रकार का यत्न करो। व्यय की मुझे चिन्ता नहीं है। जितना धन चाहो ले जाओ। शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान कर दो और यदि तुम मेरे पुत्र को जीवित और स्वतंत्र वापस ले आए तो मैं तुमको इतना धन दूँगा कि इस जीवन में तुम्हें जीविकोपार्जन के लिए कोई कार्य करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

वज्रबाहु इस नई स्थिति पर कुछ अधिक प्रसन्न नहीं था। वह शान्ति से पठन-पाठन के कार्य में लगा हुआ था। इस कार्य में भाग-दौड़ करनी आवश्यक थी और वह समझता था कि अब वृद्ध हो रहा है। फिर भी जो व्यक्ति उसको इतना कुछ देता था और देने का आश्वासन दे रहा था, उसकी आज्ञा का पालन करना वह आवश्यक समझता था।

भामिनी को जब वज्रबाहु के पाटलिपुत्र जाने की तैयारी का पता लगा तो वह प्रसन्न थी। उसने तुरन्त कह दिया कि वह भी साथ चलेगी। वज्रबाहु ने उसे टालने का यत्न किया, परन्तु वह मानी नहीं और वज्रबाहु के अकेले जाने की तैयारी के स्थान पर तीन व्यक्तियों के जाने की तैयारी होने लगी। वज्रबाहु ने इस अवस्था में चक्रिक को साथ ले-जाना आवश्यक समझा।

वज्रबाहु को सन्देह था कि माधव ने श्रावक निरुपम की हत्या की होगी और निरुपम के भामिनी से पुराने सम्बन्धों के कारण उसने अपना यह सन्देह भामिनी को नहीं बतलाया।

रातभर की तैयारी के पश्चात् वज्रबाहु भामिनी और चक्रिक के साथ मार्ग-व्यय के लिए कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ और पाटलिपुत्र के दो सेठों के नाम दो दस-दस सहस्र स्वर्ण-मुद्राओं की हुण्डियाँ लेकर चल पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

देश में आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का सामना हुआ तो विचारों का आदान-प्रदान होने लगा। आर्यों ने द्रविड़ों की बहुत-सी बातें अपनाईं, जिनमें मूर्ति-पूजा भी एक थी। द्रविड़ लोग लिंग और भग की उपासना किया करते थे। जो अग्नि, वरुण इत्यादि प्राकृतिक विभूतियों को अतीव शक्तिमान समझकर उनकी पूजा करते थे, वे भी अब भग और लिंग की मूर्तियों की पूजा करने लगे। इस प्रकार देश में मूर्ति-पूजा की प्रथा आरम्भ हो गई।

इनकी देखा-देखी जैनियों ने भी अपने तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बनाईं और उनकी स्थापना कर विशाल मन्दिर बनाने आरम्भ कर दिए। इस प्रकार भग और लिंग, जो संसार में जीवन-शक्ति के मूल माने जाते थे, के अतिरिक्त मनुष्यों के आकार की देव-मूर्तियाँ भी बनने लगीं।

आर्य ब्राह्मणों ने जैन धर्म और उनकी मूर्ति-पूजा का विरोध नहीं किया। वे जैन धर्म के समय वाममार्ग में लीन थे। वे जैन धर्म को भी वाममार्ग की उपज ही समझते थे। परन्तु जब बौद्ध धर्म ने बल पकड़ा, तो बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने न केवल वाममार्गियों का विरोध किया, प्रत्युत जैनियों का भी विरोध करने लगे।

वास्तव में जैन धर्म को वैशेषिक शास्त्र के मत और द्राविड़ सभ्यता का मिश्रण ही मानना चाहिये। यह एक गूढ़ मीमांसा के आधार पर निर्माण किया गया था। उस समय के अधिकांश विद्वान् लोग इस धर्म की आधारभूत मीमांसा पर विचार कर अपना वक्तव्य दे गए हैं। इनमें से अधिक ने जैन धर्म की मीमांसा को अधिकाधिक स्पष्ट करने का यत्न किया है। इसके विपरीत बौद्ध धर्म का विस्तार प्रायः अनपढ़ और मूर्खों में प्रारम्भ हुआ। बौद्ध धर्म को जब भारत-सम्राट् देवानांप्रिय प्रियदर्शी अशोक का समर्थन मिला तो और भी ऐसे लोग इसमें सम्मिलित होने लगे जो अन्यथा संसार में प्रमाद, आलस्य और अज्ञान में धँसे थे। राज्य की ओर से चैत्यों को लाखों स्वर्ण-मुद्राएँ प्रतिवर्ष मिलने लगीं और उनमें निम्न श्रेणी के लोग, जो अपनी जीवन की गाड़ी चलाने में असमर्थ थे, प्रवेश पाने के लिए आने लगे। कहा जाता है कि अशोकवर्द्धन ने अपने जीवन-काल में चौरासी हजार चैत्यों की स्थापना की और अनुमान लगाया जाता है कि उनमें दो करोड़ के लगभग स्त्री-पुरुष श्रावक बनकर रहते थे।

इस परिस्थिति में चरित्र की उन्नति होने की अपेक्षा चैत्य दुराचार के अड्डे बनने लगे। इस दुराचार के सहन किए जाने का परिणाम यह हुआ कि दुश्चरित्र लोग अधिकाधिक संख्या में इन चैत्यों में स्थान पाने का यत्न करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कथा-काल से दो सौ वर्ष पूर्व नन्द-परिवार के राजाओं ने राजगृह का त्याग कर मगध की राजधानी पाटलिपुत्र बनाई थी। नन्द राजवंश ने भी भारत-भर में एक साम्राज्य स्थापित करने का यत्न किया था और इस यत्न में ही नन्दवंश पूर्णतया भस्मीभूत हो गया। पश्चात् यह कार्य मौर्यवंश के हाथ आया। विष्णुगुप्त कौटिल्य की सहायता से चन्द्रगुप्त इस प्रयास में सफल हुआ। चन्द्रगुप्त के पश्चात् बिन्दुसार ने भी इसी नीति का पालन किया।

अशोक महाराज बिन्दुसार का कनिष्ठ पुत्र था। राज्य का अधिकारी इसका बड़ा भाई सुषीम अर्थात् सुमन था। अशोक ने अपने पूर्ण सम्बन्धियों की, जिनकी संख्या ९९ कही जाती है, हत्या करके राज्यारोहण किया था। इस प्रकार इसने मौर्य वंश के नाश का बीजारोपण किया। पश्चात् इस सम्राट् ने अपने पड़ोसी राज्यों को अपने अधिकार में करने के लिए घोर अत्याचार किए। इससे राज्य में स्थान-स्थान पर विद्रोह होने लगे। महाराज की अपनी सन्तान ही उसके विरुद्ध विद्रोह करने लगी। इस पारिवारिक विग्रह के कारण ही अशोक के पुत्र कुणाल को अन्धा किया गया था।

ऐसी स्थिति में अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। ऐसा करने से उसको लाखों बौद्धों, उपासकों तथा भिक्षुकों का समर्थन प्राप्त हो गया और चारों ओर महाराज अशोकवर्द्धन के गुणानुवाद सुनाई देने लगे। इस गुणानुवाद के प्रतिकार में साम्राज्य की पूर्ण शक्ति बौद्ध भिक्षुओं के भरण-पोषण में व्यय होने लगी।

अशोक का ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र एक वैश्य-कन्या विदिशा से उत्पन्न हुआ था। वह साँची की रहने वाली थी और उसका विवाह अशोक से उस समय हुआ था जब वह उज्जयिनी में आयुक्तिक के रूप में ही कार्य कर रहा था। अशोक के इस पुत्र को पारिवारिक झगड़ों के कारण परिवार से घृणा हो गई और वह अपनी बहिन संघमित्रा के साथ श्रावक बनकर पाटलिपुत्र से दूर लंका को चला गया।

अशोकवर्द्धन जब वृद्ध हुआ तो युवराज-पद की प्राप्ति के लिए झगड़ा होने लगा। ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र तो श्रावक बनकर लंका जा चुका था। इसके पशचात् कुणाल उत्तराधिकारी था, जो महाराज की कनिष्ठ रानी के कुचक्र से चक्षुविहीन हो चुका था। कुणाल का पुत्र सम्प्रति था। जिस समय ज्योति पाटलिपुत्र पहुँची उस समय कुणाल और उसके पुत्र सम्प्रति में युवराज-पद के लिए प्रतिस्पर्धा चल रही थी।

उस समय मगध साम्राज्य का विस्तार दक्षिण की कावेरी नदी से लेकर कामभोज (वर्तमान अफगानिस्तान) के पार हिन्दुकुश तक और अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तथा ब्रह्मपुत्र नदी तक था। पूर्ण देश से कर प्राप्त कर पाटलिपुत्र में लाया जाने लगा और उसका सबसे अधिक अंश बौद्ध संघ के हाथ में जाने लगा। शेष धन का अधिक भाग मगध नगरी पर व्यय होता था और केवल एक न्यून अंश ही देश के अन्य भागों में जन-हित के कार्यों पर व्यय होता था।

इस नगर की गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ, प्रशस्त प्रासाद, विशाल मार्ग और माल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लदी दूकानें इस बात की सूचक थीं कि देशभर का धन यहीं व्यय हो रहा है।

रंगारंग के वस्त्र पहने स्त्रियों का घूमना, भूषणों तथा रत्नादि से सुसज्जित नर-नारियों का बाजारों में क्रय-विक्रय करते दिखाई देना, इस नगर की शोभा थी। अपने उद्यानों और सुन्दर मन्दिरों तथा विहारों से युक्त गंगातट पर बसा हुआ सात कोस लम्बा यह नगर देशभर में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखता था।

इस नगर में जहाँ पाँच लक्ष प्रजा थी, वहाँ एक लक्ष के लगभग बौद्ध श्रावक तथा श्राविकाएँ भी थीं। ये श्रावक तथा श्राविकाएँ झुण्डों के झुण्ड पीतवस्त्र धारण किए हुए सड़कों पर घूमते रहते थे। राज्य के समर्थन के कारण ये नगर-भर में भारी मान-प्रतिष्ठा के पात्र थे और जब भी ये पाँच-दस भिक्षु किसी मार्ग से निकल जाते, वहाँ जनसाधारण इनके लिए मार्ग छोड़ एक ओर हट जाते थे।

राज्यसभा में भी इनको बिना रोक-टोक जाने की स्वीकृति थी। राज्य की ओर से अपार धन चैत्यों के लिए व्यय किया जा रहा था। परिणाम यह हो रहा था कि धनी-मानी जन राज्यकर के नीचे पिस रहे थे। मध्यवर्ग के लोग, जो प्रायः राज्य में सेवा-कार्य करते थे, बेकार हो रहे थे। प्रायः श्रावक ही राज्य-कार्य के लिए नियोजित कर लिये जाते थे। शेष कार्यों में भी बौद्ध उपासकों को अन्य धर्मावलम्बियों की तुलना में प्राथमिकता दी जाती थी।

देववाणी का पठन-पाठन करनेवालों की संख्या कम हो रही थी। राज्य में इस वाणी का आदर नहीं रहा था। सर्वसाधारण में यह वाणी पुराणादि धार्मिक ग्रन्थों के वाचन के समय प्रयोग में लाई जाती थी। इसके अतिरिक्त विद्वान् लोग इस भाषा में आर्य धर्म के तथा ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ और उन पर विवेचनाएँ आदि लिखते थे। अब पुराणों के स्थान पर जातकों की कथाएँ होने लग गई थीं। अन्य विषयों पर भी प्राकृत में ही ग्रन्थ लिखे जाने लगे थे। परिणामस्वरूप देववाणी का पढ़ना-पढ़ाना समाप्तप्राय-सा हो गया था।

गंगातट पर एक विशाल भवन में संस्कृत पढ़ाने की एक पाठशाला थी। महाराज बिन्दुसार के काल में पाँच सौ से अधिक विद्यार्थी वहाँ शिक्षा प्राप्त करते थे। भवन का नाम था 'विद्या आश्रम'। इस आश्रम का मुख्याधिष्ठाता देववाणी का प्रकाण्ड विद्वान् और प्रसिद्ध तार्किक पण्डित शंखपाणि था। वह विवाहित था। उसकी पत्नी भी विदुषी थी। परन्तु जब शंखपाणि इस विद्यालय का अधिष्ठाता बना, तब तक राज्य की बौद्ध-पौषक नीति का प्रभाव आरम्भ हो गया था।

कुछ ही वर्षों में वह विद्यालय विद्यार्थियों से रिक्त हो गया। देववाणी पढ़ना अथवा दर्शन-शास्त्रों का अध्ययन करना किसी प्रकार से भी लाभ की बात नहीं रही थी। निर्धन तथा मध्यम वर्ग के लोग तो श्रावक बनने में ही लाभ समझने लगे थे। कुछ अन्य भी थे, जो देववाणी पढ़ने में कोई लाभ नहीं देखते थे। धनिक-वर्ग करों से दब जाने के कारण ऐसी पाठशालाओं की सहायता करने में अपने-आपको असमर्थ पा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य न रहने और धनाभाव के कारण शंखपाणि रुग्ण रहने लगा। पाटलिपुत्र में जो औषधालय थे, वह वहाँ से औषध लाता। औषध लाभ तो करती थी, परन्तु भोजन-व्यवस्था ठीक न होने के कारण उसका स्वास्थ्य सुधर नहीं रहा था।

शंखपाणि तब महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ और सहायता की याचना की। महाराज ने उसको आमात्य सुनन्द के पास भेज दिया। सुनन्द ने उसकी वार्ता सुनी तो उसको श्रावक बन जाने की मन्त्रणा दी। शंखपाणि निराधार-सा निराश होकर घर लौट आया।

इसके पश्चात् वह जीविकार्थ नगर के अबौद्ध व्यापारियों के पास आने-जाने लगा। कभी-कभी कहीं से दान-दक्षिणा मिल पाती थी; प्रायः उसे बिना कुछ प्राप्ति के ही रिक्त-हस्त लौटना पड़ता था।

एक दिन पण्डित शंखपाणि की दुर्दशा का समाचार महाराज के पास पहुँचा तो उन्होंने सुनन्द से पूछा, "आमात्य ! एक दिन एक दार्शनिक विद्वान् को आपके पास भेजा था। आपने उसकी जीविका के विषय में क्या किया ?"

"महाराज, शंखपाणि को एक अतिविद्वान् व्यक्ति जानकर मैंने उसे बौद्ध साहित्य का निर्माण करने के लिए श्रावक बन विहार में शरण पाने का निमन्त्रण दिया था, पर वे मेरे निमन्त्रण पर विचार करने को कहकर चले गए, और पश्चात् लौटकर नहीं आए।"

"देखो आमात्य ! एक विद्वान् को स्वेच्छा से रहने और व्यवहार करने की सुविधा मिलनी चाहिए। उसको सहायता भेज दो !"

सुनन्द ने महाराज की आज्ञानुसार एक सेवक के हाथ पचास स्वर्ण-मुद्राएँ और कौशेय वस्त्र शंखपाणि के पास भेज दिए। जब वह सेवक 'विद्या आश्रम' में पहुँचा तो उसे वहाँ कुछ लोग शोक-मुद्रा में आसीन अश्रु बहाते दिखाई दिए। सेवक ने पूछा, "पण्डित शंखपाणि जी कहाँ हैं ?" एक ने उनके आगार की ओर संकेत कर दिया। सेवक उस आगार में पहुँचा तो वहाँ एक शव के सिरहाने एक स्त्री एक बच्ची को गोद में लिये बैठी थी। उसके बाल खुले हुए थे और माथे का सिन्दूर पुँछा हुआ था।

सेवक ने कहा, "माता जी ! पण्डित शंखपाणि के लिए आमात्य सुनन्द ने यह भेंट भेजी है।"

वह स्त्री शंखपाणि की पत्नी थी जो अब विधवा हो गई थी और अपने मृत पति के शव के पास बैठी सम्बन्धियों और मित्रों के अन्त्येष्टि संस्कार करने के लिए आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

सेवक के कथन पर उसने मुँह उठाकर देखा। कौशेय वस्त्र और स्वर्ण-मुद्राएँ देख उसके दुःख की मात्रा बढ़ी ही, कम नहीं हुई। उसने छूटते ही कहा, "इन्हें आमात्य को लौटा देना और कहना कि इन्हें अपना श्राद्ध करने के लिए रख छोड़ें।"

शंखपाणि की पत्नी, जिसका नाम कात्यायनी था, अपने पति की मृत्यु के पश्चात् पाटलिपुत्र छोड़ अपने पितृव्य-ग्राम में चली गई। उस समय उसकी गोद में एक लड़की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, जिसका नाम उसने सरिता रखा था।

कात्यायनी स्वयं पढ़ी-लिखी महिला थी। अपनी जीविका के लिए उसने गाँव के बाहर जंगल के समीप कुछ परती भूमि तोड़ ली और वहाँ कृषि-कर्म करने लगी।

शंखपाणि की मृत्यु के पश्चात् 'विद्या आश्रम' सर्वथा रिक्त हो गया। उसमें विद्या पानेवाले कुछ निर्धन विद्यार्थी थे, जो पण्डित जी के घर से भोजन करते थे और विद्यार्जन करते थे। रहा-सहा आश्रय खो जाने पर वे आश्रम छोड़कर चले गए। उनमें से कुछ श्रावक बन गए और कुछ भिक्षा-वृत्ति करने लगे। रिक्त आश्रम पर राज्य ने अधिकार कर लिया और उसे बौद्ध चैत्य में परिवर्तित कर दिया। उस चैत्य का नाम शंखपाणि के नाम पर रखा गया और महाराज से उस चैत्य को चलाने के लिए दस सहस्र स्वर्ण वार्षिक निधि स्वीकार करवा ली गई।

महाराज ने इतना धन देते समय आमात्य सुनन्द को आदेश दिया कि पण्डित शंखपाणि की स्त्री और बच्चे को ढूँढकर इस सहायता में से निर्वाह के लिए कुछ दे दें। सुनन्द ने ढुँढवाया अथवा नहीं, परंतु कात्यायनी वहाँ कभी दिखाई नहीं दी।

जब से कुणाल को चक्षुविहीन किया गया और उस पर इस प्रकार का अत्याचार कराने वाले को दण्ड नहीं दिया गया, तब से पटरानी पद्मावती महाराज पर से विश्वास खो बैठी थी। वह जब देशभर के श्रावकों को महाराज की प्रशंसा करते सुनती थी, तो उनको बुरा-भला कहने लग जाती थी। राजप्रासाद में यह विख्यात हो गया कि भारत की साम्राज्ञी बौद्ध मत से घृणा करने लगी है। परिणाम यह हो रहा था कि वह यथासम्भव जैन धर्मावलम्बियों की रक्षा और सहायता करती रहती थी। उसके माता-पिता जैन-मतानुयायी थे और बौद्ध लोग जैनियों के घोर विरोधी थे।

महारानी पद्मावती को जब सूचना मिली कि 'विद्या आश्रम' का अध्यक्ष पण्डित शंखपाणि भूख से तड़प-तड़पकर मर गया तो उसके क्रोध का वारापार नहीं रहा। वह तत्क्षण महाराज के समक्ष उपस्थित हुई और पूछने लगी, "महाराज को केवल दर्शन ही प्रिय रह गया है अथवा कार्य भी?"

"क्या अभिप्राय है महारानी का? मेरे दर्शनों ने क्या अपराध किया है?"

"महाराज! नगर में लोग भूखों मरने लग गए हैं। यह हमारे देश की प्रथा नहीं है।"

"किसका देहान्त इस प्रकार हुआ?"

"दर्शनाचार्य पंडित शंखपाणि का।"

"मैंने आमात्य को, जो राज्य के दान-विभाग की देख-भाल करता है, उसकी सहायता के लिए आज्ञा दी थी।"

"हाँ, और आपके श्रावक आमात्य ने पचास स्वर्ण-मुद्रा तथा कौशेय वस्त्र भेजे थे। ये सब उस समय पहुँचे जब शंखपाणि का देहान्त हो चुका था और शव अन्त्येष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार के लिए तैयार किया जा रहा था।"

"तो फिर क्या किया जाए महारानी जी? मरनेवाले में तनिक भी धीरज प्रतीत नहीं होता। सुना है कि उनकी स्त्री ने वह भेंट यह कहकर वापस लौटा दी कि आमात्य उसे अपना श्राद्ध करने के लिए रख छोड़े। बताओ न, इतने अभिमानी व्यक्तियों का क्या किया जाए?"

"पंडित जी की विधवा स्त्री कात्यायनी को बुलवा दीजिए। जो कुछ आप तथा आपके महामात्य ने किया है, उसका प्रतिकार जो कुछ हो सके, मैं ही कर दूँगी।"

"आमात्य सुनन्द ने उसको अपने अपमान के प्रतिकार के लिए बहुत ढूँढा था, परन्तु उसका कुछ पता नहीं चला।"

महारानी इस सूचना से बहुत घबराई। वह सोचने लगी कि कदाचित् पण्डित की विधवा सती हो गई है।

महारानी इस प्रकार की घटनाओं को देख भारतवर्ष के पूर्ण वातावरण से विक्षुब्ध होती जा रही थी। उसने इस समस्या का समाधान कुमार सम्प्रति को समझा।

सम्प्रति राजकुमार कुणाल का लड़का था। कुणाल का विवाह अल्पायु में ही हो गया था। उसकी आँखों का अद्वितीय सौन्दर्य देख पांचाल देश की राजकुमारी उस पर मोहित हो गई थी और पश्चात् दोनों का विवाह हो गया था। महारानी तिष्यरक्षिता के षड्यन्त्र से जब कुणाल की आँखें निकाल दी गईं तो कुणाल की पत्नी इतनी दुःखित हुई कि वह क्षय-रोग से ग्रस्त होकर मर गईं। मरने से पूर्व उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसमें माँ की कोमलता के साथ-साथ पिता का सौन्दर्य भी था। इस पुत्र का नाम सम्प्रति था। माँ के देहान्त के पश्चात् कुमार का लालन-पालन का भार महारानी पद्मावती ने अपने ऊपर लिया। इन दिनों ही ये दुर्घटनाएँ होने लग गई थीं। बौद्ध श्रावक दिन-प्रतिदिन उच्छृंखल होते जा रहे थे और महाराज प्रियदर्शी अपने राज्य को बौद्धसंघ के आश्रित मान उनकी त्रुटियों को देखते हुए भी आँखें मूँद लेते थे।

शंखपाणि की दुःखद मृत्यु के पश्चात् महारानी ने महाराज से मेलजोल बन्द कर दिया और सम्प्रति की शिक्षा आदि का प्रबन्ध स्वयं करने लगी। परिणाम यह हुआ कि सम्प्रति भी बौद्ध संघ का विरोधी होने लगा।

सम्प्रति को दर्शन-शास्त्र और जैन सम्प्रदाय के ग्रंथों का अध्ययन कराया गया। सुयोग्य तथा नीति-निपुण विद्वानों की देख-रेख में उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। सम्प्रति ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, वह अपने बाबा महाराज प्रियदर्शी और अपने पिता राजकुमार कुणाल से भिन्न होता गया। महाराज और राजकुमार दोनों बौद्ध मतानुयायी थे। महाराज ने तो बौद्ध धर्म को राजनीतिवश ग्रहण किया था, परन्तु राजकुमार कुणाल हृदय से बौद्ध-जीवन-मीमांसा का कायल हो गया था।

जब सम्प्रति इक्कीस वर्ष का हुआ तो महारानी की इच्छा हुई कि युवराज की पदवी सम्प्रति को मिले। जालौक विद्रोह करके कश्मीर में स्वतंत्र हो गया था। वीरसेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-श्रावक बन दक्षिण की ओर चला गया था। महेन्द्र और संघमित्रा भी बौद्ध-भिक्षु बन लंका जा चुके थे। इस अवस्था में युवराज-पद का प्रश्न कुणाल और सम्प्रति में ही रह गया था। कुणाल चक्षु-विहीन होने से राज्य के अयोग्य था। फिर भी महाराज की राजसभा में जितने बौद्ध-मन्त्री थे वे कुणाल को ही युवराज बनाने का हठ कर रहे थे। वे जानते थे कि सम्प्रति बौद्ध-संघ के अनुकूल नहीं है।

एक दिन इस विषय में महाराज, महारानी, आमात्य, विष्णुचरण और महाप्रभु सुनन्द में परस्पर बातचीत हुई। महारानी का कहना था कि भारत में साम्राज्य को विघटित होने से रोकने के लिए महाराज के परिवार के किसी व्यक्ति को युवराज, जो भविष्य में सम्राट् बननेवाला हो, नियुक्त कर देना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को पूर्ण राज्य की परिक्रमा करा देनी चाहिए, जिससे वह जनता में प्रसिद्धि प्राप्त कर राज्य को सुदृढ़ करने की योग्यता प्राप्त कर सके।

महाराज ने भी इस विषय पर बहुत विचार किया था। उसके मस्तिष्क में यह बात बैठ गई थी कि उसने स्वयं जो कुछ किया सो किया, परन्तु समाज को सुसंगठित रखने के लिए किसी अबौद्ध शासक की ही आवश्यकता है। उसको ऐसे समाचार मिल रहे थे, जिनसे यह सिद्ध होता था कि अबौद्ध जनता उचाट हो रही है और उनका समर्थन सम्प्रति को प्राप्त है। महामात्य विष्णुचरण भी सम्प्रति के युवराज घोषित किए जाने के पक्ष में था। आमात्य सुनन्द इसका घोर विरोध कर रहा था।

देश के भिन्न-भिन्न भागों के आयुक्तिकों से सम्मति ली गई थी। उनमें भी बहुमत सम्प्रति के पक्ष में था। फिर भी पूर्ण बौद्ध सम्प्रदाय और बौद्ध संघ कुणाल के पक्ष का समर्थन कर रहा था। यद्यपि बौद्धों की संख्या पूर्ण भारतवर्ष की जनता की दस प्रतिशत के लगभग थी, फिर भी संघ के संगठन में अढ़ाई करोड़ श्रावक एक भारी शक्ति थी, जिसकी अवहेलना सुमगता से नहीं की जा सकती थी।

कुणाल अपनी दुर्बलता जानता था, इसलिए उसने राज्य की लालसा छोड़ रखी थी। वह अपना पूर्ण समय भक्ति, उपासना और ज्ञान-ध्यान में व्यतीत करता रहता था। जब युवराज-पद के प्रश्न पर राज्य-परिषद् में गरमा-गरम वार्तालाप हो रहा था, तब सुनन्द ने कुणाल को किसी प्रकार युवराज-पद स्वीकार करने के लिए मना लिया था।

राज्य-परिषद् इस विषय में एकमत नहीं हो सकी। इस समय विशालापुरी से यह सूचना आई कि वहाँ एक कन्या है, जो बौद्ध उपासिका है। यदि उसका विवाह सम्प्रति से कर दिया जाए तो वह अपने सौन्दर्य से सम्प्रति को अपनी मुट्ठी में कर लेगी। वह निरुपम भद्रायण के प्रभाव से बौद्ध उपासिका बनी है और यदि उसका प्रभाव कुछ काल तक और चलता रहा तो वह सम्प्रति को बौद्ध संघ में घसीट लेगी।

इस सूचना पर सुनन्द फड़क उठा और उसने विशालापुरी से ज्योति को निरुपम के साथ तुरन्त बुलवा लिया।

ज्योति का पाटलिपुत्र जाने का संकल्प तब हुआ, जब उसको विदित हुआ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुपम और भामिनी में प्रेमबीज पड़ चुका है। इस कारण उसने एक दासी को भेज निरुपम को अपने निवास-स्थान पर बुलवाया और उस पर ऐसा मोहजाल फैलाया कि फिर वह उस गृह से बाहर नहीं निकल सका। ज्योति ने यह उचित समझा कि वह निरुपम को लेकर पाटलिपुत्र चली जाए, जिससे जहाँ निरुपम भामिनी के प्रभाव से दूर हो जाएगा, वहाँ वह स्वयं अपने प्रेम का प्रसाद पाती रहेगी और साथ-ही-साथ उसकी भारत की साम्राज्ञी बनने की योजना भी फलीभूत हो सकेगी।

विशालापुरी से उसने अपना प्रयाण अतिगुप्त रखा। जब सेठ लक्ष्मीचन्द विवाह की तैयारी में लीन था, ज्योति पाटलिपुत्र जाने की तैयारी में लगी थी। जिस सायंकाल विवाह-कार्य सम्पन्न होना था, ठीक उसी प्रातःकाल ज्योति और निरुपम दो दासियों के साथ विशालापुरी से पाटलिपुत्र के लिए चल पड़े थे। वे एक नौका में बैठ उसी दिन पाटलिपुत्र के एक पांथागार में भी जा पहुँचे।

महाप्रभु कौल्यायन का एक पत्र निरुपम भद्रायण 'विदिशा देवी' चैत्य की अध्यक्षा कल्याणी तथा महामात्य प्रभु सुनन्द सांस्कृत्यायन के नाम लाया था। पाटलिपुत्र में पहुँच, ज्योति को एक पांथागार में ठहरा, वह सुनन्द से मिलने गया। सुनन्द को जब उसने वह पत्र दिया तो पत्र को पढ़कर सुनन्द की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। पत्र में कौल्यायन ने लिखा था, "आपकी आज्ञानुसार आपकी सेवा में प्रकृति की एक अनुपम भेंट अर्पित है। उसको पत्रवाहक निरुपम भद्रायण ने बौद्ध संघ के समीप लाने में बहुत परिश्रम किया है और मैं उसको संघ के हित में प्रयोग करने के लिए पाटलिपुत्र भेज रहा हूँ।

"महाराज प्रियदर्शी के बौद्ध संघ के अनुकूल होने से हमारे सम्प्रदाय की जो उन्नति हुई है, वह अवर्णनीय है। इसी प्रकार भावी सम्राट् पर बौद्ध-प्रभाव जारी रखने के लिए यह भेंट बहुत सीमा तक सहायक होगी।"

"तो तुम जातक-लेखक निरुपम हो?" सुनन्द ने निरुपम से पूछा।

"हाँ भगवन्!"

"भगवान् तथागत तुम्हारा कल्याण करें। वह कौन है जिसे तुम लाए हो?"

"एक युवती है, ज्योति उसका नाम है, विशालापुरी की निवासिनी है।"

"बहुत सुन्दर है क्या?"

"आप स्वयं देख लीजिएगा।"

अगले दिन सुनन्द स्वयं पांथागार में जा पहुँचा। निरुपम उस समय नगर में किसी कार्यवश गया हुआ था। सुनन्द ज्योति को देख वास्तव में चकित रह गया। इतनी सुन्दर कन्या की उसने कल्पना भी नहीं की थी। अपना परिचय देकर वह उससे वार्तालाप करने लगा तो उसे विदित हुआ कि वह केवल सुन्दर ही नहीं, अति बुद्धिमती भी है। एक चौकी पर बैठकर वह बोला, "देवी! इन दासियों को तनिक बाहर भेज दो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तुमसे एकान्त में बात करना चाहता हूँ।"

"पर मैं अकेली रह जाऊँगी।"

"क्यों, मैं जो हूँ?"

"आप तो पुरुष हैं। मुझको आपसे एकान्तवास नहीं करना चाहिए।"

सुनन्द इस बात को सुन घबरा उठा। वह नहीं जानता था कि उसका भय बनावटी है अथवा वास्तव में ही उसका हृदय कोमल है। उसने कहा, "भय की कोई बात नहीं देवी! मैं श्रावक हूँ। हमने संसार का त्याग किया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार इन पाँचों विकारों को अपने से बाहर कर रखा है। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम डरती क्यों हो? किस प्रकार का भय है तुम्हें?"

"भगवन्, पुरुष तो एक अतिदुर्बल मन वाला प्राणी है। उसका मन इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकता। फिर भी शारीरिक बल में वह स्त्री की अपेक्षा बलवान् है। ऐसे प्राणी का क्या भरोसा हो सकता है? यह तो ऐसा ही है जैसा बलिष्ठ घोड़ों वाले रथ पर दुर्बल सारथि हो। श्रावक तो महाराज! आत्मा के अस्तित्व को मानते ही नहीं। वे तो और भी अधिक इन्द्रियों के दास हैं। वे अपने दुर्बल मन पर किसी नियंत्रणकर्ता की सत्ता को ही नहीं मानते। परिणाम यह होता है कि उनका मन इन्द्रियों पर कुछ भी अधिकार नहीं रखता।"

"फिर भी देवी! सहस्रों श्रावक तथा श्राविकाएँ हमारे विहारों में सुखपूर्वक रहते हैं।"

"यह तो मैंने देखा नहीं। मैं विहार में कभी रही नहीं। हाँ, विशालापुरी के कौल्यायन जी एक दिन इन्द्रियों के पीछे लुढ़क पड़े थे। बहुत ही कठिनाई से उनको पतन के गर्त में गिरने से रोका जा सका था।"

"तुमने? क्या तुमने उनको पतन के मार्ग से रोका था?"

"मैंने नहीं, मेरी माँ ने। वे भी अच्छी-खासी सुन्दरी स्त्री हैं। वे मेरे सामने दीवार बन गईं और मैं बच गई।"

सुनन्द चौंक गया कि यह लड़की अपने रूप-लावण्य और मानसिक दृढ़ता के कारण जिस पर दृष्टि डालेगी उसे भस्म करके छोड़ेगी। फिर भी वह कौल्यायन के पत्र में लिखी बात की सफलता का अनुमान लगाना चाहता था। इस कारण उसने इस निरर्थक विवाद को छोड़ अपने आने के प्रयोजन की बात चला दी। उसने कहा, "तो क्या मैं इन दासियों के सम्मुख ही अपनी बात कह दूँ?"

"कहिए।"

"क्या ये भेद सुरक्षित रख सकेंगी?"

"मुझको इन पर भरोसा है।"

"तो बताओ, तुम यहाँ किस कारण आई हो?"

"विशालापुरी के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने मुझे बताया है कि मेरे भाग्य में भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सम्राज्ञी बनना लिखा है। उसकी भविष्यवाणी को पूर्ण करने के लिए यहाँ चली आई हूँ।"

"हम श्रावक तुम्हारी इसमें सहायता कर सकते हैं। परन्तु तुम किस मत को मानने वाली हो?"

"मैं बौद्ध उपासिका हूँ। मेरी माँ भी उपासिका हैं।"

"तब तो ठीक है, परन्तु इस कार्य के लिए तुमको राजप्रासाद में चलकर रहना होगा।"

"इसका प्रबन्ध कर दीजिए।"

"तुमको बौद्ध धर्म की शिक्षा ग्रहण करनी होगी। इसके लिए सप्ताह में एक बार विहार में उपासना के लिए सम्मिलित होना पड़ेगा।"

"यह हो जाएगा। विशालापुरी में भी ऐसा होता था।"

"प्रतिदिन बौद्ध धर्म और संघ की शिक्षा के लिए एक श्रावक तुम्हें शिक्षा देने आया करेगा।"

"मुझको मालूम है, विशालापुरी में श्रावक निरुपम भद्रायण मुझे शिक्षा देने आते थे।"

"वह तो विशालापुरी लौट जाएगा।"

"नहीं, मेरे विवाह तक यहीं रुकेगा।"

"वह विहार में ही रह सकता है।"

"ठीक है, फिर भी प्रभु भद्रायण ही को मुझे शिक्षा देने के लिए आना चाहिए। वे बहुत विद्वान् हैं, उनकी वाणी में रस और प्रभाव है।"

सुनन्द ने देखा कि यह लड़की अभी से इस अधिकारपूर्ण भाव से बातें करती है जैसे कि वह सम्राज्ञी बन चुकी हो। फिर भी उसकी बात का वह विरोध नहीं कर सका। अभी उसे उसके विचारों का अधिक परिचय नहीं था। आज तो उसने केवल यह कह कर छुट्टी ली, "मैं महाराज से बात करके तुम्हारे राजप्रासाद में रहने का प्रबन्ध कर तुमको सूचना भेजूँगा।"

ज्योति को निरुपम के विषय में आग्रह करते देख सुनन्द को भारी सन्देह हो गया। उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि इस लड़की का इस युवक श्रावक से लगाव हो गया है। वह ज्योति को राज-परिवार में ले-जाने से पूर्व यह भी जानना चाहता था कि उसका लगाव किस सीमा तक है और इस लगाव से ज्योति को अधिकार में रखा जा सकता है अथवा नहीं। इस कारण जाने से पूर्व सुनन्द ने यह कहा, "निरुपम आए तो उसको तुरन्त मुझसे मिलने के लिए कहना।"

इस प्रकार यह कह वह रथ में सवार हो विहार को लौट गया। उसी सायं निरुपम उससे मिलने आया। सुनन्द ने उसको आदरपूर्वक बैठाकर सीधा प्रश्न पूछा, "युवक! इस लड़की का तुमसे क्या सम्बन्ध है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुपम इस प्रश्न की आशा नहीं करता था। इस कारण उस अप्रत्याशित प्रश्न को सुनकर वह घबरा उठा। प्रश्न इतना अचानक था कि उसे विश्वास हो गया कि महाप्रभु को उसके सम्बन्ध का ज्ञान हो गया है। इस कारण उसको अपने मन पर काबू करने में कुछ समय लग गया। मन स्थिर कर उसने उत्तर में कहा, "भगवन्! वह मुझे अपना संरक्षक मानती है।"

"वह तुमसे प्रेम करती है।"

"सत्य? प्रभु, मैं नहीं जानता। इतनी सुन्दर लड़की द्वारा प्रेम किए जाने को मैं अपने सौभाग्य की बात मानता हूँ, और उसके लिए कल्याण की।"

"उसका इससे क्या कल्याण हो सकता है?"

"एक श्रावक से प्रेम करने पर वह श्रावक की इच्छा के अधीन हो जाएगी। इस प्रकार वह संघ के हित में कार्य करेगी और बौद्ध संघ उसका हितचिन्तन करेगा।"

परिस्थिति के इतनी स्पष्टता से प्रस्तुत किए जाने पर सुनन्द को निरुपम की विद्वत्ता पर तो विश्वास हो गया, परन्तु उसकी संघ के प्रति श्रद्धा और विश्वास की परीक्षा शेष थी। इस कारण उसने निरुपम को पूछा, "भन्ते! मुझको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ है कि वह तुम्हारे लिए राजप्रासाद तक छोड़ सकती है।"

"पर मैं उसे राजप्रासाद छोड़ने की मन्त्रणा नहीं दूँगा।"

"परन्तु उसको राजप्रासाद में जाने पर तुम्हें छोड़ना होगा।"

"मैं उसे ऐसा करने के लिए समझा दूँगा।"

"यदि वह न मानी तो?"

"तो उसे वहाँ रखने के लिए मैं भी सेवक बन वहाँ कार्य करने लगूँगा।"

"इस पर भी वह प्रसन्न न हुई तो? उसने तुमसे कुछ अधिक पाने की इच्छा प्रकट की तो?"

"तो क्या? वह कुछ नहीं पाएगी। वह मुझसे प्रेम करती हो तो करे। मैं तो उससे प्रेम नहीं करता। उसको मेरी इच्छा के अधीन रहना चाहिए। मुझको उसकी इच्छा के पालन की आवश्यकता नहीं।"

सुनन्द प्रेम की इस मीमांसा को सुन हँस पड़ा। उसने कहा—"तो तुम प्रेम को केवलमात्र यौन-आकर्षण समझते हो?"

"यही मेरे गुरु महाराज ने मुझको बताया है और यही मेरा अनुभव बताता है। बौद्ध मत भी, जो आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानता, यही समझता है।"

सुनन्द को निरुपम की इस बात से सन्तोष हुआ। इस कारण उसने निरुपम को अपनी योजना बताते हुए कहा, "देखो भन्ते! महाराज तो कई कारणों से संघ के सहायक बने हुए हैं, पर अब तो वृद्ध हो चुके हैं और उनके उत्तराधिकारी का प्रश्न उपस्थित है। उनके पुत्र कुणाल, जालौक और तीवर हैं। कुणाल बौद्ध है परन्तु अन्धा है। जालौक शैव है। तीवर जैन है। इस कारण महाराज की इच्छा है कि कुणाल के पुत्र सम्प्रति को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवराज घोषित कर दिया जाय। हम इस बात का समर्थन कर रहे हैं; परन्तु हमारी इच्छा थी कि सम्प्रति का विवाह बौद्ध मत की आज्ञा-पालन करनेवाली किसी लड़की से हो जाए। महाप्रभु कौल्यायन ने इसी प्रयोजन के लिए ज्योति को यहाँ भेजा है। मैं आज ज्योति से मिला हूँ और मुझको कुछ ऐसा सन्देह हुआ है कि वह तुमसे प्रेम करती है। मेरी इच्छा है कि तुम उसे निराश न करो, परन्तु साथ ही उसको प्रेम की सीमा से बाहर न जाने दो। इस प्रेम के कारण जो प्रभाव तुम्हारा उस पर बने, उसको बौद्ध संघ के हित में प्रयोग करो।

"ऐसा करने के लिए जब तक उसका विवाह न हो जाए, तुम इसी विहार में रहोगे। तुम नित्य उपदेश देने प्रासाद में जाया करोगे। वह सप्ताह में एक बार उपासना में सम्मिलित होने के लिए यहाँ आया करेगी।"

"पर भगवन्! क्या उसे प्रासाद में स्थान मिल गया है?"

"मिल जाएगा।"

"किस रूप में?"

"यह विचार करना तुम्हारा कार्य नहीं, मैं आज महाराज से मिलकर इस बात की स्वीकृति ले लूँगा।"

"महाराज! कलिंग राज्य के गणपति केशवदेव की एक लड़की थी। कलिंग-विजय के समय उसकी आयु तीन मार्स की थी। एक सेवक उसे उठाकर विशालापुरी ले गया था और वहाँ उसने उस लड़की को इन्दु वेश्या के पास दस रजत में बेच दिया था। वह लड़की जब बड़ी हुई तो विशालापुरी में उसके सौन्दर्य की धूम मचने लगी। उस लड़की के जन्म-रहस्य को केवल इन्दु और महाप्रभु कौल्यायन ही जानते हैं। अब तक वे उस लड़की का पालन-पोषण करते रहे हैं, परन्तु अब वह सज्ञान हो गई है और उसके लिए इन्दु का निवास-स्थान उपयुक्त नहीं माना गया, इसलिए महाप्रभु कौल्यायन ने उस लड़की को पाटलिपुत्र भेज दिया है।" महाराज को यह कथा सुनन्द सुना रहा था—

"वह राज्य-परिवार की लड़की है और राज्य-परिवार में ही शोभा पा सकती है। उसको यहाँ आकर महारानी की सेवा में रहने की स्वीकृति मिल जाए तो शायद आज से बीस वर्ष पूर्व किए अनाचार का प्रतिकार हो सके।"

"क्या आयु है लड़की की?"

"इक्कीस वर्ष।"

"वह अपने वास्तविक जन्म और कुल को जानती है?"

"नहीं महाराज! इस रहस्य को जाननेवाले केवल दो व्यक्ति जीवित हैं। एक वेश्या इन्दु और दूसरे महाप्रभु कौल्यायन।"

"लड़की सुन्दर है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अद्वितीय सुन्दरी है महाराज !"

"दिखा दो। परन्तु उसको अपने जन्म की बात न बताई जाए।"

"ठीक है महाराज !"

ज्योति को जब देवानांप्रिय प्रियदर्शी महाराज अशोकवर्द्धन के सम्मुख उपस्थित किया गया तो महाराज उसके सौन्दर्य को निरख स्तब्ध रह गए। इस वृद्धावस्था में भी उनके रोम-रोम में काम-वासना उभर उठी। वे कितनी ही देर तक एकटक उसे देखते रहे।

जब महाराज के सम्मुख खड़े ज्योति को बहुत काल व्यतीत हो गया और महाराज कुछ नहीं बोले तो ज्योति ने आँखें नीचे किए हुए ही कहा, "महाराज ! यदि मुझमें कुछ दोष हो तो मेरा दोष नहीं। मुझको तो ऐसा बताया गया है कि मुझ-जैसी सुन्दरी के लिए राजप्रासाद में ही स्थान हो सकता है। विशालापुरी के युवक, जिनको मैं घृणा की दृष्टि से देखती हूँ, मेरे लिए लड़ मरते थे। इन झगड़ों से बचने के लिए ही मैं श्रीमान् के संरक्षण में आई हूँ।"

इस विनम्र निवेदन से महाराज को चेतना हुई और उनको ज्ञान हुआ कि लड़की को उनके सम्मुख खड़े चौथाई घड़ी के लगभग बीत गया है। अपने मन की अवस्था को समझ महाराज का मुख लज्जा से लाल हो गया। उन्होंने अपने मन के भावों को छिपाते हुए कहा, "देवी ! सत्य ही तुम्हारी रक्षा के लिए राज्य का संरक्षण चाहिए। तुम हमारे प्रासाद में रह सकती हो। परन्तु यहाँ रहने के लिए यहाँ के आचार-व्यवहार का पालन करना आवश्यक होगा। उसे सीखने के लिए हम तुम्हें महारानी पद्मावती के संरक्षण में रखते हैं।"

इस प्रकार ज्योति को महाराज के प्रासाद में प्रवेश मिल गया।

महारानी इस सुन्दर लड़की को अपने पास रखकर जहाँ प्रसन्न थी, वहीं चिन्तित भी। पद्मावती जैन थी। उसको बौद्ध-मीमांसा निराधार एवं असत्य प्रतीत होती थी। उस असत्य मीमांसा के आधार पर निर्मित जीवन-व्यवहार को भी वह अहितकर मानती थी। इस कारण अपने निवास-स्थान पर एक बौद्ध कन्या को रखकर उसे चिन्ता बनी रहती थी।

ज्योति इतनी विनम्र और स्नेहमयी थी कि उसको वह कुछ नहीं कह सकती थी। सबसे कठिन समस्या यह थी कि इस लड़की की शिक्षा-दीक्षा के लिए एक श्रावक निरुपम नित्य आता था और आधा प्रहर-भर वह ज्योति के आगार में बैठकर उससे वार्तालाप करता रहता था।

कुछ ही दिनों में रानी पद्मावती को यह बात अखरने लगी। उसने अपनी एक विश्वस्त तथा चतुर दासी दंपा को यह काम सौंप दिया कि इस शिक्षा के समय वह इन दोनों पर दृष्टि रखे और सम्भव हो सके तो इनके वार्तालाप को भी सुनने की चेष्टा करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ही दिनों में ज्योति को महारानी की इस चाल का पता चल गया। दासी दंपा ज्योति से मेल-जोल उत्पन्न करने लगी थी। एक दिन दंपा दिनभर उसके साथ रही। निरुपम के आने के समय भी वह वहीं बैठी रही। ज्योति ने कहा, "दंपा! एक पात्र में प्रभु के लिए दूध लाओ।"

दंपा आगार के बाहर जा एक अन्य दासी को आज्ञा देकर लौट आई और आगार के एक कोने में खड़ी होकर कहने लगी, "देवी! क्या मैं भी प्रभु का उपदेश सुनने के लिए बैठ सकती हूँ?"

"क्या करोगी सुनकर?"

"जो आप लोग करते हैं। कुछ दिनों से मेरे मन में भी भारी अशांति उत्पन्न हो रही है। शायद महाराज के उपदेशों से वह मिट जाए।"

"परन्तु," निरुपम ने बात बीच में ही काटकर कहा, "दंपा! जो कुछ देवी को जानना है वह तुमको न जानने की आवश्यकता है और न ही तुम्हारे में उसे समझने की योग्यता है। इनको पढ़ाने के पश्चात् तुमको अलग से पढ़ा सकता हूँ।"

"पर महाराज! मैं कुछ पूँछूगी नहीं, न ही आपकी बातों में बाधा डालूँगी। मैं तो केवल सुनकर अपने मन में उसे समझने का यत्न ही करूँगी।"

"तुम क्या समझ सकती हो? प्रत्येक बात को समझने के लिए पहले आधार-रूप में कुछ शिक्षा चाहिए।"

"मैं समझती हूँ वह मुझमें है। मैं बौद्ध परिवार में पली हूँ और बौद्ध धर्म के विषय में बहुत-सी बातों को जानती हूँ।"

"फिर भी हमको पता लगना चाहिए कि तुम क्या जानती हो।"

"तो मेरी परीक्षा ले लीजिए।"

इस समय अन्य दासी एक पात्र में दूध ले आई। उससे ज्योति ने पूछा, "तो दूध तुम लेकर आई हो?"

"हाँ देवी! देवी ने कहा था कि मैं ले आऊँ।"

"अच्छा, अब जाओ।" जब दासी चली गई तो ज्योति ने दंपा को समीप बैठाकर कहा, "सत्य बताओ, तुमको किसने यहाँ भेजा है?"

जितना कि महारानी को अनुमान था ज्योति उससे कहीं अधिक बुद्धि रखती थी। वह यह तो समझ गई कि दंपा को यहाँ बैठने और बातें सुनने का हठ किसी अन्य की प्रेरणा से है, परन्तु वह 'अन्य' महारानी है अथवा महाराज, यह वह नहीं समझ सकी। इस कारण उसने पूछा, "किसकी आज्ञा से तुम यहाँ आई हो?"

"सत्य बताऊँ? आप रुष्ट तो नहीं होंगी? मुझको आपकी सेवा के लिए बड़ी महारानी ने नियुक्त किया है। परन्तु मुझे आप दोनों का वार्तालाप सुनने की प्रेरणा स्वयं ही हुई। मैं इन महात्मा जी की वाणी में रस और गुण पाती हूँ।"

"झूठ बोलती हो तुम। निकल जाओ यहाँ से!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंपा मुस्कराती हुई बोली, "देवी ! मुझे इस प्रकार निकाल देने से तो आप सबके समक्ष यह सिद्ध कर देंगी कि आप इनसे कोई ऐसी बात करती हैं जो आपको नहीं करनी चाहिए। इससे तो आप सबकी दृष्टि में पतित हो जाएँगी। मेरी सम्मति मानिए और मेरी बात पर विश्वास कीजिए। यदि मेरा कथन सत्य है तब तो आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मान लीजिए कि मैं असत्य-भाषण करती हूँ, तब भी आप मेरे पर विश्वास कर मेरे समक्ष कोई अनुचित बात अथवा व्यवहार न करें, और यदि ऐसा व्यवहार करने से रुक नहीं सकतीं तो आपको एक राय देती हूँ। मैं दासी हूँ, मुझको आप खरीद लीजिए जिसमें मैं आपका रहस्य किसी को न बताऊँ।"

निरुपम दासी की इस युक्ति पर हँस पड़ा। ज्योति का अभी भी दासी पर विश्वास नहीं जमा था। इस कारण उसने कहा, "मुझको तुम्हारे इस कथन पर विश्वास नहीं कि तुम किसी की ओर से मेरे पर भेदिया नियुक्त नहीं हुई हो।"

"तब तो दो ही मार्ग शेष हैं। इनमें से जो आपको रुचिकर हो, ग्रहण कर लीजिए। एक तो यह है कि मुझको सेवा से निकाल दें। परन्तु आप कैसे कह सकती हैं कि जो दूसरी दासी मेरे स्थान पर आएगी, वह आप पर भेदिये का कार्य नहीं करेगी? दूसरा मार्ग यह है कि आप मुझको इतना पुरस्कार दें कि आपके रहस्य को किसी को न बताऊँ।"

"कितना मूल्य है तुम्हारा?"

"अभी तो आप दे नहीं सकतीं। फिर भी वह समय दूर नहीं जब आप यहाँ की पटरानी बनेंगी। तब तक मेरा मूल्य दस सहस्र स्वर्ण मुझको मिलना चाहिए।"

"दस सहस्र स्वर्ण?" विस्मय से निरुपम ने पूछा। ज्योति मुस्करा रही थी।

"हाँ प्रभु!" दंपा ने कहा, "हम दासियों के एक संकेतमात्र से हाथ में आ रहा सिंहासन छूट सकता है। क्या यह उसका कुछ अधिक मूल्य है?"

ज्योति ने पूछा, "इतना धन मेरे पास इस समय तो है नहीं, और तुम कह रही हो कि मैं पटरानी बनूँगी। यदि बन गई तो जो तुम माँगोगी दे दूँगी। परन्तु क्या तुम मेरा विश्वास करोगी?"

"देखिए देवी जी! मेरे मन में पाप अथवा कपट नहीं। मैं आपकी सेवा और रहस्य बिना मूल्य गुप्त रख सकूँगी। फिर भी आपको यदि विश्वास न हो तो आप कुछ अग्रिम दे दीजिए।"

"अच्छा, एक बात करो। यह मेरे गले की कंठी है, अभी इसे रखो। फिर और दूँगी।"

ज्योति ने कंठी उतार दंपा के गले में डाल दी और कहा, "अब ध्यान रखो, जब ये आया करें, तुम यहाँ से उठ जाया करो।"

"नहीं देवी जी! यह तो ठीक नहीं। आपको अकेली देख कोई अन्य दासी यहाँ आ जाएगी, तब आप क्या करेंगी? क्या उसको भी घूस दीजिएगा? मेरा निवेदन है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उस कोने में मुख घुमाकर बैठ जाया करूँगी। आप जो बातें करेंगे, मैं नहीं सुनूँगी और जो कुछ करेंगे, नहीं देखूँगी।"

निरुपम हँस पड़ा। ज्योति प्रत्यक्ष रूप में तो मान गई और दंपा उठकर एक दूसरे कोने में जा बैठी, परन्तु वह उनकी प्रत्येक क्रिया को देख सकती थी।

जब दंपा दूर जा बैठी तब ज्योति ने कहा, "अभी कुछ दिन तक हमको यहाँ संयम से रहना चाहिए।"

"हाँ, मुझको यह दासी अत्यन्त चतुर प्रतीत होती है। एक बात वह ठीक कहती है कि कोई भी दासी हो, वह हमारे अधीन तो होगी नहीं। अब इसके विषय में तो हमें सन्देह हो गया है। अतएव इससे हम सतर्क रह सकेंगे।"

ज्योति ने बात बदलकर कहा, "कल कुमार सम्प्रति से भेंट हुई थी। जैसी कि मैं आशा करती थी, वह मेरे सौन्दर्य को देख मन्त्रमुग्ध की भाँति खड़ा रह गया। महारानी जी ने मेरा परिचय दिया। उस परिचय से मैं स्वयं विस्मय में रह गई। मैंने न नहीं की, परन्तु महाप्रभु से कह दीजिए कि महारानी अथवा महाराज से मेरे विषय में जो कुछ कहें, पहले मुझे बता दिया करें।"

"क्या परिचय दिया है महारानी ने?"

"यही कि मैं कलिंग के स्वर्गीय गणपति की कन्या हूँ, मेरी पदवी राजकुमारी है।"

"यह तो बहुत विचित्र बात है। क्या यह ठीक है?"

"मैं क्या जानूँ? मैं तो इन्दु वेश्या को अपनी माँ मानती हूँ। महारानी जी का कहना है कि कलिंग-विजय के समय मैं तीन मास की थी और मगध की सेना ने मेरी माता और मेरे परिवार के अन्य लोगों की जब हत्या की तो कलिंग के एक सेवक ने मुझे इन्दु वेश्या के पास दस रजत में बेच दिया।"

यह समाचार प्राप्त कर निरुपम गम्भीर विचार में पड़ गया। उसे गम्भीर होता देख ज्योति ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा, "क्यों, क्या बात है? आपका मुख मलिन क्यों हो गया?"

"एक मैना, जो कल मेरे हाथों में कल्लोल कर रही थी, उड़कर आकाश में जा पहुँची है। मेरे पंख नहीं हैं और मैं उड़कर उसे पकड़ नहीं सकता।"

"पकड़ने की क्या आवश्यकता है? वह स्वयं आकाश से नीचे उतर आएगी और अपने आश्रय-स्थान को पा लेगी।"

"तो फिर कुमार से कुछ बातें हुईं?"

"आज वे तीसरे प्रहर मेरे आगार में आने वाले हैं।"

"कैसे पता चला?"

"उनके एक दास ने आकर पता किया था कि क्या मैं आज तीसरे प्रहर अपने आगार में रहूँगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं अभी महारानी जी के आगार में जा रही हूँ। पश्चात् कुमार से मिलूँगी। मैं समझती हूँ कि हम अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं।"

जब निरुपम ज्योति को उपदेश देकर चला गया, तो वह महारानी के साथ मध्याह्न का भोजन करने उनके आगार में जा पहुँची। वह नित्य इस समय का भोजन वहीं किया करती थी। आज कुमार सम्प्रति भी वहीं भोजन करने आने वाला था। ज्योति समझती थी कि उसके आने का प्रयोजन केवलमात्र उसको देखना है, तथा उससे परिचय बढ़ाना है। इस कारण वह उच्च परिवार की कन्या घोषित हो जाने पर अपने को उसी के अनुरूप बनाकर रखना चाहती थी। वह एक राजकन्या का अभिनय कर रही थी।

भोजन के समय वह महारानी के एक ओर बैठी थी, कुमार दूसरी ओर। केवल महारानी और ज्योति में वार्तालाप होता रहा। महारानी ने पूछा, "ज्योति! श्रावक युवक क्या बताता रहता है तुम्हें?"

ज्योति मुस्कराकर चुप रही। महारानी ने उससे कहा "मैं जैनमत को मानने वाली हूँ। मेरे विवाह के समय मेरे माता-पिता जैन-मतानुयायी थे। मैं भी मानती थी कि परमात्मा और आत्मा नाम की वस्तुएँ संसार में नहीं हैं। जीव-जन्तु प्रकृति का एक सचल रूपमात्र हैं। परन्तु इस सिद्धान्त को माननेवालों के मन की प्रतिक्रिया देखकर मैं डाँवाडोल हो उठी।

"तुम तो इन श्रावकों से मेल-जोल रखती हो और इनके विहारों में आती-जाती रहती हो। क्या यह सत्य नहीं कि अधिकांश श्रावक विषय-वासना में, अधिक नहीं तो उतने ही, लिप्त हैं जितने गृहस्थ-प्राणी? क्या यह सत्य नहीं कि लोभ, मोह, अहंकार इन श्रावकों में साधारण गृहस्थियों से भी अधिक हैं? क्या यह ठीक नहीं कि कुटिलता, जिसको ये कूटनीति कहते हैं, इनमें जनसाधारण से भी अधिक है?"

"आपका अनुभव ठीक है। बौद्ध सम्प्रदाय का यह कहना है कि प्राणी प्रकृति का अंश है। जब यह विषय-वासना में लिप्त होता है तो प्रकृति के गुणानुकूल ही होता है। इस वासना से बाहर निकलना ही निर्वाण पथ की ओर अग्रसर होना है। इसके लिए वासना और उसके परिणामों को भूल जाना ही मोह से मुक्ति कहाती है।

"मैं समझती हूँ कि मानव को प्रकृति का अंश मानकर तो मनुष्य-समाज में पतन आया है, उन्नति नहीं हुई।"

सम्प्रति इन विचारों को सुन प्रसन्न हो रहा था। उसने पूछ लिया—"परन्तु यह युवक-श्रावक कुमारी जी के पास क्यों आता है? उसको आने से मना क्यों नहीं कर देतीं?"

ज्योति हँस पड़ी। उसके दाँत हिलती हुई मोतियों की लड़ियों की भाँति दिखाई देने लगे। जब इसका अर्थ सम्प्रति नहीं समझा तो ज्योति ने उसके मुँह पर विस्मय से देख पूछा, "मैंने एक विहार में शिक्षा पाई है। सब मुझको बौद्ध-मतावलम्बी समझते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनकी सहायता से ही मेरा पालन-पोषण हो रहा है। उन्होंने ही मुझको महारानी जी की सेवा में पहुँचने का सौभाग्य दिलाया है। मैं उनकी कृतज्ञ हूँ और उनसे झगड़ा नहीं कर सकती।"

"परन्तु क्या तुम बौद्ध सिद्धान्तों में विश्वास रखती हो?"

"वे क्या सिद्धान्त हैं, जिनमें विश्वास रखने की आवश्यकता नहीं है, मैं तो कुछ समझी नहीं। देखिए, ये लोग मानते हैं कि न तो परमात्मा है और न ही आत्मा। फिर भी यह कहा जाता है कि निर्वाण प्राप्त करना है। किसको करना है, और क्यों करना है? यह वे नहीं बताते।

"फिर यह कहा जाता है कि संसार दुःखों से भरा है। मैं पूछती हूँ कि दुःख-सुख किसको होता है? प्रकृति को ही होगा, तो होता रहे! एक मिट्टी के ढेले को यदि किसी विशेष परिस्थिति में दुःख होता है तो दूसरी परिस्थिति में सुख भी होता है। जब निर्वाण प्राप्त होगा तब न सुख रहेगा न दुःख। तो लाभ क्या हुआ? मैं तो दिनभर के कष्ट के पश्चात् यदि एक घड़ीभर सुख प्राप्त करूँ, तो वह सुख बहुत ही भला प्रतीत होता है।

"एक बात यह भी कही जाती है कि कई जन्मों में जाकर निर्वाण प्राप्त होता है। जन्म किसका होता है? तो क्या प्रकृति में से प्रकृति जन्म लेती है और फिर प्रकृति अपनी शान्त अर्थात् निश्चल अवस्था में पहुँच जाती है? यह सब क्यों हैं? कहते हैं कि प्रकृति के अपने धर्म से। यदि यह सब-कुछ प्रकृति के अपने धर्म से ही हो रहा है तो होता रहे! मैं क्यों इसे रोकने का यत्न करूँ?"

सम्प्रति इस युक्ति से हँस पड़ा। वह बोला, "आपको इसकी चिन्ता क्यों है? जो युक्ति करने की योग्यता रखते हैं, वे बौद्ध नहीं हो सकते।"

"परन्तु बेटा! महाराज क्या युक्ति करना नहीं जानते?"

"मैंने एक दिन पूछा था। उस पर वे कहने लगे, मत-मतान्तर का नाम तो एक धोखा है। वास्तव में मानवता ही मुख्य बात है, जिसके लिए मनुष्य को यत्नशील रहना चाहिए।"

"तो तुमने पूछा नहीं कि मानवता के लक्षण क्या हैं?"

"मनुष्य में अनेक दुर्बलताएँ हैं। यदि किसी दुर्बलता के कारण कोई अनियमितता होती है तो दुर्बलता के नाते मनुष्य पापी बन जाता है। तब वह तो दयनीय प्राणी बन जाएगा। उस पर दया करके उसका अपराध क्षमा कर देना चाहिए।"

"क्षमा कर देना तो ठीक है। परन्तु उस अपराध से जिसकी हानि हुई हो, वह क्या करे?"

"राज्य उसको प्रतीकार दे।"

"तब तो आनन्द ही आनन्द है। परन्तु यह मानवता के हनन में सहायक ही होगा। पाप करे कोई और फल भोगे राज्य अथवा कोई अन्य प्राणी। इससे पाप बढ़ेगा और संसार के दुःखों में वृद्धि होगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दिन भोजन की समाप्ति तक ज्योति और कुमार सम्प्रति में परिचय काफी बढ़ा और सम्प्रति ने उसके विदा होने से पूर्व उसको कहा कि वह उससे कुछ देर पश्चात् मिलने आएगा।

"आइए, मैं प्रतीक्षा में रहूँगी।" इतना कह ज्योति ने ऐसे प्रेम-मय भाव से उसकी ओर देखा कि वह मंत्रमुग्ध की भाँति खड़ा रह गया। ज्योति चली गई और वह उसकी ओर देखता ही रहा।

महारानी ने उसके खुले मुँह और तृषित नेत्रों को देख उसके मनोभावों का अनुमान लगाकर पूछा, "कुमार! कैसी है यह लड़की?"

"माँ! मैं इससे विवाह करूँगा।"

"मैंने इसके हृदय के भावों को जानने के लिए दंपा को नियुक्त किया है। इसके व्यवहार और विचारों को जानने के पश्चात् ही विवाह का निश्चय होना चाहिए।"

"कुछ भी हो माँ! मैं इसके विरह में व्याकुल हूँ।"

"व्याकुल ! इसकी क्या आवश्यकता है? यदि इसमें कोई दोष हुआ तो इससे विवाह नहीं होगा। फिर भी इसको दासी बनाकर तो रख ही सकोगे। तनिक धैर्य से काम लो।

"देखो सम्प्रति! तुम महाराजाधिराज बनने वाले हो। यदि तुम इस प्रकार की तुच्छ बातों के लिए अधीर होओगे तो इतनी बड़ी पदवी से हाथ धो बैठोगे।"

"माँ! मैं संसार का पूर्ण वैभव भी इस पर न्यौछावर कर दूँगा।"

"मूर्ख मत बनो बेटा! यह तुम्हारी ही है। तुमको ही मिलेगी। केवल यह निश्चय करना है कि तुम्हारी रानी बनकर आएगी अथवा दासी।"

"माँ! जो कुछ होना है वह शीघ्र होना चाहिए।"

उसी सायंकाल वह ज्योति से मिलने गया। कुमार की व्याकुलता देख ज्योति ने उसे हतोत्साह नहीं किया। साथ ही उसने उसे शिष्टाचार की सीमा का उल्लंघन भी नहीं करने दिया। दंपा अपने कहने के अनुसार एक कोने में बैठी थी। ज्योति ने उसे आगार से बाहर जाने ही नहीं दिया। कुमार को ज्योति के साथ एकान्तवास का अवसर ही नहीं मिला। फिर भी कुमार ने उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट किया। ज्योति ने इसके विपरीत कहा, "आप राजकुमार हैं। मैं क्या हूँ, स्वयं नहीं जानती। एक वेश्या के घर में पली हूँ और नहीं जानती कि किसकी पुत्री हूँ। ऐसी अवस्था में मेरा विवाह आपसे सम्भव नहीं और मैं आपसे अविवाहित सम्बन्ध बना नहीं सकती। मुझे इससे घृणा है।"

"पर महारानी जी कहती थीं कि तुम राजकुमारी हो। कलिंग देश के अन्तिम गणपति की पुत्री हो। इसी कारण महाराज ने तुम्हें यहाँ आश्रय दिया है।"

"यह उनको किसने बताया है?"

"महाराज ने अथवा महाप्रभु सुनन्द ने ही बताया होगा।"

"मैं इन बातों के विषय में कुछ नहीं जानती। मुझको अपने उच्च कुल के होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर विश्वास नहीं आता। मैं आगामी रविवार को जब उपासना में सम्मिलित होने जाऊँगी, वहाँ महाप्रभु से इस विषय में जानकारी प्राप्त करूँगी।"

"हाँ, पूछ लेना। मुझको विश्वास है। देखो देवी! मैं तुमको अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ। विवाह हो तो ठीक, अन्यथा जिस प्रकार भी तुम चाहो, मैं मान जाऊँगा। कहो तो यह राज्य-लालसा छोड़ सकता हूँ। हम किसी अन्य देश में चले जाएँगे। तुम्हें खाने-पीने की किसी प्रकार की कमी नहीं रहेगी।"

"आप मेरे लिए राज्य छोड़ेंगे?"

"हाँ! मेरे चाचा जालौक इस समय कश्मीर में हैं। वे बौद्ध मतानुयायी नहीं हैं। उनकी मेरे पितामह से नहीं बनती। मैं उनके पास तुम्हें ले चलूँगा। वे तुमको मेरे योग्य मान मेरा तुमसे विवाह कर देंगे।"

ज्योति इस पर मुस्कराई और बोली, "आप धैर्य रखिए। यहीं सब-कुछ ठीक हो जाएगा। मैं महाप्रभु से पूछ लूँ और पश्चात् मेरे विचार में सब ठीक हो जाएगा।"

"कठिनाई यह है कि महाप्रभु मेरे राज्यारोहण के विरोध में हैं। मैं बौद्ध नहीं हूँ, मैं संघ की शरण में जाने में रुचि नहीं रखता। मैं तथागत भगवान् बुद्ध को एक साधारण योग्यता का व्यक्ति मानता हूँ। मुझको इससे जैन धर्म में अधिक तथ्य प्रतीत होता है।"

ज्योति पुनः हँस पड़ी। उसके हँसने का अर्थ न समझकर सम्प्रति ने कहा, "देवी को जैन मत का ज्ञान नहीं, तभी मेरे कहने पर हँसी कर रही हैं।"

"नहीं कुमार! विश्वास-अविश्वास की बात नहीं। आपके कहने पर हँसी आई है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपको राजनीति की शिक्षा नहीं दी गई है, नहीं तो आप मत-मतान्तरों के झगड़े में न पड़कर राज्य का भार सँभालने का यत्न करते।"

"मैं इस झगड़े में तो पड़ता नहीं। यह तो बौद्ध संघ वाले इस व्यर्थ की बात को खड़ा कर रहे हैं। उनका कहना है कि मैं बौद्ध नहीं हूँ। इस कारण मैं महाराजाधिराज का, जो बौद्ध हैं, उत्तराधिकारी नहीं हो सकता।"

"पर मैं पूछती हूँ कि उनको कैसे पता चल गया कि आप बौद्ध नहीं हैं? मत-मतान्तर को मानना तो अपने मन और आत्मा की बात होती है। इसकी घोषणा करने की क्या आवश्यकता है?"

"मैंने घोषणा नहीं की। उन्होंने मेरे पीछे भेदिये लगाकर मेरे व्यवहार से मेरे मन की बात जान ली है।"

"मेरी सम्मति मानिए, आप अपने मुख से कुछ नहीं कहिए। जब राज्य मिल जाए तब जो मन में आए, करिएगा।"

सम्प्रति इससे गम्भीर हो गया। उसे इस प्रकार चुप देख ज्योति ने पूछा, "कहिए, क्या बात सोच रहे हैं?"

"मुझसे झूठ नहीं बोला जाता। न ही व्यवहार में बनावट लाई जाती है।"

"तो आप राजनीति में सफल नहीं हो सकते।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुछ भी हो, यह बात बहुत कठिन है।"

"पर अभी तो आप कह रहे थे कि आप मेरे लिए सब-कुछ कर सकते हैं?"

"हाँ! यह ठीक है। मैं तुम्हारे लिए सब-कुछ कर सकता हूँ।"

"तो मेरी सम्मति है कि आप बौद्ध हो जाएँ। राज्य मिल जाने पर सब-कुछ देख लिया जाएगा।"

"महारानी जी से राय कर लूँ। तब ही इस पर विचार कर सकूँगा।"

"आप बुद्धि से अभी बालक ही प्रतीत होते हैं। क्या मैं आपको कोई अनुचित बात करने को कह रही हूँ?"

परिणाम यह हुआ कि ज्योति को प्राप्त करने के लिए राज्य पाना और राज्य प्राप्त करने के लिए मन की बात को गुप्त रखना आवश्यक हो गया। ज्योति के कहने पर कुमार सम्प्रति बौद्ध उपासनाओं में सम्मिलित होने लगा।

महापण्डित चक्रधर बौद्ध उपासक था। वह बौद्ध ग्रंथों का महाविद्वान् और पाटलिपुत्र में भारी ख्याति वाला था। वह राजमार्ग पर अपने निवास-गृह में सायंकाल बौद्धिक-गोष्ठी किया करता था और उसमें श्रावक और अन्य मत-मतान्तरों के विद्वान् और जिज्ञासु सम्मिलित होते थे।

जब कभी किसी सिद्धान्त के विषय में ज्ञान प्राप्त करना होता, तो राज-परिवार के लोग भी महापण्डित की सम्मति लिया करते थे। महापंडित चक्रधर नालन्दा में आचार्य था। वहाँ उसकी विश्वविद्यालय के कुलपति से नहीं पटी। इस कारण वह उसे छोड़ पाटलिपुत्र में निवास करने लगा था।

चक्रधर का पारिवारिक जीवन अत्यन्त ही सुख तथा शान्तिपूर्ण था। उसकी स्त्री थी कोमलांगी और एक लड़की थी, जिसका नाम संज्ञा था। उसका एक लड़का भी था जिसका नाम रुद्रदत्त रखा गया था। जब वे पाटलिपुत्र में रहने आए थे, तब संज्ञा की आयु दस वर्ष की थी। वह साधारण रूप-रेखा की थी। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, यौवनावस्था के आगमन के साथ उसकी रूपरेखा भी निखरती गई।

संज्ञा भी पिता के साथ बौद्ध गोष्ठियों में बैठ बौद्ध सिद्धान्तों का निरूपण किया करती थी। अपनी बुद्धि के अनुसार इन सिद्धान्तों के क्रियात्मक रूप को जानने का सदैव यत्न किया करती थी।

एक दिन प्रातःकाल जब पण्डितजी की नींद खुली तो उनको अपना घर कुछ अस्त-व्यस्त दिखाई दिया। उन्होंने पत्नी को पुकारा, परन्तु उसका उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। वे चारपाई से उठ बैठे और कोमलांगी के आगार में पहुँचे तो देखा कि उसके हाथ-पाँव तथा मुख बँधा हुआ है। उसका मुख खोला और थोड़ा-सा जल पिलाने के पश्चात् पूछा, "क्या हुआ है?"

"मध्य रात्रि के पश्चात् दस-बारह डाकू आए और उन्होंने मुझे पकड़कर मेरे मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कपड़ा ठूँस दिया। मेरे हाथ-पाँव बाँध दिए। पश्चात् संज्ञा को उठाकर बाहर ले गए। उनमें से कुछ, जो पीछे रह गए थे, घर का सामान ढूँढने लगे; भूषण, वस्त्र, बर्तन आदि सब निकाल-निकालकर देखने लगे और जो उनको भाया, गाँठ बाँधकर ले गए। आपके आगार में से आपकी पुस्तकें भी उठाकर ले गए हैं। आप इतनी गहरी नींद सो रहे थे कि आपकी आँख ही नहीं खुली।"

"बहुत दुष्ट हैं वे लोग!"

कोमलांगी ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "नित्य ज्ञान-धर्म की ही बातें करते रहते हो, बताओ अब क्या करोगे?"

"अभी महाराज के पास जाता हूँ और देखता हूँ कि क्या किया जा सकता है।"

"देवता! मेरी लड़की का पता लगा सको तो महाराज की कीर्ति गाऊँगी। मुझे तो इसमें सन्देह है कि महाराज कुछ कर भी सकेंगे।"

"तो क्या तुमको महाराज की शक्ति में सन्देह है? मैं समझता हूँ कि डाकुओं का पता शीघ्र ही लग जाएगा।"

"महाराज की शक्ति की बात तो तब देखी जाएगी, अब तो मुझे महाराज के महाराज होने में भी सन्देह है।"

"देखो कोमलांगी! डेढ़ सहस्र कोस लम्बा-चौड़ा साम्राज्य क्या बिना महाराज और उनकी शक्ति के चल सकता है?"

"एक मूर्ख स्त्री के विदीर्ण हृदय की व्यथा को छोड़िए और जाइए महापण्डित जी! अपनी दी हुई शिक्षा को फलीभूत होता हुआ देखिए।"

"क्या अभिप्राय है तुम्हारा?"

"उस दिन सेठ धन्यकुमार की पुत्री का अपहरण हुआ तो अपहरण करनेवाला पकड़ा गया था। महाराज ने उस अपराधी का दण्ड-विधान करने के लिए आपकी सम्मति माँगी थी। मेरे विचार में आपको इसका ध्यान तो होगा ही?"

"परन्तु वह तो जैन मतावलम्बी सेठ की लड़की थी और संज्ञा स्वयं बौद्ध उपासिका तथा बौद्ध महापण्डित आचार्य की लड़की है।"

"तो क्या न्याय व्यक्ति-व्यक्ति को देखकर अपना रूप बदलता है?"

"इसमें सन्देह ही क्या है! एक गधे को लाठी पड़े तो वह दिल लगाकर काम करता है। उससे भी अधिक कार्य घोड़ा चाबुक की शटक के शब्द से करता है। मनुष्य को प्रेरणामात्र से ही काम पर लगाया जा सकता है। इस प्रकार मनुष्य-मनुष्य में भी भेद होता है।

"यदि किसी गाय-भैंस के पेट में शूल हो तो उसको मटके-भर पाचकक्वाथ देना पड़ता है, और वही शूल कहीं मेरी कोमलांगी को हो जाए तो दो चुटकी-भर चूर्ण से ही स्वास्थ्य-लाभ हो सकता है।"

"अच्छा, तो अब जाओ। इसमें भी तर्क छाँटने लगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापण्डित महोदय ने वस्त्र पहने और महाराज के द्वार पर जा बैठा। चौधाई प्रहर के उपरान्त महाराजाधिराज ने महापण्डित को ऊपर आने की स्वीकृति दी। महाराज ने स्वयं उपस्थित होकर पण्डित चक्रधर का स्वागत किया और अपने समीप एक आसन पर बैठाकर पूछा, "भगवन्! क्या बात है जो इतने प्रातः आने का कष्ट किया?"

"महाराज! अन्धेर हो गया है। आपके राज्य में एक गरीब ब्राह्मण का सर्वनाश हो गया है। मैं न्याय-याचना के लिए महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।"

"हाँ, हाँ, बताइए न! क्या हुआ है?"

"देवताओं को भी प्रिय! मध्यरात्रि के कुछ ही पहले लगभग दस-बारह डाकू मेरे निवास-स्थान पर आए और मेरी पूर्ण धन-सम्पदा, मेरी स्त्री के आभूषण आदि और इनके साथ हां मेरी युवा लड़की संज्ञा को ले गए हैं। महाराज! मुझे मेरी लड़की वापस मिलनी चाहिए और उन दुष्टों को दण्ड मिलना चाहिए!"

महाराज के माथे पर बल पड़ गए। उन्होंने ताली बजाकर प्रतिहार को बुलाया और कहा, "तुरन्त नगरपाल को उपस्थित करो।"

"महापण्डित! आपको रात में ही आकर सूचना देनी चाहिए थी। न जाने वे दुष्ट आपकी लड़की को कहाँ ले गए होंगे! यदि वे वन की ओर भाग गए तो उनका ढूँढना सुगम न होना। फिर भी प्रयत्न किया जाएगा। आप सायंकाल तक आकर समाचार ले जाइएगा।"

पण्डित आशा से भरा हुआ घर लौट आया। महाराज यत्न करें तो क्या नहीं हो सकता! घर पहुँचकर जब उसने पत्नी को महाराज की ओर से प्राप्त आश्वासन की बात बताई तो वह बोली, "संज्ञा गई भगवन्! जीवन-भर की कमाई चली गई। निश्चय जानिए कि अब वह नहीं मिलेगी।"

"जब महाराज यत्न करें तो क्या नहीं हो सकता?"

"अच्छी बात है। अब न तो वस्त्र बचे हैं और न ही भोजन बनाने के लिए पात्र। पहले ये वस्तुएँ लाओ, तब कुछ होगा।"

महापण्डित एक दुकानदार से आवश्यक सामान उधार ले आया और ज्यों-त्यों कर उन्होंने भोजन किया। सायंकाल पण्डित चक्रधर जब महाराज से मिलने गया तो महाराज ने पण्डित को देखकर कहा, "पण्डित! कितने धन की हानि हुई है तुम्हारी?"

"महाराज! कम-से-कम दो सहस्र स्वर्ण का सामान गया है।"

"तो एक आज्ञापत्र ले लो, इतना धन कोषाध्यक्ष से तुम्हें मिल जाएगा।" इतना कहकर एक आज्ञापत्र महाराज ने लिखकर पण्डित चक्रधर को दे दिया।

चक्रधर ने पूछा, "मेरी संज्ञा का क्या हुआ?"

"भगवन्! मेरे राज्यकोष में लड़कियाँ जमा होतीं तो उनमें से एक अवश्य तुमको दे देता।"

"देवानांप्रिय! मुझको मेरी लड़की चाहिए। मैंने कोई अन्य लड़की नहीं माँगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु धन के विषय में तो आपने यह नहीं कहा कि आपको आपका अपना सामान चाहिए? तुरन्त आपने आज्ञापत्र स्वीकार कर लिया?"

महापण्डित इस प्रश्न का अर्थ समझने लगा। इसपर महाराज हँसने लगे। इससे पण्डित घबराया। वह अवाक् महाराज का मुँह देखने लगा।

महाराज ने अपने आशय को स्पष्ट करते हुए कहा, "महापण्डित! उस दिन राजमार्ग क शिवमन्दिर में पुजारी पार्थ का पुत्र विमल जब श्रावक बना तो श्रीमान् ने व्यवस्था दी थी कि पुत्र वापस नहीं लाया जा सकता। उसका कारण बताते हुए आपने कहा था कि राज्य-कोष में पुत्र संग्रहीत नहीं किए जाते। हाँ, पिता का दुःख निवारण करने के लिए पुत्र के स्थान पर कुछ धनराशि दी जा सकती है।"

चक्रधर के सामने वह घटना चित्रित हो उठी। उसे ध्यान हो आया कि जब पार्थ ने कहा था कि प्राणी का मोल निर्जीव धन द्वारा नहीं चुकाया जा सकता, तब उसने स्वयं ही तो कहा था कि प्राणी में विशेषता क्या है? प्रकृति के चलायमान रूप को ही तो प्राणी अथवा आत्मा कहते हैं!

"हमने अब वही कहा है।" महाराज बोले, "तुम्हारी संज्ञा तो अब गई! और वैसी वस्तु भी हमारे राज्य-कोष में है नहीं। इस कारण उसका मूल्य बता दो तो मिल सकता है।"

"श्रीमान्! जहाँ वह गई है वहाँ से वापस नहीं लाई जा सकती?"

"अब वह लड़की नहीं रही। वह स्त्री बन गई है और ऐसे स्थान पर है, जहाँ से लौटाकर लाना न तो सम्भव है और न ही लाभप्रद।"

इससे पण्डित चक्रधर विस्मय में महाराज के कथन का अभिप्राय समझने का यत्न करने लगा। वह स्त्री बन गई है अर्थात् किसी की पत्नी बन गई है। तो वह कौन है? क्या वह उससे मिल भी नहीं सकता? इतना विचार कर उसने महाराज से निवेदन किया—"क्या मैं वहाँ जाकर उसको देख भी नहीं सकता?"

"जहाँ वह है वहाँ से पता करके ही बताया जा सकता है कि तुम वहाँ जा सकते हो अथवा नहीं।"

इससे चक्रधर का विस्मय तनिक भी कम न हुआ। उसने पूछा, "महाराज! वह कौन-सा स्थान है, जहाँ भारत-सम्राट् की भी पहुँच नहीं?"

"महापण्डित! यह राजनीति है।"

महापण्डित राजनीति की बात सुन भयभीत हो गया। महाराज ने कहा, "अच्छा अब बताओ—इस कन्यारत्न के लिए आपको कितना स्वर्ण चाहिए, जिससे आप प्रसन्न हो सकेंगे?"

महापण्डित समस्या के इस रूप को नहीं जानता था। उसके मन में लड़की का मूल्य लेना रुचिकर नहीं था। परन्तु वह मन में विचार करता था कि जब सब-कुछ प्रकृति का रूप ही है तो एक प्रकृति-पदार्थ का मूल्य एक अन्य प्राकृतिक पदार्थ क्यों नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता ? प्रकृति का चेतन रूप अचेतन से अधिक मूल्यवान हो सकता है। फिर भी हैं तो दोनों एक ही ! अतः मूल्य ले लेना चाहिए। जैसे गेहूँ और सोना एक भाव नहीं बिकते, इसी प्रकार सोना और लड़की का भाव भी भिन्न हो सकता है। फिर भी उसके मन में विचार आया कि मेरे लिए तो मूल्य ले लेना ही ठीक होगा, परन्तु लड़की भी तो हमसे छिन गई है। उसको भी तो हमारे से छीने जाने का प्रतिकार मिलना चाहिए। यह विचार कर बोला, "परन्तु महाराज ! लड़की को परिवार से पृथक् होना भी तो दुःखकर हो जाएगा ?"

"लड़की के विषय में उससे बात कर ली गई है। वह प्रसन्न है, ऐसा हमारे गुप्तचरों का कहना है।"

"परन्तु इस बात का कि वह प्रसन्न है, कैसे विश्वास किया जा सकता है ?"

"गुप्तचरों का ऐसा कहना है। परन्तु मैं पूछता हूँ कि इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? संसार में प्रत्येक लड़की अपने माता-पिता को छोड़कर किसी अन्य पुरुष के पास जाती ही है।"

महापण्डित अभी भी अपने मन को मूल्य लेने के लिए तैयार कर रहा था कि महाराज ने पूछा, "हाँ, तो अब बताओ ! क्या पाने से तुम्हारा दुःख मिटेगा ?"

"दस सहस्र।" परन्तु फिर अपनी पत्नी का विचार कर बोला, "नहीं महाराज। लड़की की माँ ही यह मूल्य बता सकेगी।"

महाराज हँस पड़े और बोले, "अच्छी बात है, घर जाकर मन्त्रणा करके बताना।"

महापण्डित चक्रधर अपने निवास-स्थान पर पहुँचा। अपनी पत्नी को पूर्ण परिस्थिति समझाकर पूछने लगा, "अच्छा अब बताओ, महाराजे को क्या उत्तर दूँ ?"

कोमलांगी वैसे ही क्रोध में पागल हो रही थी, इस प्रश्न को सुन बोली, "उत्तर देने की आवश्यकता नहीं। मुख काला कर, गधे पर बैठ नगर में घूम जाओ। मूल्य मिल गया समझना। पण्डित ! तुम्हें लज्जा नहीं आती लड़की का मूल्य लेने में ?"

"तो कुछ न लूँ ? लड़की तो अब आने से रही ! वह न जाने महाराज के किस बन्धु के आवास की शोभा बढ़ा रही होगी ! प्रश्न तो यह है कि हम दस सहस्र लें अथवा नहीं ?"

कोमलांगी का क्रोध बढ़ता ही जा रहा था और साथ ही वह इस शासन की दुर्दशा पर शोक प्रकट करने लगी थी।

पण्डित लड़की का मूल्य लेने नहीं गया और घर पर पूर्ववत् कार्य चलने लगा। फिर भी वह महाराज की सेवा में समय-समय पर संज्ञा का पता पाने की आशा में जाता रहा। इस प्रकार दो वर्ष बीत गए।

एक दिन महाराज ने पण्डित चक्रधर को कहा, "पण्डित ! हमको विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि तुम्हारी लड़की संज्ञा राजकुमार कुणाल की दासी-पत्नी बन चुकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब यदि तुम उससे मिलना चाहते हो तो राजकुमार के सामने उपस्थित होकर अपनी इच्छा प्रकट करो।"

"राजकुमार कुणाल?" पण्डित चक्रधर के मुख से आश्चर्य में निकल गया। वह सोचने लगा कि क्या महाराज को अपने पुत्र की इस करतूत का अब पता चला है, या पहले से ही विदित था? अवश्य ही महाराज इस घटना से परिचित होंगे। उन्होंने एक बार कहा था कि संज्ञा का वहाँ से लाना सम्भव नहीं। परन्तु आज महाराज ने यह रहस्य क्यों स्पष्ट कर दिया? वह समझ नहीं सका। वह समझता था कि यदि उसे इस रहस्य को जानना है तो इसका सूत्र तो राजकुमार कुणाल के पास से ही मिल सकता है। अतएव वह महाराज के पास से उठकर राजकुमार कुणाल के निवास-स्थान की ओर चल पड़ा।

राजप्रासाद गंगातट पर एक विशाल आँगन में कई निवास-गृहों का समूह था। प्रासाद के मुख्य द्वार से भीतर जाकर एक विशाल मैदान था। उस मैदान को पार कर सामने महाराजाधिराज प्रियदर्शी का निवास-गृह था। उसके पार्श्व में कुछ दूर हटकर राजकुमार कुणाल ने अपने लिए निवास-गृह बनवा लिया था। उन गृहों के पीछे अन्तःपुर थे। महाराजाधिराज के निवास-गृह में, जहाँ राज्यसभा के लिए भवन था, एक विशाल भवन प्रजा-परिषद् के लिए भी था। वहाँ महाराज के निजी सेवकों के गृह थे और महाराज के अपने लिए बैठक थी। महाराज रात को अन्तःपुर में सोते थे। उनकी रानियों में से केवल दो इस समय जीवित थीं—एक राजकुमार कुणाल की माँ पद्मावती और एक सबसे कनिष्ठ तिष्यरक्षिता। तिष्यरक्षिता त्यक्ता थी। महाराज उससे मिलते तक नहीं थे।

महाराज के निवास-गृह के दूसरे पक्ष में मंत्रियों के लिए गृह बने थे। उनके चार मंत्री थे। दो गृहस्थियों में एक पण्डित विष्णुचरण थे। वे शैव मतानुयायी थे और दूसरे बौद्ध उपासक थे। इस प्रकार महाराज बौद्धों से घिरे रहते थे। विष्णुचरण महामात्य होने पर भी कुछ भी शक्ति नहीं रखता था। इसके विपरीत सुनन्द, जो केवल अमात्य था, उसके हाथ में राज्य की सारी बागडोर थी। चारों मन्त्रियों के लिए निवास-स्थान राजप्रासाद में ही बने थे, परन्तु सुनन्द तथा अन्य श्रावक मन्त्री राजप्रासाद से बाहर विहार में रहते थे।

राजकुमार कुणाल की विवाहिता पत्नी का तो देहान्त हो चुका था; इस कारण वे प्रायः संयम का जीवन व्यतीत कर रहे थे। फिर भी कभी-कभी जब वे वासना से अभिभूत हो जाते थे तो किसी दासी को बुला लिया करते थे। दो वर्ष पूर्व एक ऐसा ही अवसर आया था। उस समय राजकुमार की अवस्था तैंतालीस वर्ष की थी और वे बुढ़ापे के पूर्व-लक्षणों को अनुभव करने लगे थे। उनका एक प्रिय सेवक तिर्यगीश था। वह शैव होने पर भी राजकुमार की सेवा में रहने के लिए बौद्ध बना रहता था। वह पुजारी पार्थ का मित्र और शिष्य भी था। उसको विदित था कि महापण्डित चक्रधर ने व्यवस्था दी थी कि पुत्र का मूल्य दिया जा सकता है। इससे वह चिढ़ा हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-दो बार वह पण्डित की गोष्ठियों में जा चुका था और वहाँ संज्ञा भी वार्तालाप को रुचिपूर्वक सुना करती थी और यह बात तिर्यगीश को विदित थी।

तिर्यगीश राजकुमार की वासना-तृप्ति के लिए दासियाँ लाया करता था। इस बार राजकुमार ने जब अपनी इच्छा प्रगट की तो साथ ही कह दिया, "तीर्यगीश! कोई ऐसी कन्या लाओ, जो अब शेष जीवन तक हमारे साथ रह सके।"

उसी सायंकाल वह महापंडित चक्रधर की गोष्ठी में पहुँचा और अवसर पा संज्ञा को पृथक् में ले जाकर पूछने लगा, "देवी! तुम्हारे पिता तुम्हारा विवाह क्यों नहीं करते?"

संज्ञा यद्यपि यौवन के आविर्भाव के कारण विवाह के विषय में विचार किया करती थी, परन्तु इस प्रकार का प्रश्न उससे अब तक किसी ने नहीं पूछा था। इससे वह संकोच में चुप ही रही। तिर्यगीश पुनः बोला, "देवी! तुम्हारी जैसी साधारण रूपरेखा की लड़की के लिए किसी सनेत्र युवक का मिलना कठिन है। इस कारण यदि तुम मेरा कहा मानो तो मैं तुम्हारा विवाह राजकुमार कुणाल से करवा सकता हूँ।"

"युवराज कुणाल? वे तो अति धर्मात्मा और निर्वाण-पथ पर अग्रसर व्यक्ति हैं।"

"हाँ! और यदि तुम चाहो तो मैं पण्डित जी की कृपाओं के प्रतिकार में तुमको भारत की भावी सम्राज्ञी बना सकता हूँ।"

"तुम मेरी हँसी कर रहे हो।"

"अच्छी बात है। अवसर आने पर चूकना नहीं! न ही किसी से इस विषय में कुछ कहना।"

इतना कहकर तिर्यगीश विदा हो गया और संज्ञा के मन में एक उत्सुकता का बीज बो दिया। वह अब दिन-रात यह विचार करती थी कि किस प्रकार राजकुमार की पत्नी बनेगी?

उक्त वार्तालाप के तीन-चार दिन पश्चात् रात को महापंडित चक्रधर के गृह पर डाका पड़ा और जब संज्ञा, जो माँ के साथ उसी के आगार में सोती थी, जागी और उसने देखा कि तिर्यगीश की आज्ञा से माँ के हाथ-पाँव बाँधे जा रहे हैं, तो चुपचाप देखती रही। उसे स्मरण था कि अवसर आने पर उसको चूकना नहीं है।

जब तिर्यगीश उसे पकड़कर ले चला तो उसने पूछा, "किधर?"

"राजकुमार के निवास-गृह पर।"

वह चुपचाप उसके साथ रथ में जा बैठी। गृह से भूषणादि ले जाना अन्य सेवकों का काम था।

अगले दिन जब महापंडित महाराज के पास पहुँचा और महाराज ने नगरपाल को इस विषय में खोज करने को कहा तो उसी सायंकाल महाराज को पूर्ण घटना का पता चल गया था। परन्तु महाराज ने एक बात विचार कर राजकुमार से कुछ कहना उचित न समझा। उन्हें पता चला था कि राजकुमार इस लड़की को अब शेष जीवन-भर रखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता है। इस कारण उन्होंने इसमें बाधक होना उचित नहीं समझा। यही कारण था कि वह चक्रधर को भी रुपया देकर चुप करना चाहते थे।

परन्तु अब दो वर्ष के पश्चात् श्रावक अमात्य इस बात पर बल देने लगे थे कि राजकुमार कुणाल को युवराज घोषित कर दिया जाये। इस कारण महाराज ने कुमार को जनता की हँसी का पात्र बनाने के विचार से संज्ञा के चुराए जाने का रहस्य संज्ञा के पिता को बता दिया। महाराज का विचार था कि महापंडित क्रुद्ध होकर स्थान-स्थान पर राजकुमार की निन्दा करने लगेगा। परिणाम यह होगा कि बौद्ध उपासक राजकुमार के युवराज बनने का विरोध करने लग जाएँगे। फिर भी ऐसा नहीं हुआ। चक्रधर को क्रोध तो आया, परन्तु जब वह राजकुमार कुणाल के सम्मुख पहुँचा तो उनके सौम्य वदन और विशाल मस्तक को देख मन्त्रमुग्ध हो गया।

"महाराज की जय हो!" चक्रधर ने अपने सामने खड़े होने की सूचना दी।

राजकुमार ने कहा, "कौन? चक्रधर? महापंडित, आओ हमारे समीप यहाँ बैठो।"

इस आज्ञा के होने पर तिर्यगीश, जो सदैव राजकुमार के साथ रहता था, महापंडित को आसन देकर बैठने के लिए कहने लगा। जब चक्रधर बैठ गया तो राजकुमार ने कहा, "आप संज्ञादेवी से मिलने आए हैं क्या? मैं तो दो वर्ष से आपके आने की प्रतीक्षा करता रहा हूँ। देवी को मैंने कई बार कहा था कि महापंडित जी को बुलाओ, परन्तु वह संकोचवश आपको न लिख सकी।"

"महाराज!" चक्रधर ने क्रोध छोड़ खिन्न भाव में कहा, "यदि आप मुझसे विवाह में लड़की माँगते, तो क्या मैं इन्कार कर सकता था?"

"आपके मन की भावना मैं कैसे जान सकता था! साथ ही युवराज का विवाह हो चुका है। उस विवाह से उनका एक पुत्र भी है। यदि इस अवस्था में वह विवाह करता तो व्यर्थ का झगड़ा खड़ा हो सकता था। इस कारण युवराज ने गन्धर्व विवाह करने का निश्चय किया था और पश्चात् कर भी लिया। आपकी कन्या का राजाप्रसाद में रानी बनकर रहना विख्यात हो चुका है। हमें आश्चर्य है कि आपको अब तक पता क्यों नहीं चला? मैं तो आपके आने की प्रतीक्षा कर रहा था।"

"किस कारण महाराज?"

"यह सब लगभग निश्चय ही है कि मैं युवराज बना दिया जाऊँगा। मेरे युवराज बनते ही महाराज संन्यास ले लेंगे और मुझको राज्य का भार सँभालना होगा। मैं चाहता था कि आप जैसे विद्वान् मेरे मन्त्रिमण्डल में आएँ। पण्डित विष्णुचरण तो अब वृद्ध हो चुके हैं और मैं उनका स्थान आपको देना चाहता हूँ।"

इस कथन से महापण्डित के मन से शेष बचा-खुचा रोष भी निकल गया।

महापण्डित अब युवराज के पास आने-जाने लगा और वह महामात्य बनने की तैयारी में राजनीति के ग्रन्थों का अध्ययन करने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय विशालापुरी से ज्योति आई और बौद्ध संघ वालों का पाँसा पलटा। ज्योति के सौन्दर्य ने महाराज को मोहित कर लिया। वे इसको पतोहू बनाने के लिए तैयार हो गए। ज्योति के राजकुमारी होने की सूचना पर महारानी के मन में भी उसके प्रति आदर बैठ गया। इसके साथ ही उसके अद्वितीय सौन्दर्य और हाव-भाव ने सम्प्रति को विवश कर दिया कि वह अपने को बौद्ध घोषित कर दे। ज्योति स्वयं बौद्ध विचार-धारा को हीन मानते हुए भी, महारानी बनने में बौद्ध संघ की सहायता ले रही थी।

सम्प्रति के विवाह की बात अभी जनता में घोषित नहीं की गई थी, परन्तु सम्प्रति के युवराज घोषित किए जाने का समाचार तो देशभर में फैलने लगा था।

इससे पूर्व राजकुमार कुणाल को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने के लिए भारी यत्न करना पड़ा था। उसने यह स्वीकार करने पर अपने चारों ओर ऐसे सहायक एकत्रित करने आरम्भ कर दिए थे, जो राज्य-कार्य में उसके सहायक बन सकें। इन सहायकों में एक महापंडित चक्रधर भी था।

इस समय ज्योति के विवाह और सम्प्रति के युवराज घोषित होने के समाचार कुणाल और चक्रधर को मिलने लगे। पहले तो कुणाल को विश्वास नहीं हुआ। उसका कारण यह था कि महाराज प्रियदर्शी ने पन्द्रह-बीस वर्षों से बौद्ध संघ के नेताओं की अवहेलना तो दूर, कभी ऐसा करने का विचार तक नहीं किया था। महापंडित चक्रधर के कहने पर राजकुमार कुणाल ने महाप्रभु सुनन्द से मिलने की इच्छा प्रकट की। सुनन्द ने ही राजकुमार कुणाल को राज्य का उत्तराधिकारी बनने की प्रेरणा दी थी।

महाप्रभु सुनंद को जब विश्वास हो गया कि ज्योति स्वयं महारानी बनने की उत्कट इच्छा रखती है, तो वह कुमार कुणाल से मिलने गया। उस समय चक्रधर भी वहाँ पर विद्यमान था। इस समय तक कुणाल स्वयं कई सन्देश भेज चुका था। इस कारण कुणाल ने महाप्रभु से पहले तो अपना रोष प्रकट किया कि जब उसकी इच्छा राज्य का उत्तराधिकारी बनने की नहीं थी, तब महाप्रभु दिन में कई बार उसके प्रासाद में चक्कर काटा करते थे, और अब जब वह तैयार हो गया है और उसकी पूर्ण तैयारी करवा चुका है तो महाप्रभु के दर्शन भी दुर्लभ हो गए हैं! इस उपालम्भ का उत्तर सुनन्द ने सरलता से दे दिया—

"राजकुमार! उस समय मैं राज्य के उत्तराधिकारी की खोज में था और इस अधिकार को प्राप्त करनेवाले सभी व्यक्तियों से प्रायः मिलता रहता था। जो राजकुमार पाटलिपुत्र से बाहर थे, उनसे भी पत्र-व्यवहार कर रहा था। सबकी इच्छा, योग्यता और अधिकार की परीक्षा करनी थी, इस कारण सबसे सम्पर्क रखता था। अब निश्चय हो गया है। इस कारण आपको अनावश्यक कष्ट देना उचित न समझ आना-जाना कम कर दिया है।"

"परन्तु आप तो निर्णयात्मक बात कर गए थे कि मैं उत्तराधिकारी बना दिया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। आपने कुमार जालौक, कुमार वीरसेन और सम्प्रति के विषय में बताया था कि वे अनधिकारी हैं, उनको राज्य का अधिकारी नहीं माना जा सकता। अब आपने सम्प्रति को निर्वाचित कर लिया प्रतीत होता है।"

"राजकुमार! वह मेरे अकेले की सम्मति थी। सम्प्रति अब पूर्ण मन्त्रिमण्डल द्वारा निर्वाचित हुआ है।"

"परन्तु प्रभु! चार मन्त्रियों में तीन तो आपके आधीन ही हैं। वे बौद्ध श्रावक हैं। संघ के नियन्त्रण के कारण वे आपकी सम्मति के विरुद्ध कोई सम्मति नहीं रख सकते।"

"यह आपका भ्रममात्र है, राजकुमार! फिर भी मैं मन्त्रिमण्डल के भीतर की बात नहीं बता सकता। केवल यह बता सकता हूँ कि आगामी शरत्पूर्णिमा को सम्प्रति को युवराज घोषित किया जाएगा। प्रजापरिषद् की एक बैठक में उसको तिलक किया जाएगा।"

"तो प्रभु! अब से बौद्ध संघ की ओर से क्या बौद्धमत-विरोधी का समर्थन हुआ करेगा?" चक्रधर ने क्रोध में कहा।

"यह बात संघ के नेताओं के विचार करने की है। उपासकों और श्रावकों के लिए तो संघ की शरण में ही रहना पर्याप्त है।"

जब सुनन्द अपना सन्देश सुनाकर चला गया तो चक्रधर ने कुमार कुणाल से कहा, "महाराज! यह तो आपका भारी अपमान हो गया है। पहले तो आपको इस उपाधि के लिए तैयार किया गया, आप मान गए तो आपको अयोग्य जानकर त्याग दिया गया।"

कुमार भी इस अपमानजनक व्यवहार से आत्मग्लानि अनुभव कर रहा था। फिर भी अपने सुशील स्वभाव के कारण अपने मन की बात कों भीतर-ही-भीतर छिपाकर बोला, "महापण्डित! मैं इस सांसारिक वैभव से विमुख हो चुका हूँ। मैं तो केवल धर्म और संघ की सेवा के लिए इस उत्तरदायित्व के पद को लेने के लिए तैयार हो गया था। अब यदि धर्म और संघ को मेरी सेवा की आवश्यकता नहीं तो मुझको रोष करने की अपेक्षा प्रसन्न होना चाहिए। मैं अब अपना शेष जीवन चिन्तन और निर्वाण-प्राप्ति की ओर लगा दूँगा।"

इससे चक्रधर को सन्तोष नहीं हुआ। उसको तो ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उसके सामने से क्षीर-भरा पात्र लाकर पीछे हटा लिया गया हो। इस कारण वह इस परिवर्तन का कारण जानने और उसको हटाने में संलग्न हो गया।

उसने अपनी स्त्री कोमलांगी को समझा-बुझाकर महारानी पद्मावती से मिलने के लिए प्रासाद में भेज दिया। कई दिनों के लगातार सम्पर्क के पश्चात् कोमलांगी एक समाचार लेकर आई कि इस सब में कारणीभूत एक लड़की ज्योति है। वह कलिंग देश की राजकुमारी कही जाती है और अत्यन्त सुन्दर है।

तब महापण्डित ने ज्योति का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए अपने पुत्र रुद्रदत्त को विशालापुरी भेज दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुद्रदत्त जब विशालापुरी से वापस आया तो उसने बताया कि ज्योति विशालापुरी की एक प्रसिद्ध वेश्या इन्दु की लड़की है। उसका विवाह वहाँ के एक जैन सेठ लक्ष्मीचन्द के साथ होने वाला था और वह लड़की सेठ जी का बहुत-सा धन लेकर वहाँ से भाग आई है। एक विश्वस्त सूत्र से यह भी पता चला है कि ज्योति सेठ जी की लड़की भी है। जिस धात्री ने इन्दु को यह लड़की जनाई थी, उसे बौद्ध विहार में बन्दी बना लिया गया है।

इस सूचना के मिलने पर कुणाल को पूर्ण परिस्थिति से परिचित कराया गया। कुणाल सरलचित्त और बौद्ध संघ पर निष्ठा रखनेवाला था, परन्तु बौद्ध संघ के इस षड्यन्त्र को देखकर उसका मन कुछ हिल गया। चक्रधर का कहना था कि अभी सुनन्द और उसके साथियों से लड़ने की आवश्यकता नहीं। हमको कुछ ऐसी योजना बनानी चाहिए कि यह लड़की यहाँ से भाग जाए।

चक्रधर की पत्नी कोमलांगी महारानी पद्मावती से मिलने गई तो उसको यह विदित हुआ था कि महारानी जी ने दंपा दासी को ज्योति पर देख-रेख के लिए नियुक्त कर रखा है। इस कारण उसने दंपा से मेल-जोल बढ़ाना आरम्भ कर दिया। वहाँ से उसको निरुपम के व्यवहार का ज्ञान हुआ। कोमलांगी ने वह सब समाचार, जो रुद्रदत्त विशालापुरी से लाया था, महारानी पद्मावती को बता दिया।

दंपा, जो ज्योति के अवगुणों, उसके चरित्र और व्यवहार से परिचित हो चुकी थी, अपन ज्ञान को महारानी तक पहुँचा चुकी थी। उसके चरित्र के विषय में संदेह की बात सुनकर भी महारानी, ज्योति को रानी घोषित किए जाने पर तब मानी, जब सम्प्रति ने उसको विवश कर दिया। महाराज ने महारानी को मनाने में पूरा यत्न किया था। महाराज का कहना था कि बौद्ध संघ की सहायता पाने के लिए थोड़ी शिथिल चरित्र की लड़की लेने में भी कोई हानि नहीं। यदि यह लड़की विवाहोपरान्त राज-परिवार की मान-प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाएगी, तो सम्प्रति किसी दूसरी लड़की से विवाह कर लेगा।

महारानी के मान जाने पर दंपा सन्तुष्ट नहीं थी। परन्तु एक दासी महारानी की सम्मति के सम्मुख कुछ कर नहीं सकती थी। जब यह बात लगभग निश्चित हो गई कि ज्योति सम्प्रति की भावी पत्नी होगी, तब दंपा ज्योति के पास पुरस्कार पाने के लिए पहुँची, "युवराज्ञी होने के उपलक्ष्य में दासी की सेवाओं का पुरस्कार मिलना चाहिए।"

"घोषणा होने के पश्चात् जो माँगोगी मिलेगा।"

"नहीं देवी ! मैं तो उससे पूर्व ही चाहती हूँ।"

"तो तुम मोल माँगती हो अपने···· ।"

"हाँ ! परन्तु अपने किसी कार्य के लिए नहीं, प्रत्युत आपके कुकर्मों को छिपाने के लिए।"

"मैंने क्या किया है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह मुझसे मत पूछिये देवी जी ! मैं तो शायद कुछ बढ़ा-चढ़ाकर बताऊँगी। आप अपने मन में अपने हेय आचरण का मूल्य स्वयं आँक सकती हैं।"

"वह मैंने आँक रखा है। मैं कल कुमार से कहकर तुमको एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा दिलवा दूँगी।"

"देवी जी ! नहीं।" दंपा ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "उनसे तो वैसे ही बहुत कुछ पाऊँगी। आपसे तो मैं उस धन का भाग चाहती हूँ, जो आपकी माँ ने विशालापुरी के धनी-मानी युवकों से प्राप्त किया है।"

"क्या वह मेरी माँ है ?"

"निस्सन्देह। आप सेठ लक्ष्मीचन्द की इन्दु वेश्या से उत्पन्न सन्तान हैं। जिस धाया ने आपकी माँ का प्रसव कराया था, वह अभी जीवित है।" दंपा ने जैसे कोमलांगी से सुना था, कह दिया।

"उस धाया को मेरे सम्मुख लाओ, मैं उसको भी पुरस्कृत करूँगी और तुमको भी।"

"वह इस समय विशालापुरी के एक विहार में बन्दी है। महाप्रभु इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकते।"

"तो महाप्रभु से ही अपना पुरस्कार लेना।"

"अर्थात् मुझको भी किसी विहार में श्राविका बनने के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं उनके पास नहीं जाऊँगी। आपकी इच्छा हो तो मेरा पुरस्कार दीजिए, अन्यथा मैं अपना कार्य करूँगी।"

इस सब झगड़े के पश्चात् भी ज्योति ने दंपा को एक सहस्र मुद्राएँ दिलवा दीं। साथ ही उसको प्रासाद के बाहर का काम सौंप दिया गया।

दंपा ने एक सहस्र स्वर्ण तो ले लिया, परन्तु उसको सन्तोष नहीं हुआ। साथ ही जब उसको बाहर का काम सौंप दिया गया, तो वह अपने-आपको अपमानित अनुभव करने लगी।

दंपा बहुत चतुर थी, परन्तु वह ज्योति को हानि पहुँचाने का एक ही साधन जानती थी। वह यह कि महारानी पद्मावती को तैयार करे। परन्तु महारानी भी, जो ज्योति का रहस्य जान चुकी थी, महाराज की सम्मति के पश्चात् स्वयं कुछ करने में अशक्त थी। अब कोमलांगी ने दंपा को एक और उपाय सुझाया। उसने कहा कि महामात्य विष्णुचरण को सब कथा सुनानी चाहिए। वे महाराजा को कहेंगे तो यह लड़की राजप्रासाद से निकाल दी जाएगी।

विष्णुचरण ने दंपा से प्राप्त सूचना को महाराज के पास पहुँचा दिया। वह स्वयं महाराज से कहने लगा, "श्रीमान् ! देवी ज्योति वास्तव में एक वेश्या की लड़की है। महाप्रभु सुनन्द ने जान-बूझकर अथवा अनजाने में यह असत्य बात फैलाई है कि वह कलिंग की राजकुमारी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या प्रमाण है आपके पास कि वह राजकुमारी नहीं है ?"

"जिस धात्री ने ज्योति की माँ का प्रसव कराया था, अभी वह जीवित है और विशालापुरी के विहार में बन्दी है।"

"तो उसको यहाँ बुलाया जाए !"

"महाराज की आज्ञा हो तो वह यहाँ आ सकती है।"

मन्त्रिमण्डल की बैठक में भी इस विषय की चर्चा हुई। मन्त्रिमण्डल में सुनन्द भी था। महाराज के आग्रह करने पर कि वह धात्री बुलाई जाए, सुनन्द ने कहा, "महाराज ! श्रावक-श्राविकाएँ स्वेच्छा से आएँ तो आ सकती हैं, हम उनको आज्ञा नहीं दे सकते।"

"मैं भारत-सम्राट् के नाते उसको आज्ञा करता हूँ कि वह शीघ्र मन्त्रिमण्डल के सम्मुख उपस्थित होकर साक्षी करे !"

"महाराज ! आप उसे आज्ञा नहीं दे सकते। श्रावक किसी भी देश के नागरिक नहीं हैं। वे तो पृथ्वीभर के निवासी हैं।"

"तो क्या हमारा राज्य पृथ्वी के अन्तर्गत नहीं ?"

"है, परन्तु पृथ्वी आपके राज्य के अन्तर्गत नहीं है।"

"जब श्रावक हमारे राज्य में रहते हैं और हमारे द्वारा दिए धन पर निर्वाह करते हैं, तब उनको हमारे नियमों और आज्ञाओं का पालन करना चाहिए। हमारे राज्य में प्रथम नियम है कि देश में रहनेवाले देश के राज्य की आज्ञा का पालन करेंगे।"

"वे आपके देश के रहनेवाले नहीं हैं। वे तो किसी भी देश के निवासी नहीं। पूर्ण संसार उनका निवास-स्थान है।"

इससे महाराज को आश्चर्य हुआ और साथ ही खेद भी। परन्तु यह बात उनकी समझ में आ गई कि इसमें अवश्य कुछ गड़बड़ है। सुनन्द को अपनी बात सिद्ध करने में राज्य की सहायता करनी चाहिए थी। इसके विपरीत वह सत्य की तह तक पहुँचने में बाधा उपस्थित कर रहा था।

सेठ लक्ष्मीचन्द के पुत्र माधव ने जब ज्योति द्वारा अपने पिता को ठगा जाता देखा तो उससे सब धन वापस लाने के लिए घर से निकल पड़ा। पिता ने जाने से मना किया परन्तु उसके ऐसा कहने पर कि वह ज्योति को वापस लाने जा रहा है, लक्ष्मीचन्द कुछ नहीं कह सका। उसको इन्दु की दासियों से यह विदित हो गया था कि ज्योति और निरुपम दोनों का विचार पाटलिपुत्र जाने का था।

माधव ने अपना रथ लिया और पाटलिपुत्र की ओर चल पड़ा। वहाँ वह नगर के एक पांथागार में ठहर निरुपम और ज्योति के विषय में पूछताछ करने लगा। कई दिन की खोज के पश्चात् एक दिन ज्योति उसको महाराज के रथ में बैठी दिखाई दी। रथ वेग से राजमार्ग पर जा रहा था। माधव उस [illegible] का पीछा नहीं कर सका। इससे उसको इस बात का तो पता चल ही गया कि ज्यो[illegible] प्रासाद में पहुँच चुकी है। इस कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह राजप्रासाद के द्वार के बाहर कुछ अन्तर पर धरना देकर बैठ गया। उसी सायंकाल ज्योति उसी रथ में कहीं से लौटी और उसका रथ भागता हुआ प्रासाद के भीतर चला गया, किसी ने उसको रोका नहीं।

माधव दिनभर वहाँ बैठे रहने से कुछ भी लाभ नहीं उठा सका। फिर भी उसका उत्साह भंग नहीं हुआ। उसने नित्य वहाँ जाकर द्वार पर बैठना प्रारम्भ कर दिया। सप्ताह में एक बार ज्योति प्रासाद में से निकलती थी। उसका रथ दिन को भागता हुआ चला जाता और सायं भागता हुआ लौटता। यह क्रम देखकर उसने यह जानने का यत्न आरम्भ किया कि वह जाती कहाँ है? यह जानना कठिन नहीं हुआ।

एक दिन वह द्रुतगामी घोड़ों वाला एक रथ भाड़े पर लेकर, कुछ अन्तर पर खड़ा हो गया। उस दिन उसने सारथी से कह दिया कि वह बिल्कुल तैयार रहे और उस रथ के प्रासाद से निकलते ही उसका पीछा करे। रथ को आँखों से ओझल न होने दे।

ऐसा ही किया गया। रथ सात कोस लम्बे राजमार्ग को पार कर एक विशाल अहाते के बाहर जाकर खड़ा हो गया। ज्योति रथ से उतरी और उस अहाते के भीतर चली गई। द्वार पर चार-पाँच पीत-वस्त्रधारी बौद्ध श्रावक बैठे थे। द्वार पर लिखा था "देवी बौद्ध विहार"।

माधव ने अपना रथ द्वार से कुछ अन्तर पर रोक लिया और ज्योति के बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। सायंकाल ज्योति विहार में से निकली तो माधव उसका मार्ग रोककर खड़ा हो गया। माधव ने हाथ जोड़ नमस्कार किया।

"देवी! माधव की वन्दना स्वीकार हो।"

"कौन हो और क्या चाहते हो?"

"मेरा नाम माधव है। मैं सेठ लक्ष्मीचन्द का पुत्र हूँ और उनसे जो भूषण तथा धन आदि आप ठगकर ले आई हैं, वापस लेने के लिए यहाँ आया हूँ।"

"मैं किसी सेठ लक्ष्मीचन्द को नहीं जानती। न ही मैं तुम्हें पहचानती हूँ।"

"इस बात का निर्णय तो न्यायालय करेगा।"

"तो जाओ न्यायालय में। मेरा मार्ग छोड़ो!"

"मार्ग नहीं छोड़ूँगा। वह इस कारण कि मेरे मार्ग छोड़ने पर तुम कहीं भागकर छुप न जाओ। मैंने कई मास की खोज के पश्चात् आज तुम्हें पाया है।"

"मैं तुम्हें नहीं पहचानती। यदि तुमने मेरे जाने में कोई बाधा डाली तो मैं तुमको दण्ड दिलवाऊँगी। तुमको यह विदित होना चाहिए कि मैं महाराज की अभ्यागता हूँ।"

"कुछ भी हो। महाराज के प्रासाद में चोरों की रक्षा नहीं हो सकती।" इतना कह उसने अपने रथ की ओर संकेत कर कहा, "उसमें बैठ जाओ और मेरे साथ न्यायालय में चलो।"

"और यदि मैं न जाऊँ तो?"

"मैं बलपूर्वक पकड़कर ले जाऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक स्त्री पर बल-प्रयोग करोगे ? भला करके तो देखो !"

माधव ने ज्योति की बाँह पकड़ ली और उसको अपने रथ की ओर घसीटने लगा। इस समय राज्य के रथ का सारथी उतर आया और ज्योति को छुड़ाने के लिए लपका। ज्योति ने चीखें मारनी आरम्भ कर दी थीं, जिनको सुनकर विहार से बहुत-से श्रावक बाहर निकल आए थे। उन्होंने माधव और ज्योति को घेर लिया। माधव के रथ का सारथी भी वहाँ आ गया और घमासान मच गया। ज्योति ने अपने उत्तरीय के भीतर से एक कटार निकाल ली और माधव पर वार करने लगी। माधव ने उसके हाथ से कटार छीनकर, ज्योति को डराने के लिए कटार उसके ऊपर उठाया। वह ज्योति से कह रहा था कि चुपचाप रथ में बैठ जाए नहीं तो उसे मार डालेगा। इसी समय उसका ऊपर उठा हुआ कटारवाला हाथ पकड़ने के लिए एक श्रावक आगे आया। वह कटार छीनने का यत्न करने लगा। छीना-झपटी में माधव का हाथ झटके के साथ पीछे की ओर गया। पीछे एक श्रावक खड़ा था और माधव के हाथ की कटार उसके गले में लगी, जिससे उस श्रावक के गले की नाड़ी कट गई। श्रावक भूमि पर गिरकर तड़फड़ाने लगा। उस समय एक-साथ कई श्रावक माधव को पकड़ने लगे। उस पर अधिकार पा लिया गया। उसके हाथ-पाँव बाँध नगर-रक्षक के गृह पर पहुँचा दिया गया। ज्योति वहाँ नहीं गई। वह अपने रथ में सवार होकर राजप्रासाद की ओर चली गई। नगर-रक्षक ने माधव और उसको पकड़कर लानेवाले के वक्तव्य लिये। माधव ने ज्योति का पूर्ण इतिहास लिखा दिया। जब उसने बताया कि वह राज्य के रथ पर सवार थी तो नगर-रक्षक ने उसे सचेत कर दिया—

"देखो युवक ! तुम राज-परिवार की एक महिला पर आरोप लगा रहे हो। इससे तुम्हारा अपराध कम होने की अपेक्षा बढ़ेगा ही।"

"मैं सब-कुछ जानता हूँ और महाराज की न्यायप्रियता पर भरोसा रखकर सत्य के प्रकाश के लिए यह सब-कुछ कर रहा हूँ। ज्योति विशालापुरी की एक वेश्या की पुत्री है। यह मेरे पिता को विवाह का वचन दे चुकी थी और इसी विवाह की आशा में पिताजी ने इसे कई लक्ष मूल्य के भूषण, वस्त्र, मकान तथा स्वर्ण-मुद्रा दिए थे। जिस सायंकाल विवाह होने वाला था, उसी प्रातःकाल वह विशालापुरी से भागकर यहाँ आ राजप्रासाद में कहीं छिप गई है। मैं उसको श्रीमान् के समक्ष लाना चाहता था, परन्तु इन श्रावकों ने मुझको मार डालने का यत्न किया। ज्योति ने अपने उत्तरीय में से कटार निकाली, जो मैंने छीन ली। इस पर कुछ श्रावक मुझसे कटार छीनने के लिए मेरी ओर लपके। इसी छीना-झपटी में वह कटार श्रावक के गले पर लग गई। ये लोग कहते हैं कि वह मर गया है।"

इस लिखा-पढ़ी के पश्चात् माधव को बन्दी-गृह में डाल दिया गया और उस पर अगले दिन एक श्रावक को मारने का आरोप लगाकर न्यायाधीश के सन्मुख उपस्थित कर दिया गया। न्यायाधीश ने जब माधव का वक्तव्य पढ़ा तो चकित रह गया। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार कर उसने आज्ञा दी, "ज्योति को उपस्थित किया जाए!"

नगर-रक्षक ने न्यायाधीश के कान में कुछ कहा। उसे सुनकर न्यायाधीश ने कहा, "माधव के अभियोग का निर्णय राज्य-सभा में होगा। मैं इसको ऐसे ही वहाँ भेजता हूँ।"

विशालापुरी में सेठ लक्ष्मीचन्द को जब इस काण्ड की सूचना मिली तो उसने तुरन्त वज्रबाहु को इस विषय में माधव की सहायता के लिए भेज दिया।

वज्रबाहु अपने सेवक चक्रिक और भामिनी के साथ पाटलिपुत्र पहुँचा। नियमानुकूल उसको अपना नाम-धाम नगर के द्वार पर लिखाना था। वज्रबाहु ने अपना परिचय पुस्तकाध्यक्ष, त्रिशरण पुस्तकालय, विशालापुरी दिया। उसने यह भी लिखवा दिया कि वह अपने स्वामी सेठ लक्ष्मीचन्द के कार्य से पाटलिपुत्र आया है। भामिनी को उसने अपनी पुत्री और चक्रिक को अपना सेवक लिखवाया।

द्वार से छुट्टी पाकर वह नगर के प्रसिद्ध पांथागार में जा ठहरा। पांथागार महाराज की एक दासी मुद्रा के नाम पर बना था। वहाँ इनको दो स्वच्छ और विशाल आगार मिल गए। स्थान पाते ही उन्होंने अपने कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया।

वज्रबाहु अगले दिन न्यायालय में जा पहुँचा और माधव के विषय में पूछताछ करने लगा। चक्रिक और भामिनी दिनभर नगर में घूमते रहे और सायंकाल नगर के उसी पांथागार में लौट आए। भामिनी के इस घूमने का उद्देश्य निरुपम का पता लगाना था। वह अपने मन की बात किसी से कहती नहीं थी। फिर भी चक्रिक उसके मन के भावों का अनुमान लगा रहा था। भामिनी चलते-फिरते प्रत्येक श्रावक को ध्यान से देखकर पहचानने की चेष्टा करती रहती थी। इस कारण भी उसका व्यवहार उसके मन के भावों को स्पष्ट करता था।

एक दिन भामिनी एक बहुत सुन्दर आभूषणों की दूकान में अपने लिए कर्णफूल खरीदने के लिए खड़ी थी कि दुकान के बाहर एक पालकी लाकर खड़ी कर दी गई। उस पालकी को आठ कहार उठाए हुए थे और चार सुभट उसकी रक्षा के लिए साथ थे। पालकी में से एक वृद्धा उतरी और दुकान में आ गई। दुकानदार, जो भामिनी को कर्णफूल दिखा रहा था, इस वृद्धा को देख आगे बढ़कर नमस्कार कर, उससे बातचीत करने लगा। उस स्त्री ने दुकानदार को कहा, "पहले उस लड़की को दे दो!"

"वह तो केवल देख रही है। उसे शायद लेना कुछ नहीं है।"

यह सुन भामिनी ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "तुमने दिखाया ही क्या है?"

भामिनी की मुद्रा से विस्मित हो वह वृद्धा भामिनी के पास आकर बोली, "क्या लेने आई हो बेटी?"

"मुझको एक जोड़ी कर्णफूल चाहिए।"

उस स्त्री ने आज्ञा के भाव में कहा, "पहले इसको दिखाओ!"

दुकानदार ने क्रोध में लड़की की ओर देखा और एक सन्दूकची में से एक जोड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णफूल, जिसमें स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे हीरे जड़े हुए थे, निकालकर भामिनी के सामने रख दिया। महारानी ने कर्णफूल देखे और मुस्कराकर लड़की के मुख पर देखने लगी। भामिनी का मुख कर्णफूलों को देखकर लाल हो गया। वह समझ गई कि दुकानदार जान-बूझकर उसको कीमती वस्तुएँ दिखाकर भगा देना चाहता है। वह सिद्ध करना चाहता है कि मैं केवल देखने आई हूँ और लेना कुछ नहीं चाहती।

"यह नहीं चाहिए, कुछ कम मूल्य के निकालो।"

दुकानदार हँसने ही वाला था कि उस वृद्धा ने ताड़ना की दृष्टि से उसे देखा और चुप करा दिया। उसने भामिनी से कहा, "यह भी अच्छे हैं।"

"मैं समझती हूँ कि मेरे पिता इनका दाम नहीं चुका सकते। ये बहुत मूल्यवान प्रतीत होते हैं।"

"मैं तो इनको अधिक मूल्य के नहीं समझती। यह स्फटिकमणि मात्र ही तो है! जरा पहनकर दिखाओ तो!"

दुकानदार कुछ कहना ही चाहता था कि उस स्त्री ने संकेत कर चुप करा दिया। पश्चात् भामिनी से बोली, "तनिक पहनो तो देखूँ तुम्हारे मुख पर कैसे लगते हैं!"

भामिनी नहीं मानी। तब वृद्धा ने स्वयं वे कर्णफूल भामिनी के कानों में टाँक दिए—"बहुत सुन्दर लगते हैं, तुम ले लो।"

"क्या दाम है इनका?"

"एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा।" दुकानदार ने कहा।

भामिनी ने कर्णफूल उतारने आरम्भ कर दिए, परन्तु उस स्त्री ने हाथ पकड़ लिया और पूछा, "क्यों?"

"मैंने तो पहले ही निवेदन किया था कि यह दुकानदार हँसी कर रहा है। शायद यह मुझको मगध की महारानी समझता है।"

यह सुन वह स्त्री मुस्कराई और दुकानदार हँस पड़ा। उस स्त्री ने दुकानदार को डाँट दिया और भामिनी से बोली, "मैंने तुम्हें महारानी तो नहीं, हाँ राजकुमारी अवश्य समझा था। कौन हो तुम?"

"मैं एक ब्राह्मण-कन्या हूँ।"

"ब्राह्मण-कन्या?" वृद्धा ने इस पर भामिनी की आँखों में देखा और कहा, "कोई चिन्ता नहीं बेटी! तुम्हारे कमल-समान मुख पर ये बहुत अच्छे लगते हैं। अच्छा ले जाओ, ये अब तुम्हारे हैं।"

"ब्राह्मण होने पर भी हम भिक्षा नहीं लेते, माँ!" यह कहते हुए वह कर्णफूलों को उतारने लगी।

वृद्धा ने पुनः उसका हाथ पकड़कर कहा, "ये मैं तुमको भिक्षा में नहीं दे रही। ये तो तुम्हारे सौंदर्य का पुरस्कार है। देखो, मैं महारानी पद्मावती हूँ। मैं मगध साम्राज्य की पटरानी हूँ। तुमको यह भेंट अस्वीकार नहीं करनी चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भामिनी इस वृद्धा का परिचय जानकर अवाक् खड़ी रह गई। जब उसको उक्त कथन का विश्वास हो गया तो उसने करबद्ध प्रणाम किया। महारानी ने कहा, "देखो बेटी, यह लो मेरी अँगूठी! मुझसे मिलना चाहो तो राजप्रासाद में चली आना। इसके दिखाने से प्रतिहार तुमको मेरे पास ले आएगा।"

भामिनी अन्यमनस्कता से उसका मुँह देखती रही और महारानी अपना कार्य सम्पादित करके चली गई।

वज्रबाहु को पता चल गया कि माधव पर एक श्रावक की हत्या का अभियोग है, परन्तु जिस कटार से हत्या हुई, वह ज्योति की कही जाती है और ज्योति आजकल राजप्रासाद में रहती है। इस कारण माधव को राज्य-परिषद् के सम्मुख भेज दिया गया है। न्यायाधीश ने इसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा। दिन-पर-दिन बीत रहे थे और राज्य-परिषद् के सामने इसके विचार करने की बारी ही नहीं आती थी।

इसी बीच भामिनी की महारानी पद्मावती से भेंट हो गई। इस भेंट के अवसर पर महारानी के मन पर भामिनी के सौंदर्य का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। भामिनी एक दिन महारानी के दर्शन करने प्रासाद में जा पहुँची। अँगूठी दिखाते ही द्वार पर खड़ा प्रतिहार उसको लेकर महारानी के निवास-गृह में जा पहुँचा। वहाँ उसे एक दासी को सौंप वह लौट आया। महारानी उस समय अपनी बैठक में बैठी मिलने के लिए आई हुई स्त्रियों से भेंट कर रही थीं। भामिनी को भी वहाँ पहुँचा दिया गया। वहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ एकत्रित थीं और बारी-बारी से महारानी के समक्ष उपस्थित होकर अपना-अपना निवेदन कर रही थीं। भामिनी सबसे पीछे जा खड़ी हुई। आगन्तुकाओं में जो मिल लेती थीं, वे चली जाती थीं। दो घड़ी तक प्रतीक्षा करने पर भीड़ कुछ कम हुई तो महारानी की दृष्टि भामिनी पर पड़ी। ज्योंही महारानी ने उसे पहचाना तो उँगली से संकेत कर अपने समीप बुला लिया। भामिनी ने शीश झुकाकर प्रणाम किया। महारानी ने उसे अपने समीप बैठाकर आशीर्वाद दिया और कहा, "तो तुम आ गई हो! बहुत अच्छा किया है। क्या नाम है तुम्हारा?"

"भामिनी।"

"बहुत सुन्दर नाम है। कहाँ रहती हो?"

"नगर के पांथागार में ठहरे हैं।"

"तो तुम लोग यहाँ के रहनेवाले नहीं हो?"

"जी नहीं, हम विशालापुरी से यहाँ आए हैं। पिताजी तो किसी कार्यवश आए हैं और मैं केवल भ्रमण के लिए।"

"तुम्हारी माताजी भी साथ हैं क्या?"

"मेरी माँ नहीं हैं। सुना है कि जब मैं एक दिन की ही थी, तभी उनका देहान्त हो गया था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी ने सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। पश्चात् "तुम बैठो" कहकर वे अन्य आगन्तुक स्त्रियों को विदा करने में लग गईं। जब सब विदा हो गईं तो भामिनी को साथ लेकर महारानी भोजन के लिए गईं। भोजनोपरांत वे उसको प्रासाद दिखाने लगीं। इस प्रकार एक प्रहरभर उसको अपने पास रखकर महारानी ने कहा, "जब तक तुम्हारे पिता इस नगर में हैं, कभी-कभी यहाँ अवश्य आया करना। यदि कोई कठिनाई हो तो वह भी बताना।"

भामिनी के मन में विचार आया कि वह सेठ माधव के विषय में कहे, परन्तु बिना पिता की आज्ञा के उसे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

पांथागार में पहुँचकर उसने पिता से महारानी से परिचय के विषय में बता दिया। वज्रबाहु ने बताया कि वह महामात्य विष्णुचरण से मिला था। उससे ज्ञात हुआ कि महारानी जी ज्योति की सहायता कर रही हैं। महामात्य का यह भी कहना है कि महारानी की ज्योति का सम्प्रति से विवाह करने की इच्छा है, इसलिए वे कोई भी बात, जो ज्योति के विरुद्ध कही जाएगी, स्वीकार नहीं करेंगी। महाराज श्रावकों के हाथ में कठपुतली की भाँति नाच रहे हैं। अतएव जब तक अभियोग की जाँच पूर्ण नहीं हो जाती तब तक न तो महाराज और न ही महारानी जी को कुछ कहना चाहिए, अन्यथा कहीं वे इस जाँच को ही बन्द न कर दें। महामात्य गुप्त रूप से जाँच कर रहे हैं।

इसके पश्चात् भामिनी सप्ताह में एक-दो बार महारानी जी से मिलने जाती रही। किन्तु उसने माधव के विषय में कोई बात नहीं की। उसका प्रासाद में जाने का एक और भी प्रयोजन था—वह निरुपम के विषय में पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करना चाहती थी। भामिनी यह भी नहीं पता लगने देना चाहती थी कि वह ज्योति को जानती है। इस कारण वह उसको मिलने भी नहीं गई तथा ज्योति के महारानी के पास आते समय वह वहाँ पर नहीं होती थी।

फिर भी उसकी एक दिन निरुपम से भेंट हो ही गई। महारानी जी से मिलकर भामिनी लौट रही थी और निरुपम ज्योति को शिक्षा देकर वापस आ रहा था। दोनों की भेंट प्रासाद के मुख्य द्वार के भीतर ही हो गई। भामिनी उसको पहचानकर बोली, "प्रभु! आप यहाँ?"

निरुपम भामिनी को अपनी ओर देखते हुए पा विस्मय में खड़ा रह गया। जब उसने भामिनी को पहचाना तो वह समझ गया कि वह वज्रबाहु के साथ आई होगी। वज्रबाहु के आगमन के विषय में वह जानता था। पहचानने पर समीप आ उसने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया, "बुद्धं शरणं गच्छामि····" और कहा, "भामिनी देवी! कहाँ ठहरी हैं आप?"

"मैं पिता जी के साथ नगर के पांथागार में ठहरी हूँ।" वह कुछ और भी कहना चाहती थी परन्तु ज्योति के विषय में स्मरण कर चुप रह गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुपम ने प्रासाद के द्वार पर खड़े-खड़े बात करना उचित न समझकर कहा, "देवी ! यदि आप पांथागार में लौट रही हैं तो मैं भी भिक्षा लेने वहाँ चलूँ ?"

"राजप्रासाद से भिक्षा पानेवाले तथा ज्योति की कृपा के पात्रों को हम क्या भिक्षा दे सकेंगे ? फिर भी आइए, जो कुछ बन पड़ेगा दूँगी।"

दोनों पांथागार की ओर चल पड़े। मार्ग में दोनों में कोई बात नहीं हुई। भामिनी अपने मन में उठ रहे उद्‌गारों को भाषा का रूप दे रही थी और निरुपम राज्य-मार्ग पर चलते-चलते एक स्त्री से वार्तालाप करना उचित नहीं समझता था।

पांथागार में पहुँच भामिनी ने उसे आसन देकर बैठाया। चक्रिक आज वज्रबाहु के साथ गया हुआ था, इस कारण दोनों अकेले थे। भामिनी ने पूछा, "भोजन करिएगा भगवन् ?"

"नहीं देवी ! अभी-अभी राजप्रासाद में दुग्धपान करके आया हूँ।"

"आपने कहा था कि ज्योति को पाटलिपुत्र पहुँचाकर लौट आएँगे, परन्तु अब तो पाँच मास से ऊपर हो गए हैं और आप यहीं डटे हैं ? प्रतीत होता है श्रावक महोदय किसी मोहजाल में फँस गए हैं।"

"देवी ! मोह तो बहुतों से हो रहा है। हाँ, पाटलिपुत्र में ठहने का कारण यह है कि जिस कार्य से आया था, वह अभी सम्पन्न नहीं हुआ।"

"आप तो केवल ज्योति को पहुँचाने आए थे न ? क्या वह मार्ग में ही रह गई है ?"

"नहीं, यह बात नहीं। वह यहाँ पहुँच गई है। राजप्रासाद में रहने भी लगी है, परन्तु कुमार सम्प्रति से अभी उसका विवाह नहीं हुआ।"

"तो क्या आप उस विवाह में पुरोहित का कार्य करनेवाले हैं ? देखिए भगवन् !" भामिनी ने निरुपम की आँखों में देखते हुए कहा, "मैं आपसे प्रेम करने लगी थी और आपसे विवाह करने की मेरी उत्कट इच्छा थी, परन्तु जो कुछ मैं आपके मुख पर देखती हूँ, उससे मुझको अपनी भूल का ज्ञान हो गया है।"

भामिनी के मुँह से ये शब्द सुन निरुपम का मुँह लज्जा से लाल हो गया और उसकी आँखें नीची हो गईं। भामिनी ने अपना कथन जारी रखा, "आपकी आँखों में जो निर्मलता थी और मुख पर जो ओज था, वह सब ढूँढने से भी नहीं मिलता। मुझको बहुत शोक है अपनी गलत सूझ पर ?"

निरुपम के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। उसे चुपचाप आँखें नीची किए बैठा देख भामिनी ने अपने आँचल से दो टके निकाल श्रावक से पूछा, "भगवन्, कहाँ है आपका कमण्डलु ? भिक्षा किसमें डालूँ ?"

इससे तो निरुपम का मुख राख की भाँति फीका पड़ गया। भामिनी के इस कथन का अर्थ यह था कि वह अब जा सकता है। वह उठ खड़ा हुआ। उसने एक बार भामिनी के भिक्षा के लिए फैलाए हाथ की ओर, फिर उसने मुख की ओर देखा। भामिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मुख पर घृणा का भाव देख उसकी आँखें झुक गईं। उसने मलिन मुख से कहा, "देवी ! क्षमा नहीं कर सकतीं क्या ?"

"क्षमा स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है भगवन् ! परन्तु क्षमा का पात्र भी तो दिखाई दे !"

"कैसे पता चले कि कोई पात्र है अथवा कुपात्र ?"

"सच्चे हृदय से किया हुआ प्रायश्चित्त ही इसका लक्षण है।"

निरुपम बिना भिक्षा किए लौट गया। वह मन में विचार कर रहा था कि वास्तव में ही वह पतित हो गया है। वह इस देवी के पवित्र कर-कमलों को स्पर्श करने का अधिकार नहीं रखता, न ही वह उसकी दी हुई भिक्षा ग्रहण करने का अधिकारी रहा है।

भामिनी को निरुपम की आँखों में वासना में लिप्त होने की मलिनता दिखाई दी थी। वह विचार करती थी कि कितनी भूल करने जा रही थी वह ! इस विषय-लोलुप तथा धन एवं मान-प्रतिष्ठा के लोभी से किसी श्रेष्ठ कार्य की आशा, बबूल से आम की इच्छा के समान ही थी।

वह अति क्षुब्ध मन बैठी थी कि सायंकाल हो गया। वज्रबाहु और चक्रिक आ गए। आते ही उन्होंने समाचार दिया कि ज्योति प्रासाद में कलिंग के अन्तिम गणपति की कन्या बनकर ठहरी हुई है। आज उसके इस असत्य-भाषण का भेद खुल गया है। इस बात के पक्के प्रमाण मिल गए हैं कि वह एक वेश्या की लड़की है। इन प्रमाणों के मिल जाने से माधव के विषय की जाँच शीघ्र ही हो जाएगी।

वज्रबाहु से प्रारम्भिक जाँच के पश्चात् राज्य-परिषद् में माधव का अभियोग चल पड़ा। राज्य-परिषद् में महाराज स्वयं अपने मन्त्रिमण्डल के साथ माधव का वक्तव्य सुनने लगे। यह वक्तव्य विस्तृत था और अपने कथन के प्रमाण में वह वज्रबाहु को उपस्थित करता रहा। साथ ही वज्रबाहु ने ज्योति को राज्य-परिषद् में उपस्थित किए जाने की माँग भी कर दी। विष्णुचरण ने वज्रबाहु की माँग का समर्थन किया।

सुनन्द का कहना था कि जो लड़की राज-परिवार का अंग बनने वाली है, वह किसी अभियोग में नहीं घसीटी जा सकती।

विष्णुचरण का कहना था कि यह अभियोग न्यायाधीश के सम्मुख गया था, परन्तु न्यायाधीश ने यह समझकर कि ज्योति साधारण न्यायालय में जाना पसन्द नहीं करेगी, अभियोग को राज्य-परिषद् के आधीन कर दिया। इसका अर्थ ही यह था कि ज्योति का इस अभियोग में आकर अपना वक्तव्य देना परमावश्यक है, अन्यथा अन्याय हो जाने का भय है। वह बात भी ठीक ही थी। हत्या जिस कटार से हुई है, वह ज्योति की कही जाती है। साथ ही अपराधी का कहना है कि वह ज्योति को न्यायालय में ले-जाना चाहता था, और मृत श्रावक उस कार्य में बाधक हुआ था। प्रश्न यह है कि यदि ज्योति अपराधी के पिता का अतुल धन लेकर भागी है तो उसको न्यायालय में ले-जाया जाना उचित था और ज्योति का अस्वीकार करना अथवा उसके ले-जाए जाने में बाधा उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना क्या अपराध था? फिर श्रावक की हत्या ज्योति की कटार से हुई है। यह अपराधी के हाथ में कैसे आ गई? इन बातों का निर्णय ज्योति के बिना नहीं हो सकता। न्यायाधीश ने यह अभियोग राज्य-परिषद् में भेजकर ठीक ही किया है। इस प्रकार ही अभियुक्त के अपराध की जाँच हो सकती थी।

सुनन्द का कहना था कि अभियुक्त बिना सिद्ध किए ही कि ज्योति अपराधिनी है, उसको न्यायालय में ले-जाना चाहता था। यह क्षम्य नहीं हो सकता।

यह ठीक है, परन्तु जब माधव न्यायालय में जाता तो ज्योति कहीं भी भागकर छिप सकती थी। ऐसी अवस्था में अभियोग असफल हो जाता। उचित तो यह था कि किसी भी न्यायकर्ता के सम्मुख सबको चला जाना चाहिए था और वहाँ सब स्पष्ट हो जाता। ज्योति ने जाने से इन्कार किया। विहार के श्रावकों ने उसको छूटकर भाग जाने में सहायता देनी चाही, इसी झगड़े में हत्या हुई। अन्त में प्रश्न यही उठता है कि क्या सत्य ही ज्योति अपराधिनी है? शेष बात तो इस अपराध के बीज से उत्पन्न हुई है।

बौद्ध मत वाले इस पर जोर दे रहे थे कि इस हत्या का ज्योति से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। महाराज ने कहा, "मैं समझता हूँ कि ज्योति से राज्य-परिषद् के बाहर महामात्य तथा सुनन्द पूछताछ कर सकते हैं।"

"इस बात के लिए कुछ दिन का अवसर मिलना चाहिए।"

राज्य-परिषद् ने महाराज की यह सम्मति मान ली और विचार स्थगित कर दिया।

ज्योति को जब पता चला कि उसके विषय में पूछताछ आरम्भ होने लग गई है तो उसने सम्प्रति को अपने आगार में बुलवाया और उसको अपने समीप बैठाकर कहा, "आर्य! क्या अब मुझको मन्त्रियों के समक्ष अपराधी के रूप में उपस्थित होना होगा?"

"नहीं प्रिये! तुम तो साक्षी के रूप में ही जाओगी। वहाँ तुम्हें उस पूर्ण घटना का विवरण देना होगा जो माधव के कारण हुई थी।"

"मुझको मन्त्रियों के समक्ष जाने में भय लगता है।"

"क्यों? तो तुम महारानी बनकर अपना कार्य कैसे करोगी? देखो रानी! मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा और यदि कोई ऐसी बात हुई जिससे तुम्हें किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना हुई तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।"

इससे ज्योति को कुछ सान्त्वना मिली। फिर भी उसका हृदय धक-धक कर रहा था।

बृहस्पतिवार को जब वह विहार की उपासना में सम्मिलित होने गई तो उसको बहुत-कुछ समझा दिया गया। उसको अपने जन्म के विषय में बहुत-सी बातें बताई गईं और उसको यह भी कहा गया कि वह बताए कि इन्दु उससे प्यार नहीं करती, इसी कारण उसको छोड़कर चली आई थी।

"क्या ये सब झूठी बातें मुझको कहनी होंगी? मेरी माँ तो मुझसे बहुत ही प्यार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती थी।"

"तुम भारत की साम्राज्ञी बनना चाहती हो। उसके लिए कुछ तो त्याग करना ही पड़ेगा। जब पटरानी बन जाओगी तो फिर माँ के प्यार का बदला चुका देना।"

"मेरे लिए तो ऐसा विचार करना ठीक भी हो सकता है, परन्तु आपके लिए तो इस प्रकार के व्यवहार का समर्थन अच्छा नहीं प्रतीत होता।"

"हमारी चिन्ता मत करो, ज्योति! संघ की प्रतिष्ठा के लिए हम इस असत्य भाषण का समर्थन कर लेंगे। हम यह भलीभाँति जानते हैं कि इस किंचित् अनृत-भाषण से सैकड़ों और सहस्रों के लिए निर्वाण का मार्ग खुल जाएगा।"

ज्योति इस समस्या को इस दृष्टि से नहीं देखती थी। वह दंपा के मुख से अपनी धात्री की कथा सुन चुकी थी और उसको ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके जन्म के विषय में बोला गया झूठ नहीं चल सकेगा। इस कारण उसको पटरानी बनना तो दूर रहा, प्रासाद में रहना भी कठिन प्रतीत होने लगा था।

अतएव जब वह विष्णुचरण और महाराज के सामने उपस्थित की गई तो उसने अपनी आकांक्षा-पूर्ति के लिए स्पष्टवादिता का मार्ग ग्रहण किया। वह अपने सौन्दर्य के बल पर अपनी इच्छापूर्ति का यत्न करने लगी।

महाराज ने उससे कहा, "बेटी! माधव ने तुमको कहा था कि तुम न्यायाधीश के समक्ष चलो, तो तुमने अस्वीकार क्यों किया?"

"मैं समझती थी कि ऐसा करने से मेरा और कुमार का अथवा आपका अपमान होगा।"

"तुम न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर कह सकती थीं कि तुम राजप्रासाद में ठहरी हुई हो और तुम्हारे विषय में महाराज ही विचार कर सकते हैं।"

"मैंने यह आवश्यक नहीं समझा। उस समय मुझको यह बात सूझी भी नहीं। मैं इसके लिए क्षमा चाहती हूँ।"

विष्णुचरण ने पूछा, "तो देवी! आपके द्वारा उचित व्यवहार के न किए जाने पर जो घटना घटी है उसका दोष अभियुक्त पर नहीं है न?"

"नहीं महामात्य!"

इससे प्रसन्न होकर महाराज ने कहा, "तुम बहुत अच्छी लड़की हो। यदि हम तुम्हारी सम्मति मान लें तो हमको इस अभियुक्त को हत्या के अपराध से मुक्त कर देना चाहिए।"

सुनन्द ने कहा, "महाराज! हत्या तो हत्या ही है। इसका सम्बन्ध किसी पूर्व-घटना के साथ जोड़ना उचित नहीं। यदि ज्योति अपरिचित के साथ न्यायाधीश के पास जाने को तैयार नहीं हुई तो इसका अर्थ यह तो नहीं कि माधव किसी श्रावक की हत्या कर दे।"

विष्णुचरण ने निवेदन कर दिया, "महाराज! हत्या तो अनजाने में हुई है। वह कटार ज्योति की थी, जो अभियुक्त के हाथ में चली गई। कैसे गई? इस पर प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालना आवश्यक है और ज्योति के अतिरिक्त अन्य कोई इस विषय पर प्रकाश नहीं डाल सकता।"

महाराज ने पुनः ज्योति से पूछा, "देखो बेटी! इस कटार को निकालकर तुमने माधव पर वार करने का यत्न किया था न?"

"हाँ महाराज! वह मुझको घसीटकर ले-जाना चाहता था। मैं उसके साथ जाना नहीं चाहती थी। अपने को बचाने के लिए मैंने कटार निकाली। उसने वह कटार मेरे हाथ से छीन ली। इसी समय मृत श्रावक ने उसको पकड़ना चाहा। इसी छीना-झपटी में कटार उसके गले में लग गई और वह तुरन्त मर गया।"

"तो वह केवल आकस्मिक घटनामात्र थी?"

"जी।"

"तो हम माधव को मुक्त कर सकते हैं।"

इसी निर्णय के पश्चात् आज्ञा जारी कर दी गई और नगर-संरक्षकों ने माधव को मुक्त कर दिया, तथा उसको वहाँ से जाने की आज्ञा दे दी। परन्तु माधव गया नहीं। वह महाराज के सम्मुख उपस्थित हुआ और उसने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज! इस स्त्री के विरुद्ध मेरे अभियोग का क्या हुआ? यह स्त्री दस सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ तथा लगभग एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राओं के मूल्य के आभूषण लेकर वहाँ से भागी है। इसके विवाह की तैयारी में मेरे पिता ने इसकी माँ से एक मकान दस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा में मोल लिया था और विवाह की तैयारी में लगभग दस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा व्यय कर दिया है। विवाह के दिन प्रातःकाल यह एक श्रावक युवक के साथ भाग आई थी।"

"क्यों ज्योति, इसके कथन में कितनी सचाई है?"

"यह प्रायः सत्य ही है। केवल यह बात असत्य है कि वह सब धन, जो इसके वृद्ध पिता ने विवाह की तैयारी के लिए मुझे दिया था, अथवा आभूषण, जो विवाह के अवसर के लिए मुझे दिए गए थे, मेरे पास हैं। इनके पिता में तथा मेरी माता में यह निश्चय हुआ था कि मेरा विवाह उनसे होगा। लेन-देन की बात भी उन दोनों में ही हुई होगी। विवाह के एक दिन पूर्व मुझे यह बताया गया था कि सेठ महोदय मेरे पिता हैं। यह बात मुझको मेरी माँ ने बताई थी और उसी समय मेरे मन में सेठ जी के प्रति घृणा हो गई तथा समय पाकर मैं एक श्रावक की सहायता से यहाँ भाग आई।"

"तो तुम कलिंग देश के अन्तिम गणपति श्री केशव की पुत्री नहीं हो?"

"महाराज! यहाँ आकर मुझको महाप्रभु सुनन्द ने यह बताया था कि मैं इन्दु की पुत्री नहीं हूँ, प्रत्युत श्री केशव की पुत्री हूँ। मैं इस विषय में कुछ नहीं जानती। मुझको जहाँ तक स्मरण है मैं इन्दु के घर में ही पली हूँ।"

महामात्य विष्णुचरण ने कहा, "महाराज! इस विषय की जानकारी रखनेवाले कुछ अन्य महानुभाव भी हैं, उनकी साक्षी भी लेनी आवश्यक है।"

"वे कौन हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक कलिंग देश के राजप्रासाद में स्थित शिव मन्दिर का पुजारी है। वह भी इस विषय में एक कथा बताता है।"

"उसको उपस्थित किया जाय।"

महाराज की आज्ञानुसार वज्रबाहु, रुद्रदत्त तथा दंपा को बुलाया गया और उनसे पूछताछ करने पर ज्योति के कलिंग की राजकुमारी होने की बात असत्य सिद्ध हो गई। वज्रबाहु ने भामिनी के विषय में कुछ नहीं बताया, क्योंकि वह इसके लिए कोई प्रमाण नहीं दे सकता था।

इस पूर्ण जाँच के समय ज्योति और सम्प्रति दोनों ही उपस्थित थे। सभी को ज्योति का वेश्या की कन्या होने का विश्वास हो गया।

ज्योति और सम्प्रति गम्भीर विचारों में निमग्न अपने निवास-स्थान पर आए। वहाँ सम्प्रति बोला, "यदि तुम वेश्या की पुत्री हो, तो महारानी जी मेरा तुम्हारे साथ विवाह कदापि स्वीकार नहीं करेंगी।"

"पर बौद्ध विचारधारा तो जात-पात अथवा जन्म का विचार नहीं करती। मानवता के नाते प्रत्येक मनुष्य को ऊपर उठने का अवसर दिया जाता है।"

"ठीक है, परन्तु न तो महारानी जी बौद्ध हैं, न मैं बौद्ध हूँ और न ही तुम हो।"

"परन्तु महाराज तो हैं!"

"नाममात्र के।"

"तो वे भी विवाह-जैसी बातों में जन्म को महत्त्व देते हैं? और आप भी क्या राजकुमारी से ही विवाह करना चाहते थे?"

"नहीं देवी! मैं तो तुमसे विवाह करना चाहता हूँ, परन्तु यदि मैंने किसी वेश्या की कन्या से विवाह किया तो मैं युवराज नहीं बनाया जा सकता। जनता इसका विरोध करेगी।"

"क्या बौद्ध संघ जनता के विचारों को निरस्त नहीं कर सकेगा?"

"बौद्ध संघ यदि ऐसी बात करेगा तो बौद्ध उपासक ही इसका विरोध करेंगे।"

"मैं ऐसा नहीं समझती। मेरा विचार है कि महाराज का अन्न खानेवाले श्रावक राज-परिवार का विरोध नहीं करेंगे।"

"यही तो बात है! राज-परिवार मेरे विवाह से सहमत नहीं होगा।"

"तो आप क्या सम्मति देते हैं?"

"केवल दो मार्ग हैं। या तो तुम मेरी अविवाहित पत्नी बनना स्वीकार करो, अन्यथा मेरे साथ काश्मीर चली चलो। वहाँ तुमसे विवाह करके मैं एक साधारण नागरिक बनकर रहूँगा।"

ज्योति इस सुझाव से गम्भीर विचार में पड़ गई। बहुत विचारोपरान्त उसने केवल इतना कहा, "मुझे विचार करने दीजिए। मैं अपना निर्णय एक-दो दिन पश्चात् आपको बताऊँगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रति तो ज्योति के आकर्षण में इतना अधीर हो रहा था कि वह उसे प्राप्त करने के लिए राज्य तक की लालसा छोड़ने को तैयार हो गया था। परन्तु ज्योति के मन में भारत की पटरानी बनने की अभिलाषा उत्कट थी। इस कारण वह अपने भविष्य का बलिदान नहीं कर सकती थी।

अगले दिन निरुपम उससे मिलने आया तो उसने एक नवीन योजना उसके सम्मुख रख दी। यह योजना श्रावकों की गोष्ठी में बनी थी। उसने कहा, "महाराज और महारानी तुमको सम्प्रति के योग्य नहीं समझते। कल रात महाराज का अपने पौत्र के साथ बहुत भारी झगड़ा हुआ था। सम्प्रति तो तुमसे विवाह करना चाहता है, परन्तु महारानी और महाराज इसका तीव्र विरोध कर रहे हैं। महाराज का कहना है कि वे एक वेश्या की कन्या को भारत की साम्राज्ञी बनने देना नहीं चाहते। महारानी जी ने एक और कन्या देखी है। उनका कहना है कि वह कन्या तुमसे अधिक सुन्दर, सुशील और योग्य है।

"ऐसी अवस्था में महाप्रभु का कहना है कि आप राजकुमार कुणाल से मैत्री उत्पन्न करें। पूर्ण बौद्ध संघ राजकुमार कुणाल के युवराज होने की माँग करने वाला है। यदि तुम राजकुमार कुणाल से मित्रता कर लो तो संघ महाराज के पश्चात् तुम्हें पटरानी घोषित करने का प्रयत्न करेगा।"

इस योजना से ज्योति को अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति पुनः दृष्टिगोचर हुई। इस पर उसके सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि वह राजकुमार कुणाल के पास किस प्रकार पहुँचे? इस विषय में भी भद्रायण ने एक सुझाव उपस्थित किया। उसने कहा, "एक पंडित चक्रधर हैं। उनकी पत्नी कोमलांगी तुम्हारे आगार में आती रहती हैं। चक्रधर, राजकुमार का घनिष्ठ मित्र है। इस विषय में कोमलांगी से लाभ उठाना चाहिए।"

ज्योति ने दंपा को बुलवाया और उसके आने पर पूछा, "कोमलांगी कब आती है?"

"प्रातः नित्य ही आती हैं, आज भी सायंकाल आएँगी।" दंपा ने कहा।

"मैं उससे मिलना चाहती हूँ, आए तो उसे मेरे सम्मुख लाना!"

दंपा समझ गई कि कोई नवीन षड्यन्त्र रचा जाने वाला है, इससे वह पुनः सतर्क हो गई। उसने स्वयं भी कोमलांगी से घनिष्ठता बढ़ाने का विचार किया।

जब मध्याह्नोत्तर कोमलांगी आई तो दंपा ने ज्योति की इच्छा प्रकट कर दी और पूछा, "सखि, क्या बात हो सकती है?"

"मैं नहीं जानती। मुझको यहाँ आए हुए दो मास से ऊपर हो चुके हैं। रानी ने आज से पूर्व कभी मिलने की इच्छा प्रकट नहीं की।"

"अच्छी बात है। तुम्हें उनसे मिलना चाहिए।"

कोमलांगी स्वयं भी इस पर आश्चर्य कर रही थी। दंपा से उसको यह ज्ञात हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका था कि ज्योति का विवाह सम्प्रति से होने वाला है और सम्प्रति पर श्रावक भद्रायण भारी प्रभाव रखता है। उसको यह भी पता लग चुका था कि राज्य-परिषद् में ज्योति के जन्म के विषय में चर्चा चल रही है। इस सब वृत्तांत को जानने के पश्चात् वह उत्सुकतावश ज्योति के सामने उपस्थित हुई। ज्योति ने उसके आने पर आगार को भीतर से बन्द कर लिया। उसको अपने समक्ष बैठाकर अपने बुलाने का प्रयोजन बतला दिया। उसने कहा, "मुझे पता लगा है कि राजकुमार कुणाल और तुम्हारे पति में घनिष्ठता है। मुझको अपने विषय में राजकुमार से एक निवेदन करना है। तुम अपने पति से कहकर उनसे मेरी भेंट का प्रबन्ध करवा दो।"

"मैं पण्डित जी से पूछकर इस विषय में आपको बताऊँगी।"

"पण्डित जी से कहना मैं बौद्ध उपासिका हूँ और महाप्रभु सुनन्द मेरे पर विशेष अनुग्रह रखते हैं। यदि यह काम हो गया तो बौद्ध संघ द्वारा मैं उनकी पर्याप्त सहायता कर सकती हूँ।"

"आप किस विषय में भेंट करना चाहती हैं?"

"अपने विवाह के विषय में। कुमार मुझसे प्रेम करते हैं, परन्तु महाराज और महारानी हमारे विवाह में बाधा बन रहे हैं।"

कोमलांगी ने ज्योति की इच्छा और भेंट का कारण, जैसे उसे पता चला था, अपने पति से कह दिया। वह विचार करता था कि कुमार सम्प्रति से विवाह के विषय में राजकुमार से क्या काम हो सकता है? राजकुमार तो इस विषय में सहायता कर नहीं सकते। और फिर वे सहायता करें ही क्यों?

ज्योति के सम्प्रति से विवाह होने के पश्चात् उसका युवराज घोषित हो जाना निश्चित था। कुणाल इसमें क्यों सहायता करें? साथ ही वह विचार करता था कि वह स्वयं भी सहयोग क्यों दे? वह यह भी विचार करता था कि हो सकता है इस भेंट का कुछ और ही प्रयोजन हो। यदि विवाह के अतिरिक्त कुछ अन्य उद्देश्य है, तब तो वह जानना आवश्यक है और बिना भेंट के इस विषय में कुछ पता नहीं चल सकेगा। इसका अर्थ था कि भेंट का प्रबन्ध हो जाना चाहिए, जिससे सब-कुछ स्पष्ट हो जाए, तथा वह उसके प्रतिकार में अपना व्यवहार निश्चित कर सके।

बहुत विचारोपरान्त महापण्डित, ज्योति को स्वयं राजकुमार कुणाल से भेंट के लिए ले-जाने को तैयार हो गया।

अगले दिन पण्डित चक्रधर, ज्योति को साथ ले चलने के लिए उसके आगार में जा पहुँचा। ज्योति से भेंट होने पर वह उसके सौंदर्य को देखकर चकित रह गया। वह समझ गया कि यह लड़की किसी आँखवाले पुरुष को वश में कर, उसे किसी ओर भी घसीटकर ले-जा सकती है। इस पर भी वह उसे कुणाल के पास ले-जाने के लिए तैयार हो गया। उसे विश्वास था कि चक्षुविहीन कुणाल पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेगा। राजकुमार के पास ले-जाने से पूर्व उसने स्वयं उसके मनोभावों को जानने के लिए पूछा, "देवी जी का राजकुमार से क्या कार्य है?"

"मेरा विवाह कुमार सम्प्रति से निश्चित हो चुका था। हम दोनों परस्पर प्रेम भी करते हैं। फिर भी अब महारानी और महाराज इस विवाह को पसन्द नहीं करते।"

"तो आपमें कोई दोष प्रतीत हुआ है उनको?"

"मेरी जानकारी में कुछ नहीं है। मैं जैसी हूँ श्रीमान् कुमार मुझको पसन्द करते हैं, परन्तु महारानी जी की दृष्टि में एक और लड़की है और वे उसको अपनी पतोहू बनाना चाहती हैं।"

"पर देवी! राजकुमार कुणाल इसमें क्या सहायता कर सकेंगे? महाराज की आज्ञा के बिना इस विषय में कुछ नहीं हो सकता।"

"यह मैं जानती हूँ और इसी कारण राजकुमार से परामर्श करने के लिए उनसे भेंट करना चाहती हूँ।"

"अच्छी बात है, आओ।"

राजकुमार कुणाल अपने आगार में एक आसन पर बैठा हुआ एक श्रावक से एक जातक में से तथागत भगवान् के पाँचवें जन्म की कथा सुन रहा था। जब ज्योति और महापण्डित भीतर आए तो वाचक मौन हो गया। चक्रधर ने उच्च स्वर में घोषणा की, "महाराज की जय हो!"

राजकुमार चक्षुविहीन परन्तु सुन्दर प्रौढ़ावस्था का पुरुष था। कौशेय वस्त्र पहने मस्तक पर चन्दन लगाए हुए, वह पद्मासन जमाए बैठा था। राजकुमार ने चक्रधर का स्वर पहचानकर पूछा, "महापण्डित! कैसे आना हुआ?"

"भगवन्! राजनीति की बात है। जब श्रीमान् कथा सुनने से अवकाश पा लेंगे तो एकांत में ही निवेदन करूँगा।"

इस बात को सुन कुमार गम्भीर हो गया। कुछ काल तक विचार कर बोला, "पण्डित! मैंने राजनीति से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। जाओ, सम्प्रति से परामर्श कर लो।"

"श्रीमान्! मुझे कुछ नहीं कहना। एक कुमारी कुछ निवेदन करने आई है। वह एकान्त में बात करने की स्वीकृति चाहती है।"

"कौन है वह लड़की?"

"वह स्वयं अपना परिचय देगी।"

"अच्छी बात है। सब कोई यहाँ से चले जाएँ। ....कहाँ है वह लड़की?"

"महाराज! दासी सेवा में उपस्थित है।" ज्योति, जो एक ओर खड़ी थी, बोली।

"बैठो!"

जब कथावाचक तथा अन्य सेवक वहाँ से विदा हो गए तो ज्योति ने पण्डित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्रधर की ओर देखकर कहा, "महापण्डित ! यदि बुरा न मानें तो आप भी आगार के बाहर चले जाएँ, मेरी मन्त्रणा अति गोपनीय है।"

"हाँ-हाँ, महापण्डित ! आगार के बाहर प्रतीक्षा करो। जब हम बुलाएँगे, आप चले आइएगा।" ज्योति के कोमल स्वर से राजकुमार प्रभावित हो गया था। उसको ज्योति का स्वर बहुत ही मधुर प्रतीत हुआ।

जब सब लोग आगार के बाहर चले गए तो ज्योति ने कहा, "महाराज ! मैं बौद्ध उपासिका हूँ। महापण्डित केन मेरे गुरु हैं। वे ज्योतिष के धुरन्धर विद्वान् हैं और सिद्धि-प्राप्त श्रावक हैं। उनका कहना था कि मैं भारत की सम्राज्ञी बनूँगी। उनकी भविष्यवाणी की प्रेरणा से मैं पाटलिपुत्र आई हूँ।

"यहाँ आकर राज-परिवार की विशेष अवस्था देखी है। इससे मन अति क्षुब्ध हुआ है। महाप्रभु सुनन्द से बातचीत हुई तो विदित हुआ कि कुमार सम्प्रति को युवराज घोषित किया जाएगा। कारण पूछने पर बताया कि आप चक्षुविहीन हैं। इस कारण आपको छोड़ आपके सुपुत्र को राजगद्दी देने का विचार हो रहा है। मुझको यह बात उचित नहीं लगी। इस कारण उनसे बहुत वाद-विवाद हुआ है। अन्त में यह निश्चय हुआ कि यदि राजकुमार को कोई ऐसा साथी मिल जाए, जो बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ हो, तो वे आपको सिंहासनारूढ़ करवा सकते हैं।"

"पर मुझे तो राज्य की कोई लालसा नहीं।"

"महाराज ! लालसा करने से कुछ प्राप्त नहीं होता। विवाह और राज्य तो पूर्वजन्म के कर्मों से मिलते हैं। जब आपके भाग्य में भारत पर शासन करना लिखा है तो उसे कौन मिटा सकता है !"

"यदि भाग्य में लिखा है तो मिल जाएगा। प्रश्न तो यह है कि मैं इसके पीछे क्यों भागूँ ?"

"आपको राज्य के पीछे भागने की आवश्यकता क्या है ? राज्य स्वयं आपके पीछे भागता हुआ आ रहा है। मैं तो यह निवेदन करने आई हूँ कि आते हुए राज्य को ठोकर मारकर दूर न फेंकें।"

"यह सुनन्द अति दुष्ट है। इसने वचन दिया था कि मुझको राजकुमार घोषित करवाएगा, परन्तु सुना है कि अब उसकी सम्मति बदल गई है।"

"फिर भी श्रीमान् राजकुमार घोषित होंगे। मनुष्य भाग्य को बदल नहीं सकता।"

"पर तुम कौन हो ?"

"मेरा नाम ज्योति है महाराज ! मैं समझती हूँ कि हमारे पूर्वजन्म के संस्कार हमको एक-साथ ले आए हैं। महापण्डित केन की यह भविष्यवाणी है।"

"ज्योति···नाम तो सुना है। हाँ स्मरण आ गया, तुम इन्दु वेश्या की लड़की हो ?"

"जी महाराज ! गुरुदेव की भविष्यवाणी को सत्य करने यहाँ आई हूँ। यहाँ आकर पता चला कि कुमार सम्प्रति को गद्दी मिलने वाली है। मैंने समझा कि मेरा भाग्य उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ बँधा है। परन्तु जहाँ मेरे मन ने इसकी साक्षी नहीं दी, वहाँ परिस्थिति यह है कि मेरा सम्प्रति से विवाह होने पर महाराज और महारानी सम्प्रति को राज्य का अधिकारी नहीं बनने देंगे।

"इससे मैं इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि या तो मेरा विवाह कुमार से नहीं बदा या गुरुदेव की भविष्यवाणी मिथ्या है। इस विषय पर गम्भीर विचार कर मैं इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि मैं विवश हो कुमार से विवाह करने के लिए मान गई थी। न तो मेरा उनसे विवाह बदा है और न ही उनका युवराज बनना।

"मुझको श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होना चाहिए था। सो मैं आ गई हूँ। मैं समझती हूँ कि पूर्व-जन्म के कर्मों से ही हम एक-दूसरे के साथ रहने के लिए बने हैं।"

"तुम मेरा साथ कैसे दोगी?"

"मैं आपकी पत्नी बनूँगी।"

"मेरी पत्नी? मुझ अन्धे और बूढ़े की?"

"हाँ महाराज! आपके चक्षु किसने लिये हैं, मैं जानती हूँ। प्रकृति ने आपको जो सौन्दर्य दिया है, वह अवर्णनीय है। जो प्रतिभा और स्वभाव की सौम्यता आपके भाग में आई है, वह अकथनीय है। आज जो तेज आपके मुख पर टपकता है, अलौकिक है। मस्तक पर भाग्य-रेखा साम्राज्य का भार उठाने की योग्यता की सूचक है।"

"तुम्हारी क्या आयु है देवी?"

"मैं दो मास पश्चात् बीस वर्ष की हो जाऊँगी महाराज!"

"मैं पैंतालीस वर्ष का हूँ। अपने मुख पर हाथ फेरता हूँ तो उस पर झुर्रियाँ पड़ी प्रतीत होती हैं। मेरे सेवक कहते हैं कि केशों में चाँदी के तार दिखाई देने लगे हैं। तुम इतनी छोटी आयु की होकर भी मुझसे विवाह की अभिलाषा क्यों करती हो? क्या तुम कुरूप हो अथवा किसी अंग से पंगु हो? तुमसे क्या दोष है जो सम्प्रति के पास न जाकर मुझ प्रौढ़ावस्था के पुरुष की इच्छा करने लगी हो?"

"आप बौद्ध हैं, आप निर्वाण-पद के समीप हैं, आप भद्र हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि आप भारत के भावी सम्राट् हैं। मैं पूर्णांगी हूँ। संसार की अद्वितीय सुन्दरी हूँ। कोमलकंठी हूँ, और विदुषी हूँ। आप वृद्ध नहीं हैं। आपके मुख पर ब्रह्मचर्य का ओज टपकता है। आपकी पूर्ण शक्तियाँ आप में विद्यमान हैं। चिरकालीन त्याग, तपस्या और व्रत के पालन से ये सोई पड़ी हैं। भाग्य ने मुझको भेजा है और आपकी सोई हुई शक्ति सुन्दरी के स्पर्शमात्र से जाग उठेगी।

"महाराज! मेरे कण्ठ-स्वर को सुन रहे हैं? क्या यह मधुर नहीं है? क्या इसमें रस नहीं है? क्या इसमें प्रभाव की कमी है? मैं संगीत में निपुण हूँ और नृत्यकला में प्रवीण हूँ। आज्ञा हो तो अपनी इन कलाओं में प्रवीणता का परिचय दूँ?"

"पर मैं तो अन्धा हूँ, मैं कुछ देख न सकूँगा, तुम्हारे सौन्दर्य को परख न सकूँगा, तुम अपने इन गुणों को मेरे-जैसे व्यक्ति पर क्यों न्यौछावर करोगी? जाओ, किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखों वाले के लोचनों की तृप्ति करो। मैं भाग्यहीन हूँ।"

"महाराज! आपमें एक ही इन्द्रिय का अभाव तो है। अभी चार इन्द्रियाँ शेष हैं और वे भगवान् तथागत की कृपा से अन्य पाँचों इन्द्रियों की सामूहिक शक्ति से बलशाली हैं। देखिए, आप तनिक मुझे छूकर देखिए।"

इतना कह ज्योति ने राजकुमार का हाथ पकड़कर अपने गाल पर रख दिया।

"देखिये यह कितना कोमल है!"

राजकुमार कुणाल ने ज्योति के कोमल कपोलों का स्पर्श किया तो उसके मन में उस सुन्दरी के शरीर की रूपरेखा परखने की लालसा जाग पड़ी। उसने कहा, "तुम कहती हो कि तुम सुन्दर हो, देखूँ कैसी सुन्दर हो!"

"हाँ महाराज! दासी सम्मुख बैठी है। देखिए क्या देखना चाहते हैं।"

राजकुमार ने दोनों हाथ उसके मुख पर रख दिए और टटोल-टटोलकर अनुभव करने लगा। राजकुमार ने हाथों से ज्योति को सिर से पाँव तक स्पर्श किया और जैसा अनुभव करता गया कहता गया—"बहुत अधिक केश हैं।" राजकुमार उसके सिर पर हाथ फेर रहा था।

ज्योति ने अपने केश खोल दिए और कहा, "तनिक इनकी लम्बाई तो देखिए महाराज!"

राजकुमार ने एक लट को पकड़कर लम्बाई की जाँच की और फिर हाथों से बालों की सूक्ष्मता देखी और कहा, "बहुत सुन्दर हैं!" पश्चात् मुख पर हाथ फेरते हुए आँखों पर उँगलियाँ ले गया! "ओह! कितनी बड़ी-बड़ी आँखें हैं और नाक गोल है····कपोल भरे हुए हैं····होंठ बारीक और दृढ़ हैं····चिबुक बहुत सुन्दर है।"

राजकुमार हाथ से ज्योति के अंग-प्रत्यंग को देखता जाता था और जैसा अनुभव करता था कहता जाता था—"हे भगवन्! यह कौन सुन्दरी है? इसकी ग्रीवा शंख-समान गोल है, और लम्बी है। इसके कंधे गोल हैं, और कठोर हैं। कटि-तट क्षीण है।"

राजकुमार ज्योति के शरीर को टटोल-टटोलकर देखता जा रहा था। वह देखता हुआ उसका कटि तक पहुँचा तो वह खड़ी हो गई। राजकुमार ने उसके नितम्ब देखे और पश्चात् गोल कोमल जाँघ और टाँगें देखीं तथा अन्त में जब वह उसके पाँव देखने लगा जो ज्योति ने हाथ पकड़ लिये और कहा, "बस महाराज! ये आपके छूने योग्य नहीं हैं।"

इतना कह उसने राजकुमार के हाथों को अपने ओठों पर रखकर चूमा और अपने सिर पर रख लिया—"महाराज, मुझको स्वीकार करिए और फिर देखिए कि भाग्य क्या खेल खेलता है!"

"देखो देवी! मैं सम्राट् बनता हूँ अथवा नहीं, यह मैं नहीं जानता। हाँ, यह समझ गया हूँ कि तुम सुन्दर हो, ग्रहण करने योग्य हो। इधर आओ, समीप आओ!"

ज्योति समीप खिसक गई और राजकुमार ने उसको अपने अंग से लगा लिया। ज्योति अब राजकुमार की भुजाओं में थी। वह कह रही थी, "आपने गुरुदेव की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यवाणी पूर्ण कर दी और आप निस्सन्देह राजगद्दी पाएँगे। आपके साथ दासी पुष्पकीट के समान देवता के सिर पर चढ़ जाएगी।"

कुणाल ने इसके पश्चात् ज्योति को महारानी पद्मावती के प्रासाद में नहीं जाने दिया। उसके लिए अपने प्रासाद में ही निवास की व्यवस्था करवा दी। श्रावक निरुपम अब राजकुमार कुणाल के प्रासाद में ही आकर ज्योति को उपदेश देने लगा।

ज्योति के कुमार कुणाल के निवास-गृह में जाने से पहले दिन सम्प्रति तथा महाराज और महारानी में भारी झगड़ा हुआ था। महाराज को यह विश्वास हो गया था कि ज्योति, इन्दु वेश्या की लड़की है। इसके अतिरिक्त अब दंपा का कथन कि वह भद्रायण से प्रेम करती है, अखरने लगा था। महाराज ने महारानी को ज्योति के विषय में पूर्ण जानकारी दे दी। उन्होंने कहा, "यह बात ज्योति ने स्वयं स्वीकार की है कि वह वेश्या की लड़की है। यही बात विशालापुरी से आए लोग भी बता रहे हैं। सुनन्द अपने कथन के प्रमाण नहीं बता रहा। इससे महामात्य इस परिणाम पर पहुँचा है कि ज्योति से सम्प्रति का विवाह नहीं होना चाहिए। वह जन्म से हीन, चरित्र से शिथिल और बौद्ध संघ के हाथों की कठपुतली है। उससे भावी युवराज का विवाह करने पर राज-परिवार पर से जनता का विश्वास और श्रद्धा लुप्त हो जाएगी।"

"परन्तु महाराज! सम्प्रति तो उस पर लट्टू हो रहा है! उसको बुलाकर समझाना चाहिए।"

सम्प्रति बुलाया गया और उसको परिस्थिति से अवगत करा दिया गया। सम्प्रति का कहना था, "वह अच्छी है अथवा बुरी, वह किसी राजा की कन्या है अथवा कंगाल की, वह मेरी पत्नी होगी। मैं उससे विवाह करूँगा।"

"वह तुम्हारी पत्नी तो बन सकती है, परन्तु देश की पटरानी नहीं बन सकेगी। इस अवस्था में मैं तुमको युवराज घोषित नहीं कर सकूँगा।"

"फिर भी मैं विवाह उससे ही करूँगा।"

"क्यों मूर्ख बन रहे हो सम्प्रति?"

"मैं मूर्ख नहीं हूँ महाराज! आप में आयु अधिक होने से विचार-शीलता का लोप हो गया है। आप अपनी युवावस्था में विवाह पर विवाह करते गए थे। अब शिथिलेन्द्रिय होने पर मुझको शिक्षा दे रहे हैं।"

महारानी ने कहा, "सम्प्रति! तुम कामी हो गए हो और 'कामात् क्रोधोऽभिजायते' की कहावत चरितार्थ कर रहे हो। अपने पितामह के प्रति यह कटु वचन काम के कारण उत्पन्न क्रोध से ही कर रहे हो। स्मरण रखो—

क्रोधात् भवति सम्मोहः, सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

अभी भी समय है, सँभल जाओ!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महारानी जी ! आपकी बात तो मैं समझ सकता हूँ, परन्तु जो मनुष्य स्वयं विषयों में लिप्त रहा हो, वह भला किसी दूसरे को कैसे शिक्षा दे सकता है ?"

"तो मेरी बात ही मानो, बेटा ! मैं कहती हूँ कि राज-परिवार की परम्परा स्थिर रखने के लिए और देश को एक सूत्र में बाँधने के लिए यह आवश्यक है कि राज-परिवार पर जनता की श्रद्धा और विश्वास बना रहे। इस श्रद्धा और विश्वास को स्थिर रखने के लिए ज्योति का पटरानी बनना उचित नहीं है।"

"परन्तु वह अति सुन्दर है।"

"भगवान् के पास सौन्दर्य-भण्डार समाप्त नहीं हो गया, कुमार ! ज्योति से भी अधिक सुन्दर कन्या मिल सकनी असम्भव नहीं।"

"मैंने तो आज तक देखी नहीं ?"

"तो मैं वचन देती हूँ कि मैं तुमको उससे भी सुन्दर पत्नी ला दूँगी। परन्तु एक बात बताओ, यदि ज्योति से विवाह करने पर तुमको युवराज की पदवी न मिले तो क्या तब भी वह तुमसे विवाह कर लेगी ?"

"मैं उससे प्रेम करता हूँ और अपने प्रेम के बल से उसको साधारण सम्प्रति से विवाह के लिए तैयार कर लूँगा।"

"तुम भ्रम में हो। यदि यह सत्य है कि वह एक वेश्या की पुत्री है तो वह राज्य न मिलने पर तुमको अस्वीकार कर देगी।"

"मुझको उस पर विश्वास है।"

"तो जाओ उससे कहो कि वह वेश्या की कन्या है, इससे या तो वह तुम्हारी दासी बन सकती है अथवा राज्य की लालसा छोड़कर विवाह कर सकती है। जो कुछ उत्तर वह देगी वह सुनकर हमारे पास आना। तब हम अपना निर्णय देंगे।"

सम्प्रति चला गया। महाराज अपने पौत्र के कटु वचनों से स्तब्ध हुआ बैठा था। जब से कुमार ने उसको विषय-लोलुप और शिथिलेन्द्रिय कहा था, वह कुछ बोल नहीं सका था। जब सम्प्रति चला गया तब भी वह इस कठोर आघात से घायल-सा चुप रहा।

महाराज ने पाँच लड़कियों से विवाह किया था। इसके अतिरिक्त कई दासियों से उनका सम्बन्ध रह चुका था। अब सम्प्रति के उनको विषय-लोलुप कहने पर उन्हें अपनी पत्नियों और उन दासियों की याद आ गई। उनकी सबसे छोटी रानी तिष्यरक्षिता थी। विवाह के समय वह कुणाल की समवयस्का थी। कुमार की आँखों की सुन्दरता देख वह उस पर मोहित हो गई थी। वह कुमार से सहवास की इच्छा करने लगी थी। जब उसने अपनी इच्छा कुमार से प्रकट की तो उसने चरण छूकर कहा था, 'माँ ! पुत्र को वात्सल्य का दान दो।'

तिष्यरक्षिता क्रोध से लाल-पीली हो उठी थी और काम से पीड़ित युवती ने वृद्ध महाराज के मन पर वासना का आवरण चढ़ा कुणाल को पहले विदेश भिजवा दिया था, पश्चात् उसकी आँखों को निकलवा देने की आज्ञा करवा दी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज को अपनी इस क्रूर आज्ञा का स्मरण होते ही रोमांच हो आया और उसको सम्प्रति का कहना उचित ही प्रतीत हुआ। महाराज उस दुश्चरित्र रानी को दण्ड नहीं दिलवा सके। अपनी इस क्लीवता को स्मरण कर महाराज की आँखों में आँसू आ गए।

महारानी ने उनको देखा और चिन्तित होकर पूछने लगी, "क्या बात है महाराज! सम्प्रति बालक है, उसके कहने पर आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

"मैं उसके कहने पर विचार नहीं कर रहा। मैं तो अपने किए पर विचार कर रहा हूँ। विचार करने पर देखता हूँ कि उसका कहना ठीक ही था। मैं विषय-लोलुप था। मैंने वासनावश अनेक अन्याय और पापकर्म किए हैं और अब वास्तव में शिथिलेन्द्रिय हूँ। इस समय यदि मैं किसी युवक को शिक्षा दूँ तो उसका प्रभाव भला क्या हो सकता है?"

महारानी पद्मावती जानती थी कि महाराज ने तिष्यरक्षिता के मोह में फँसकर उसके पुत्र की आँखें निकलवा दी थीं। वह यह भी जानती थी कि उसके यौवन तथा सौन्दर्य से प्रभावित महाराज पहली रानी देवी और सन्तान महेन्द्र तथा संघमित्रा का त्याग कर बैठे थे और इसी प्रकार वे अन्य कार्य भी करते रहे । इस पर भी वह सम्प्रति की बुद्धि पर विश्वास रखती थी और समझती थी कि ज्योति को राज-पद के प्रति लोलुप देख वह समझ जायगा।

हुआ भी ऐसे ही। सम्प्रति अगले दिन ज्योति के आगार में जा पहुँचा। वहाँ द्वार पर दंपा बैठी मिली। कुमार ने उसको कहा, "देवी से जाकर कहो कि कुमार मिलने आया है।"

दंपा ने कुछ उत्तर नहीं दिया और चुपचाप आँखें नीची किए खड़ी रही। इस पर कुमार ने पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

"देवी यहाँ नहीं हैं।"

"कहाँ गई हैं?"

"राजकुमार के प्रासाद में। आज प्रातःकाल की गई हुई अभी तक नहीं लौटीं।"

"तो जाओ, तुम वहाँ जा सकती हो। उसको बुला लाओ!"

"श्रीमान्! मैं वहाँ गई थी। राजकुमार की आज्ञा है कि महारानी के निवास-गृह से आया कोई भी व्यक्ति देवी से मिलने न पाए। मैं बिना मिले लौट आई हूँ।"

इससे कुमार को क्रोध चढ़ गया। वह दंपा से बिना कुछ कहे राजकुमार कुणाल के आगार में जा पहुँचा। द्वारपाल के द्वारा सूचना भेजी गई तो उसको चक्रधर के सम्मुख ले-जाया गया। चक्रधर ने कुमार का उठकर स्वागत किया। उसको आसन पर बैठाकर पूछा, "श्रीमान्! क्या आज्ञा है?"

"मैं महाराज कुमार से मिलना चाहता हूँ।"

"क्या काम है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या बिना काम के मैं अपने पिता से नहीं मिल सकता?"

"हाँ, मिल सकते थे, यदि पहले भी कभी इसी प्रकार मिलने आए होते तो। कई वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और श्रीमान् ने कभी अपने पिता के दर्शन तक करने की इच्छा प्रकट नहीं की, अतएव आज इस घबराहट में आने का कुछ तो कारण होगा ही। यदि श्रीमान् बताने की कृपा करें तो मैं महाराज कुमार को सूचना दे दूँ।"

"हाँ महापंडित! एक विशेष प्रयोजन से आया हूँ। परन्तु वह प्रयोजन मैं केवल महाराज कुमार को ही बता सकता हूँ। आप सूचना दे दें कि मैं आया हूँ।"

"जैसी आज्ञा हो। फिर भी मेरा निवेदन यही है कि राजकुमार प्रयोजन जाने बिना आजकल किसी से नहीं मिलते।"

"कोई हानि नहीं। आप जाइए और सूचना दे दीजिए।"

चक्रधर सम्प्रति को वहीं छोड़ भीतर चला गया। उसे गए हुए अभी कुछ ही क्षण हुए थे कि सम्प्रति को चक्रधर की धृष्टता पर क्रोध चढ़ आया। उसको ऐसा प्रतीत होने लगा कि ज्योति को इस प्रासाद में लाकर रोक लेना इस चक्रधर का ही काम हो सकता है। यही कारण है कि वह उसको भीतर जाने नहीं देना चाहता। इतना विचार कर वह उठ खड़ा हुआ और बिना चक्रधर के लौटने की प्रतीक्षा किए महाराज कुमार के आगार में घुस गया। एक सेवक ने रोकने का प्रयत्न किया तो सम्प्रति ने उसके मुख पर चपत लगाकर उसे एक ओर हटा दिया। अगले द्वार पर एक अन्य सेवक ने हाथ जोड़ निवेदन करते हुए कहा, "बिना महाराज कुमार की आज्ञा···।"

इससे अधिक वह सेवक कुछ न कह सका। सम्प्रति ने उसे धकेलकर एक ओर कर दिया। वह स्वयं उस आगार में जा पहुँचा, जहाँ महाराज कुमार कुणाल बैठा था और चक्रधर उनसे मिलने की इच्छा से आए सम्प्रति की सूचना दे रहा था।

सम्प्रति ने चक्रधर को बीच में ही रोककर कहा, "महापंडित! अब तुम्हारे बताने की आवश्यकता नहीं रही। मैं स्वयं सेवा में उपस्थित हो गया हूँ।"

कुणाल ने सम्प्रति की आवाज़ पहचान ली और कहा, "तुम? बिना स्वीकृति के चले आए हो?"

"हाँ पिता जी! मैं आपसे मिलने आया हूँ। पुत्र को पिता के पास आने के लिए स्वीकृति लेने की आवश्यकता नहीं होती।"

"यह बात साधारण लोगों में हो सकती है, परन्तु राज-परिवार ही शिष्टता की अवहेलना करने लगेगा तो जनसाधारण तो किसी भी नियन्त्रण को नहीं मानेंगे।"

"पिता जी! मैं महाराज कुमार के पास नहीं आया; मैं तो अपने पिता जी के समक्ष अपनी एक कठिनाई लेकर उपस्थित हुआ हूँ।"

कुणाल ने इस विषय पर अधिक विवाद करना उचित न समझ पूछा, "अच्छा बताओ क्या चाहते हो?"

"महापंडित चक्रधर को दूर कर दीजिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं नहीं जाऊँगा महाराज ! कुमार क्रोध में हैं और आपका अनिष्ट कर सकते हैं। मैं आपको अकेला नहीं छोड़ सकता।"

"मूर्ख पण्डित ! क्या समझते हो कि मैं अपने जन्मदाता की हत्या करूँगा ? ऐसा कुछ नहीं होगा।"

"आपके पितामह ने उदाहरण उपस्थित किया हुआ है और आप भी उसका अनुकरण कर सकते हैं। यह राजनीति है।"

इस उपालम्भ से सम्प्रति की आँखें झुक गईं। लज्जा से उसका मुख लाल हो गया। पश्चात् कुछ सँभलकर बोला, "पिता जी ! मैं ज्योति से मिलना चाहता हूँ।"

"बेटा ! वह तुमसे नहीं मिलना चाहती।"

"यदि मुख से वह यह कह दे तो मैं मान जाऊँगा और बिना एक शब्द भी बोले चला जाऊँगा।"

"तुम मेरा विश्वास नहीं करते ?"

"पिजा जी ! प्रेम और युद्ध में विश्वास नहीं किया जाता। वह मुझसे प्रेम करती है और मुझको विश्वास है कि यदि उस पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाए तो वह मेरे साथ चल देगी।"

कुणाल हँस पड़ा और बोला, "तुम अभी बालक ही हो और भ्रम में फँसे हो।"

कुछ विचार कर कुणाल ने ताली बजाई तो भीतर से एक दासी आकर खड़ी हो गई।

"जाओ, ज्योति से कहो कि हमने उसे तुरन्त बुलाया है। अति आवश्यक कार्य है।"

दासी गई और तुरन्त ही उसके साथ ज्योति आ उपस्थित हुई। उसके आने की आहट पा राजकुमार ने द्वार की ओर देखा और पूछा, "ज्योति, देख रही हो कौन खड़े हैं ?"

"हाँ महाराज !" इतना कह वह राजकुमार के चरणों के पास बैठ गई और बोली, "महाराज ! कुमार सम्प्रति हैं। मैं जानती हूँ ये किसलिए आए हैं।"

"क्या जानती हो तुम ?"

"ये मुझसे विवाह करने के इच्छुक हैं, परन्तु महाराज और महारानी मुझे युवराज्ञी बनाने के लिए तैयार नहीं। मैंने इनसे विवाह करना इस कारण स्वीकार किया था कि मैं सम्राज्ञी बनूँगी। अब मेरे इनसे विवाह होने पर इनका युवराज बनना असमभव है। इस कारण मैं इनको इतने बड़े सौभाग्य से वंचित करना नहीं चाहती । मैं अब इनसे विवाह नहीं करूँगी।"

"कुमार ! सुन लिया है ?" कुणाल ने सामने की ओर, जिधर कुमार खड़ा था, देखकर कहा, "अब तुम जा सकते हो।"

"महाराज ! यह औरत बहुत झूठी है ! यह आपको धोखा देगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देखो सम्प्रति ! यह मैं स्वयं देख लूँगा, अब तुम जाओ।"

"ज्योति ! क्यों मौत के मुँह में जा रही हो ? यदि मैं युवराज बना तो तुम्हारी वञ्चना भूलूँगा नहीं।"

"आप मुझे फाँसी पर लटकवा देंगे ?"

"नहीं, हमारे देश में स्त्रियों को फाँसी पर नहीं लटकाते। मैं तुमको बन्दी बनाकर रखूँगा।"

"भगवान् गंजे को नाखून न दे, यही प्रार्थना है।"

सम्प्रति क्रोध से लाल-पीला होता हुआ चला गया। वह इस अपमान की बात को महारानी को सुनाने नहीं गया, प्रत्युत अपने आगार में जाकर पलँग पर लेट रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

महाराज अशोकवर्द्धन के शासनकाल के अन्तिम दिनों में राज्य-सूत्र ढीले पड़ने लग गए थे। इसका मुख्य कारण महाराज का राज्य-प्रबन्ध में बौद्ध मीमांसा का आश्रय लेना था। कलिंग को पराजय का बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा था। देश का सर्वनाश हो गया था। राजधानी तोसाली भूमि के समतल कर दी गई थी। वहाँ क्षत्रियवंश का समूल नाश हो गया था।

इसके विपरीत महाराज अशोकवर्द्धन को भी अपनी विजय का मूल्य चुकाना पड़ा था। महाराज वहाँ किए गए अत्याचारों के लिए इतने कलंकित हो गए कि उनको अपना कलंक धोना अनिवार्य हो गया। एतदर्थ उनको बौद्ध संघ का आश्रय लेना पड़ा। यह निर्भरता इतनी अधिक हो गई कि राजनीति बौद्ध मीमांसा के आधार पर ही संचालित होने लगी।

संघ के प्रतिनिधि पहले तो केवल धार्मिक विषयों पर सम्मति देने के लिए राज्य-परिषद् में आने लगे, पश्चात् वे राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने लगे।

सशस्त्र आक्रमण अथवा युद्ध करना वर्जित हो गया। शस्त्रास्त्र बनाना, रखना और इनको चलाने का अभ्यास दण्डनीय हो गया। विजय-पराजय के केवल दो ही आधार रह गए—एक प्रेरणा और दूसरी कूटनीति।

ज्ञान-विज्ञान में भी बौद्ध मीमांसा का समावेश हो गया। नवीन शस्त्रों के आविष्कार के लिए न तो स्थान रहा और न स्वीकृति। चिकित्सा में शल्यक्रिया वर्जित कर दी गई और संसार-त्याग एक परम साध्य वस्तु बन गई।

महाराज के राज्य से पृथक् होने से कई वर्ष पूर्व ही राज्यावस्था बिगड़नी आरम्भ हो गई थी। जनता, शासक तथा राज्याधिकारियों में नियन्त्रण शिथिल होने लगा था।

पाटलिपुत्र के बीचोंबीच राजमार्ग पर एक विशाल शिवमंदिर था। यह मन्दिर महाराज बिन्दुसार के काल में शैवों ने बनवाया था। शैवमत, जैसा उस समय प्रचलित था, द्रविड़ संस्कृति का अवशेष मात्र था, और पाटलिपुत्र में यह मन्दिर द्रविड़ों और आर्य शैवों ने मिलकर बनवाया था।

महाराज अशोक के काल में इस मन्दिर की वह महिमा नहीं रही थी जो उनके पिता बिन्दुसार के काल में थी। फिर भी इस मन्दिर पर चढ़ावा चढ़ता था और वहाँ का पुजारी पार्थ नगर में भारी प्रसिद्धि रखता था।

एकाएक पुजारी का युवा पुत्र विमल श्रावक बन गया। वह एक श्राविका युवती के मोह में फँस गया था उसी स्त्री-चैत्य के, जिसमें वह श्राविका रहती थी, निकटवर्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष-चैत्य में प्रविष्ट हो गया। पार्थ ने बहुत प्रयत्न और झगड़ा किया, परन्तु न तो विमल विहार छोड़ने को तैयार हुआ और न ही राज्य ने पुजारी की इसमें सहायता की।

पार्थ इससे जल-भुन गया। उसने शिव की प्रतिमा के सामने गंगाजल से अंजलि भरकर सौगन्ध ली कि इस धर्म का सर्वनाश करने में अपना शेष जीवन लगा देगा। यदि राज्य ने इस मिथ्यावाद का पृष्ठपोषण न छोड़ा तो राज्य से भी विद्रोह करेगा।

इस शपथ को लिये हुए कई वर्ष व्यतीत हो चुके थे, परन्तु वह इस ओर अग्रसर नहीं हो पा रहा था। एक दिन वह मन्दिर में बैठा शिवस्तोत्र पढ़ रहा था। वह बोल रहा था—

दीर्घाय दीर्घपाचा दीर्घार्थाय विनाशिनं।
नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नमः॥
गजासुरमहाकालमान्धकासुर भेदिने।
नीललोहित शुक्लाय चण्ड मुण्ड प्रियाय च॥
भक्तप्रियाय देवाय ज्ञात्रं ज्ञापव्यचमास च।
महेशाय नमस्तुभ्यं महादेवाय हराय च॥

स्तोत्र पढ़ते-पढ़ते उसको कुछ ऐसा भास हुआ कि उसके पीछे कोई खड़ा है और धीरे-धीरे उसके साथ स्तोत्र का उच्चारण कर रहा है। इससे वह चुप हो गया, परन्तु उस धीरे-धीरे पढ़नेवाले ने बोलना चालू रखा। वह पढ़ रहा था—

अरूपाय विरूपाय सूक्ष्मसूक्ष्मायते नमः।
श्मसानवासिने भूयो नमस्ते कृतिवाससे॥
लिंगरूपाय लिंगाय लिंगानां पतये नमः।
नमः प्रलभरूपाय प्रणवार्थाय वै नमः॥

पुजारी को चुप देख उसके पीछे पढ़नेवाला भी चुप हो गया और पुष्प लिंग पर चढ़ाता हुआ "जय शंकर, जय महादेव" का घोष करने लगा।

पुजारी ने घूमकर देखा। वहाँ पर उपासक प्रायः द्रविड़ आते थे और उनके उच्चारण ऐसे शुद्ध नहीं होते थे, जैसा इस व्यक्ति ने किया था। इससे पार्थ को विस्मय हुआ था। यह एक नई ध्वनि थी।

जब उपासक पुष्प चढ़ा चुका, तो पुजारी ने आशीर्वाद दिया और पूछा—

"श्रीमान् परदेसी प्रतीत होते हैं?"

"हाँ श्रीमान्! मैं विशालापुरी का रहनेवाला हूँ।"

"कैसे आना हुआ है?"

"मेरे स्वामी का पुत्र एक हत्या के अभियोग में पकड़ लिया गया है। उसी सम्बन्ध में आया हूँ।"

"हत्या? एक श्रावक की?"

"हाँ श्रीमान्!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं सब-कुछ जानता हूँ। फिर क्या हो रहा है?"

"हत्या का कारण एक वेश्या की कन्या ज्योति है, जो आजकल राजप्रासाद में रहती है। उसके विषय में सुना जाता है कि वह कुमार सम्प्रति से विवाही जाने वाली है। उसी के कारण न्यायालय में अभियोग नहीं चलाया जा रहा। राज्य-परिषद् ने इसकी जाँच अपने हाथ में ले ली है। वहाँ बौद्धों का बल अधिक है। इस कारण एक श्रावक की हत्या होने पर न्याय की आशा कम है।"

"आप महामात्य विष्णुचरण से मिले हैं?"

"मिला हूँ। अभी महाराज के सम्मुख अपनी बात बताने जा रहा था कि जाने से पूर्व भगवान् शंकर के सामने प्रार्थना करने चला आया।"

"अच्छा तो जाओ, शंकर भली करेगा। शैव होने से मेरी रुचि आपकी ओर हो गई है। आप मुझको महाराज से मिलने के पश्चात् बतायें कि क्या हुआ?"

"अच्छा श्रीमान्! अवश्य बताऊँगा। कुछ भी परिणाम हो, भगवान् के दर्शन करने तो आऊँगा ही।"

यह वज्रबाहु था।

यह वही दिन था, जिस दिन विष्णुचरण ने दंपा और वज्रबाहु आदि को महाराज के समक्ष उपस्थित किया था।

उसी सायंकाल वज्रबाहु सेठ माधव को लेकर मन्दिर में आया और भगवान् की प्रतिमा पर पुष्पार्चन किया। पुजारी एक के स्थान पर दो को आया देख समझ गया कि युवक हत्या के आरोप से मुक्त हो गया है। इससे पुजारी ने भगवान् की अर्चना की और दोनों को आशीर्वाद दिया।

पश्चात् परस्पर परिचय होने लगा। पुजारी को यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि वज्रबाहु के भी वैसे ही विचार हैं, जैसे उसके हैं। इससे दोनों स्नेह-सूत्र में बँध गए। पुजारी ने पुछा, "कब तक यहाँ रहने का विचार है?"

"दो-तीन दिन के उपरान्त यहाँ से प्रस्थान करेंगे।"

"इस बौद्ध संघ को पदच्युत करने के लिए आप क्या करना चाहते हैं?"

"अभी तो कुछ सूझ नहीं रहा।"

इससे पुजारी की निराशा में वृद्धि ही हुई।

भामिनी प्रायः नित्य ही महारानी के दर्शन करने जाती थी। वज्रबाहु और चक्रिक माधव को छुड़ाने के लिए भाग-दौड़ कर रहे थे। भामिनी के पांथागार में अकेली रह जाने के कारण उसको महारानी के पास जाने के अतिरिक्त और कुछ करने को नहीं रह जाता था। वह नित्य राजप्रासाद में जाती थी। जब कभी वह निरुपम को देखती तो मुँह दूसरी ओर करके निकल जाती थी। उसने श्रावक का विचार मन से बिल्कुल ही निकाल दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी दिन-प्रतिदिन भामिनी से अधिकाधिक स्नेह करने लगी थी। दोनों में अनेकानेक विषयों पर वार्तालाप होता रहता था और इससे भामिनी के विचार महारानी पर आसानी से प्रकट होते जाते थे। एक दिन एकाएक भामिनी के मुँह से निकल गया, "महाराज ने कलिंग में जो अन्याय किया था, वह अपना कुफल लाए बिना नहीं रहेगा।"

यह सुनकर महारानी के कान खड़े हो गए, परन्तु भामिनी भी सतर्क हो गई। उसको स्मरण हो आया कि वह राजप्रासाद में बैठी है। अतः वह मौन हो गई। परन्तु महारानी ने बात का सूत्र नहीं छोड़ा। उसने पूछ ही लिया, "कलिंग के विषय में क्या जानती हो बेटी?"

भामिनी को अब अपने विषय में कुछ तो बताना आवश्यक हो गया। उसने कलिंग-पराजय की कथा, जैसी वज्रबाहु से सुनी थी, बता दी। केवल उसमें से एक बात उसने छिपा ली कि महारानी तिलोत्तमा की लड़की वह स्वयं है तथा कथा बतानेवाला वज्रबाहु उसका पिता नहीं है।

महारानी ने पूछा, "तो महारानी तिलोत्तमा की कोई सन्तान हुई अथवा नहीं?"

"महारानी के एक लड़की हुई थी, परन्तु महारानी का प्रसव के दो दिन पश्चात् ही देहान्त हो गया था। वे अब इस संसार में नहीं हैं।"

"और वह कन्या?"

"यह मैं नहीं बता सकती।"

"क्यों?"

"मेरे पास उस लड़की की पहचान और इस पूर्ण कथा के प्रमाण नहीं। फिर भी उस व्यक्ति ने, जिसने उसका पालन-पोषण किया, उक्त कथा ऐसे ढंग से बताई थी कि उस पर विश्वास किए बिना नहीं रहा जाता।"

"वह व्यक्ति कहाँ है?"

"विशालापुरी में मिला था।"

"फिर मिले तो उसे मेरे पास भेजना। हम उस लड़की को पुनः कलिंग की राजगद्दी पर बिठाकर उस अन्याय का प्रायश्चित्त करना चाहते हैं।"

"पर कौन विश्वास करेगा कि यह कथा सत्य ही है और वह लड़की राजकुमारी ही है?"

"ज्योति को जानती हो बिटिया?"

"ज्योति···इन्दु की लड़की?"

"हाँ।"

"जानती हूँ। हम उन्हीं के एक मकान में भाड़े पर रहते थे।"

"ज्योति वह लड़की तो नहीं?"

भामिनी मुस्कराकर बोली, "जी नहीं, उसको तो विशाला के सभी लोग जानते हैं कि वह सेठ लक्ष्मीचन्द की इन्दु से प्रसूत लड़की है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुमने उसको देखा है?"

"देखा है।"

"कैसी है वह ?"

"अच्छी ही है।"

इस पर महारानी ने ज्योति के विषय में सब-कुछ बता दिया। उसको आगे करके बौद्ध संघ द्वारा धोखा करने की बात भी बता दी। साथ ही यह भी बता दिया कि उसका निरुपम नामक एक श्रावक से अनुचित सम्बन्ध है।

निरुपम के विषय में महारानी तक को ज्ञान होने की बात जान भामिनी के मुँह से एक दीर्घ निश्श्वास निकल गया। महारानी ने देख लिया और पूछा, "क्या बात है भामा?"

"एक व्यर्थ बात है। श्रावक निरुपम भिक्षा करने आया करता था। मेरा इससे मोह हो गया। वह वार्तालाप करने में चतुर, रूपरेखा में सुन्दर और पढ़ा-लिखा विद्वान् होने से मन को भला प्रतीत हुआ था। ऐसा अनुभव हुआ कि वह संन्यास आश्रम छोड़, गृहस्थ में प्रवेश कर मुझसे विवाह कर लेगा, परन्तु वासनाभिभूत हो वह ऐसा पतित हुआ कि एक वेश्या की लड़की के साथ भाग गया।"

"तो तुम निरुपम को जानती हो?"

"विशालापुरी के सभी शिष्ट परिवारों में उसका आना-जाना था।"

"हमारे सूचना-विभाग ने यह बताया है कि वह सुनन्द और कौल्यायन के साथ इस षड्यन्त्र में सम्मिलित था कि ज्योति का सम्प्रति से विवाह करा दिया जाय जिससे बौद्ध संघ का राज्य पर अधिकार बना रहे।"

भामिनी चुप रही। यद्यपि वह निरुपम से घृणा करने लगी थी, फिर भी उसने और कुछ नहीं कहा। महारानी कुछ काल तक उसकी ओर देखकर बोली, "एक बात पूछूँ बेटी?"

"आज्ञा कीजिए।"

"सत्य बताना, इस श्रावक के अतिरिक्त तो और कोई नहीं, जिसको तुम्हारे हृदय में स्थान मिला हो?"

"मुझको तो सब संसार नीरस प्रतीत होता है। पुरुष महास्वार्थी प्राणी है। अपनी वासना-तृप्ति के लिए कितना आडम्बर रचता है यह!"

महारानी चुप रही।

जब सम्प्रति ने ज्योति के सौन्दर्य के प्रति अपनी धारणा बताकर उसको पाने का हठ किया था तो महारानी को भामिनी का स्मरण हो आया था। उसने भामिनी को विचार में रखकर ही सम्प्रति को कहा था कि वह वचन देती है कि ज्योति से अधिक सुशील और सुन्दर कन्या सम्प्रति को ढूँढ देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले दिन भामिनी जब महारानी से मिलने आई तो माधव के छूट जाने पर वज्रबाहु विशालापुरी जाने का कार्यक्रम बना चुका था। इस कारण भामिनी महारानी से विदा लेने आई थी। उसने अभी तक अपना वह परिचय नहीं दिया था, जो उसे वज्रबाहु से पता चला था। वह उस परिचय को बताना नहीं चाहती थी। वह समझती थी कि उसके पास इस बात का प्रमाण नहीं है। केवल कहने-मात्र से कौन विश्वास करेगा?

आज वह महारानी के सम्मुख उपस्थित हुई तो अपने विशालापुरी लौटने के विषय में कहने लगी। उसने कहा, "महारानी जी! मेरे पिता जी इस नगर में अपना कार्य समाप्त कर चुके हैं और अब मैं उनके साथ एक-दो दिनों में चली जाऊँगी। अब फिर सेवा में उपस्थित हो दर्शन नहीं कर सकूँगी। अतएव प्रणाम कर आशीर्वाद लेने आई हूँ।"

"क्या कार्य था तुम्हारे पिता का यहाँ?"

"मेरे पिता जी विशालापुरी में सेठ लक्ष्मीचन्द के त्रिशरण पुस्तकालय में पुस्तकाध्यक्ष हैं। सेठ जी का लड़का माधव इस नगर में एक हत्या के आरोप में फँस गया था और मेरे पिता उसे छुड़ाने के लिए यहाँ आए थे। दो दिन हुए माधव मुक्त हो गया है और हम अब जाने का विचार रखते हैं।"

"क्या तुम्हारे पिता का नाम वज्रबाहु है?"

"जी महारानी जी!"

"वे अभी यहाँ से नहीं जा सकेंगे।"

"क्या कारण है?"

महारानी ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। केवल मुस्कराते हुए प्रेम से भामिनी की ओर देखने लगी। भामिनी इसका अर्थ नहीं समझी। इस कारण वह प्रश्नभरी दृष्टि से महारानी की ओर देखने लगी। जब महारानी कुछ देर तक भी नहीं बोली तो भामिनी ने पूछा, "क्या मेरे पिता राज्य के बन्दी हैं?"

"नहीं। उनकी लड़की महारानी की बन्दी है।"

"मैंने तो ऐसा दण्ड के योग्य कोई अपराध किया नहीं है?"

"तुमने हमारा वात्सल्य चुरा लिया है। तुम मेरी लड़की बन चुकी हो। बिना माँ की आज्ञा के तुम कैसे जा सकती हो? जब तुम नहीं जाओगी तो तुम्हारे पिता भी यहाँ से नहीं जा सकेंगे।"

भामिनी भौंचक्की हो महारानी का मुँह देखती रह गई। महारानी ने कहा, "मैं महाराज से कहने वाली हूँ कि पण्डित वज्रबाहु को राज्य में कोई कार्यभार सौंपा जाय, जिससे वे भी यहीं रह सकें और तुम भी।"

"परन्तु सेठ माधव को तो विशालापुरी पहुँचाना होगा।"

"ठीक है। इसके लिए राज्य उसको विशालापुरी पहुँचाने का भार भी अपने ऊपर ले लेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु इसका कारण क्या है? इस तुच्छ जीव पर इतनी कृपा का प्रयोजन क्या है?"

"जिस कारण से भामिनी को भारत की सम्राज्ञी ने कर्णफूल भेंट किए थे अथवा जिस कारण उसको प्रासाद में आने की स्वीकृति दी थी, उसी कारण से उसको यहाँ रहने की आज्ञा दी जा रही है।"

"महारानी जी की इस कृपा के लिए बहुत आभारी हूँ। परन्तु इस विषय में पिता जी से भी राय करनी पड़ेगी।"

"ठीक है, यदि तुम अपनी इच्छा से यहाँ रहना चाहती होती तो उनकी स्वीकृति की आवश्यकता थी, परन्तु तुम तो भारत-सम्राट् और सम्राज्ञी की आज्ञा से यहाँ रहोगी न?"

"क्या यह अन्याय नहीं होगा महारानी जी?"

"न्याय-अन्याय का निर्णय कार्य के उद्देश्य को जानकर दिया जा सकता है।"

"वह क्या उद्देश्य है? मेरा आप क्या करने जा रही हैं?"

"प्रतीक्षा करो और देखो।"

इस समय एक दासी भीतर आई और बोली, "महारानी जी! कुमार दर्शन के लिए आए हैं।"

"आने दो।"

भामिनी वहाँ से उठकर भीतर के आगार में जाने लगी तो महारानी ने पूछा, "क्यों, कहाँ जा रही हो?"

"दूसरे आगार में, जिससे आप राजकुमार से निस्संकोच बात कर सकें।"

"कुछ हानि नहीं, बैठी रहो।"

भामिनी सोच में पड़ गई। सम्प्रति भीतर आ गया। एक अपरिचित लड़की को महारानी के समीप बैठा देखकर वह एक क्षण के लिए झेंपा। पश्चात् यह स्मरण कर कि महारानी ने उसके लिए ज्योति से भी सुन्दर लड़की ला देने का वचन दिया था और शायद यही वह लड़की हो, उसने संकोच को त्याग दिया तथा आँख उठाकर भली-भाँति भामिनी की ओर देखा। भामिनी भी कुमार की ओर देख रही थी। दोनों की दृष्टि मिली तो भामिनी की आँखें झुक गईं और उसके गालों पर लाली छा गई।

"कैसे आए हो सम्प्रति?" महारानी ने पूछा।

"महारानी जी को बताने आया था कि····"

सम्प्रति कहते-कहते रुक गया। वह विचार करने लगा कि इस अपरिचित लड़की के सम्मुख परिवार की बात करे अथवा न। उसे चुप देख महारानी ने कह दिया, "बताने आए हो कि ज्योति भाग गई है? मैं पहले ही जानती थी। वेश्या की लड़की राज्य के लोभ में तुम पर डोरे डाल रही थी। देखो सम्प्रति! भगवान् का धन्यवाद करो कि उस बला से छुट्टी पा गए हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महारानी जी! वह राजकुमार के प्रासाद में चली गई है। राजकुमार उसे अपने पास रखे हुए हैं।"

"तो···वे उसे अपनी पत्नी बनाएँगे? इससे तो हमारे परिवार का सर्वनाश ही हो जाएगा!"

"मैं यह चाहता हूँ कि महाराज आज्ञा देकर उसे बन्दी बना लें।"

"क्यों? उसने कौन-सा राज्य-नियम भंग किया है?"

"वह एक वेश्या की लड़की होकर राजकुमार को इस वृद्धावस्था में विषय-वासना में फँसाने जा रही है।"

"यह किसी प्रकार से राज्य-नियम को भंग करना नहीं है। वेश्याओं का तो यह कार्य ही है कि वे मूर्खों को वासनाभिभूत कर अपने अधिकार में कर लें। हाँ, महाराज को एक बात करनी चाहिए कि वह तुम्हें शीघ्र ही युवराज घोषित कर राज्य का कार्य-भार तुम पर डाल दें।"

सम्प्रति चुप रहा। वह मन में विचार करने लगा कि जब राजकुमार को यह विदित था कि ज्योति से उनके पुत्र का विवाह होने वाला है तो ज्योति उनकी पुत्री के समान हुई। अब वे उसको अपनी पत्नी बनाएँगे, यह तो अत्यन्त घृणित आचरण होगा। उसको विश्वास हो गया था कि ज्योति राजकुमार को युवराज घोषित कराने के लिए वहाँ गई है। महाराज जिस प्रकार उसे ज्योति से विवाह न करने की आज्ञा दे सकते थे, उसी प्रकार राजकुमार को भी नहीं दे सकते थे। इस पर उसको न केवल ज्योति के चले जाने का क्षोभ हुआ प्रत्युत उसको राज्य भी हाथ से खिसकता दिखाई देने लगा।

"तो मैं क्या करूँ?" सम्प्रति ने महारानी जी से पूछा।

महारानी का उत्तर था, "महाराज से बात करके युवराज बनने का प्रबन्ध करो। विष्णुचरण के चरणों में बैठकर क्रियात्मक राजनीति का अध्ययन करो। युवराज बनने के पश्चात् तुम्हें देशाटन के लिए जाना होगा, पूर्ण देश से परिचय प्राप्त कर, जनता के दुःख-क्लेशों का ज्ञान प्राप्त कर राज्य-भार उठाने के योग्य बनना होगा।"

सम्प्रति पूछने ही वाला था कि वह ज्योति से अधिक सुन्दर पत्नी कहाँ से और कब मिलेगी, परन्तु भामिनी को सामने बैठा देख उसकी जिह्वा नहीं खुली। उसने पुनः भामिनी को देखा। वह भूमि की ओर देख रही थी और अभी भी उसके मुख पर लज्जा की लाली शेष थी।

सम्प्रति अपने मन में ज्योति और भामिनी की परस्पर तुलना करने लगा। ज्योति अधिक दुबली-पतली थी, रूपरेखा भी भामिनी से आकर्षक थी। उसका रंग अधिक गौर वर्ण का था। भामिनी का रंग शंख के समान श्वेत था। शरीर सुगठित तथा संतुलित प्रतीत होता था। उसके कपोलों पर गुलाबी रंग की झलक थी। जहाँ ज्योति आकाश में उड़ने वाली पंछी लगती थी, वहाँ ज्योति काश्मीर की युवतियों की भाँति हंस-समान गौरवर्णीय थी। भामिनी एक शिष्ट ब्राह्मण-परिवार की कन्या के समान शुभ्रवर्णा थी जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Central Library
167974
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

धूप में घूमने से पक गया प्रतीत होता था।

इस प्रकार तुलना करने पर भी सम्प्रति यह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि दोनों में से कौन अधिक सुन्दर है। फिर भी एक विशेष बात वह अनुभव कर रहा था कि ज्योति को देखते ही उसके मन में वासना जागृत हो उठती थी और भामिनी को देखकर उसके मन में आदर-भाव उत्पन्न हो रहा था। ज्योति ने उसके सम्मुख कभी भी आँखें नहीं झुकाई थीं, प्रत्युत वह अपनी आँखों से उसके मन को चंचल कर देती थी। उसके विपरीत भामिनी की आँखें, जब एक बार उससे मिलीं तो उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि इस लड़की को उसके वहाँ ठहरने से असुविधा-सी हो रही है।

महारानी ने सम्प्रति को इतनी देर चुप देखकर कहा, "क्यों, क्या सोच रहे हो कुमार?"

सम्प्रति तत्काल सचेत हो गया। उसने कहा, "मैं विचार कर रहा था कि कदाचित् आप और महाराज मुझे मूर्ख ही समझते होंगे।"

"मूर्ख नहीं कुमार! हाँ, अनुभवहीन तो तुम भी अपने को समझ ही रहे होगे। कल तुम्हारे चले जाने के पश्चात् महाराज कह रहे थे सम्प्रति बालकमात्र है। वह मिट्टी के खिलौने के पीछे भागता हुआ थक जाएगा। और जानते हो मैंने क्या कहा था? मेरा कहना था कि युवावस्था ऐसी ही होती है। प्रकृति ने इसमें वासना की ऐसी प्रबल प्रवृत्ति उत्पन्न की है कि कोई भी स्वस्थ शरीरवाला युवक प्रवृत्ति के प्रभाव में उन्मत्त हुए बिना रह नहीं सकता।"

"यही तो मैं सोच रहा हूँ कि कल मैंने इसी यौवन की उन्मत्तता में महाराज का अपमान कर दिया था।"

"देखो कुमार! अभी विष्णुचरण से मिलकर अपने भविष्य के विषय में निश्चय कर लो। मैं समझती हूँ कि तुम्हें युवराज घोषित करते ही मुझे तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध करना है। भावी सम्राट् और सम्राज्ञी का निर्णय एक-साथ ही होना चाहिए।"

सम्प्रति अपने विवाह के विषय में प्रश्न करना चाहता था, परन्तु भामिनी की उपस्थिति में अपनी उच्छृंखलता को दबाए ही रहा। उसने मन में सोचा कि यह बात तो महारानी जी से एकान्त में ही पूछने की है। उसके मन में यह भी आया कि भामिनी को वहाँ से हटा देने के लिए कहे, परन्तु उसके मुख से ये शब्द भी नहीं निकल सके। ऐसा करने में उसको सामने बैठी देवी का अपमान प्रतीत हुआ। इससे बिना कुछ कहे वह वहाँ से चल पड़ा। जाने से पूर्व पुनः एक बार भामिनी पर दृष्टिविक्षेप किया। महारानी उसकी चेष्टाओं को भाँप रही थीं और जब वह चला गया तो वे अनायास ही खिलखिलाकर हँस पड़ीं। इस हँसी को सुन भामिनी ने आँखें ऊपर उठाईं। विस्मय से वह महारानी के मुँह को देखने लगी। वह इस हँसी का कारण नहीं समझ पा रही थी। उसको अपनी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखते हुए या उसका समाधान करने के लिए महारानी ने कहा, "यह मेरा पौत्र सम्प्रति है····राजकुमार कुणाल का पुत्र। बहुत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावशाली और विद्वान् युवक है। हमारे परिवार में सभी की दृष्टि इसी पर लगी हुई है और सब आशा करते हैं कि वह अपने पितामह की ख्याति को चार चाँद लगाएगा।"

भामिनी को इस कथन से कुछ सन्देह हो गया कि कदाचित् महारानी इसी के लिए उसे पाटलिपुत्र में रोकना चाहती हैं।

महारानी ने उपयुक्त अवसर जान अपने मन की बात भामिनी से कह डाली। उन्होंने कहा, "मैंने जिस दिन तुमको उस जौहरी की दुकान पर देखा था, उसी समय यह विचार कर लिया था कि तुम राजप्रासाद की शोभा बनोगी। मैंने अपनी पौत्रवधू को ही वे कर्णफूल भेंट किए थे। अब समय आ गया है और मैंने तुम्हें अपने मन की बात बता दी है। मैंने सम्प्रति के मुख पर तुम्हारे प्रति अनुराग के लक्षण देखे हैं। मैं तुम्हारे विषय में उसका मत जानकर तुम्हारे पिता से बातचीत करूँगी।"

भामिनी के मन में भी भारत की सम्राज्ञी बनने की तथा एक सुन्दर युवक की पत्नी बनने की अभिलाषा ने घर कर ही लिया। यह सब-कुछ इस आकस्मिक ढंग से उसके सामने आया कि वह अवाक् बैठी रही। वह एकटक महारानी का मुख देखती रही। महारानी ने जब उसको इस प्रकार निश्चल और अवाक् बैठे देखा तो समझ गईं कि इतने बड़े सौभाग्य के लिए वह एकदम तैयार नहीं थी। वह अभी अपने मन में इस समाचार की सत्यता और उसके पूर्ण होने की सम्भावना के लिए स्थान बना रही थी।

महारानी मुस्कराई और बोली, "बेटी! क्या तुमको विश्वास नहीं हो रहा मेरे कथन पर? तुम अपना वास्तविक मूल्य नहीं जानतीं, इस कारण यह तुम्हें असम्भव-सा प्रतीत हो रहा है। मुझे ज्ञान है कि तुमको परमात्मा ने किस योग्य बनाया है। तुम भारत की सम्राज्ञी बनोगी। कोटि-कोटि जनता तुमको देखकर राज-परिवार के प्रति श्रद्धा और भक्ति से भर जाएगी और तुम एक सफल महारानी बनोगी।"

उस दिन भामिनी पांथागार में पहुँची तो सब सामान बँधा देखकर विस्मय करने लगी। वज्रबाहु ने बताया, "बेटी भामा! सेठ माधव शीघ्र ही विशालापुरी लौट जाना चाहता है और हमें भी उसके साथ जाना है। चक्रिक जाने के लिए रथों का प्रबन्ध करने जा रहा है।"

"कब जा रहे हैं पिता जी?"

"आज मध्यरात्रि के समय ही जाने का विचार है।"

भामिनी विस्मय में देखती हुई खड़ी रही। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। पिता जी से एक-दो दिन तक ठहरने को कहे तो वे कारण पूछेंगे। कारण वह बता नहीं सकती। यदि वह चुपचाप चली जाए तो न जाने महारानी जी क्या समझेंगी!

उसके मन में महत्त्वाकांक्षा जाग पड़ी थी। वह इस सुअवसर को खोना नहीं चाहती थी। इसी को वह अपनी माँ की अन्तिम इच्छा-पूर्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय समझती थी। फिर भी उसको इस विषय की चर्चा चलाने में लज्जा का अनुभव हो रहा था। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन में विचार कर रहीं थी कि क्या वह अपने रुग्ण होने का बहाना करे? उसने आज तक कभी झूठ नहीं बोला था। इससे यह उपाय उसे पसन्द नहीं आया।

बहुत विचारोपरान्त उसे एक उपाय सूझा। अपने आगार में जाकर उसने महारानी जी के नाम एक पत्र लिखा। उसमें उसने अपने पिता का एकाएक पाटलिपुत्र से जाने का समाचार लिख दिया और साथ ही लिखा, "मैं पिता जी से वह सब-कुछ नहीं कह सकती, जो आपने मुझसे कहा है। अतएव आपको अपनी माँ समझकर ही लिख रही हूँ। आप ही उचित प्रबन्ध कर लें। हमारा मध्य रात्रि के समय यहाँ से प्रस्थान करने का विचार है।"

यह पत्र बन्द कर उसने चक्रिक को देते हुए कहा, "काका! यह पत्र महारानी पद्मावती के द्वार पर दंपा दासी को बुलाकर दे देना और कह देना कि इस पत्र को महारानी जी के पास, जहाँ भी वे हों, तुरन्त पहुँचा दे।"

इस प्रकार अपने जाने की सूचना जब उसने भेज दी तो वह निश्चिंत होकर अपना सामान बाँधने में लग गई। सायंकाल का भोजन हुआ तो माधव, जो नगर के एक व्यापारी के गृह पर ठहरा हुआ था, आ गया और सबको चलने के लिए तैयार देख बोला, "जब तैयार हैं तो अभी क्यों न चल दें?"

चक्रिक ने उत्तर दिया, "रथ अभी नहीं आए, वे मध्यरात्रि से दो घड़ी पहले आएँगे।"

विवश माधव, जो घर लौटने के लिए व्याकुल हो रहा था, मन मसोसकर रह गया। यद्यपि भामिनी उत्सुकता से अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी, तो भी यत्न करके उसने इस उत्सुकता को अपने हाव-भाव से प्रकट नहीं होने दिया। प्रसन्न मुद्रा में वह अपने पिता और सेठ से बातें करती रही। वज्रबाहु को यह तो विदित था कि उसने महारानी को एक पत्र लिखा है, परन्तु वह यह नहीं जानता था कि उसमें क्या लिखा है। इस पत्र की चर्चा तब हुई जब वज्रबाहु ने सेठ माधव को बताया कि रथ तो इस समय तक आ जाते, परन्तु चक्रिक को राजप्रासाद जाना पड़ गया, इस कारण वह देरी से रथवालों के पास पहुँच सका था।

माधव ने पूछा, "राजप्रासाद में क्या कार्य था?"

"बिटिया ने महारानी जी के नाम पत्र देकर भेजा था।"

"पत्र किस विषय में था?"

"मैं महारानी जी की सेवा में कल उपस्थित होने की बात कर आई थी।" भामिनी ने बताया, "जब मैंने यहाँ आकर चलने की तैयारी देखी तो कल सेवा में उपस्थित न हो सकने के लिए उनसे क्षमा माँगी है।"

इस उत्तर पर कोई और जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हुई। बातचीत अन्य विषयों पर होती रही। ज्योति और भद्रायण का भी उल्लेख आया। माधव ने कहा, "ज्योति पर अपने पिता जी को मुग्ध देख मैं उनकी हँसी उड़ाता था, परन्तु यहाँ पर राज-परिवार के लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी उसके लिए पागल होता देख अब पिता जी के साथ सहानुभूति होने लगी है।"

"आपने ज्योति को कभी देखा है?"

"नहीं, मेरी रुचि इन बातों में नहीं है।"

"ज्योति ने राज्य-परिषद् में बताया था कि उसकी माँ ने उसको बताया है कि वह सेठ जी की लड़की है।"

"हाँ, परन्तु कौन कह सकता है कि इन्दु झूठ नहीं बोल रही होगी! एक वेश्या अथवा वेश्या-पुत्री पर कौन विश्वास करेगा?"

"पर यह हुआ कैसे?"

"उस समय तो मेरी भी समझ में नहीं आ रहा था, परन्तु अब बात स्पष्ट हो गई है। यह सब बौद्ध संघ का षड्यन्त्र था।"

इस प्रकार बातें करते मध्यरात्रि हो गई। रथ आ गए और सामान लाद दिया गया। एक रथ में माधव और उसका सामान था। दूसरे में वज्रबाहु और भामिनी के बैठने के लिए व्यवस्था थी। तीसरे में वज्रबाहु का सामान और चक्रिक के बैठने के लिए व्यवस्था थी।

भामिनी को महारानी का कोई सन्देश न आने से मन में क्षोभ होने लगा था। फिर भी यह विचार कर कि उसने अपना कर्तव्य पालन कर दिया है, वह शान्त और सन्तुष्ट थी। वह विचार कर रही थी कि यदि राज-परिवार को उसकी आवश्यकता होगी तो महारानी जी उसको विशालापुरी से भी बुलाने में न चूकेंगी।

सब सामान रथों में लादा गया तो चक्रिक सामानवाले रथ में बैठ गया और भामिनी दूसरे रथ में सवार हो गई। वज्रबाहु और माधव पैदल ही रथों के साथ-साथ जाने का विचार रखते थे। द्वार पर परिचयपत्र आदि दिखाने थे और सामान की देखभाल भी होनी थी।

ये लोग जब पांथागार से बाहर निकले तो बीस के लगभग भट उनका मार्ग रोककर खड़े हो गए। भटों के नायक ने आगे आकर बज्रबाहु से प्रश्न किया, "आप पण्डित वज्रबाहु हैं?"

"हाँ, क्या कार्य है?"

"महाराज की आज्ञा है कि आप सबको प्रासाद में ले-जाया जाए।"

"सबसे क्या अभिप्राय है?"

"सबसे अभिप्राय है आपसे, भामिनी देवी से, सेठ माधव से और सेवक चक्रिक से। आपके रथ भी साथ चलेंगे।"

यह सुन माधव का मुख सूख गया। उसने पूछा, "क्या हम बन्दी बनाए जा रहे हैं?"

भामिनी समझ गई कि इस आज्ञा का कारण उसका पत्र ही है, इस कारण वह मुदितमन थी। फिर भी कुछ बोली नहीं। वह चुप बैठी सब-कुछ देखती और सुनती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही। सेठ माधव के प्रश्न के उत्तर में नायक ने कहा, "जितनी आज्ञा मिली है, उतना बता दिया है। राजप्रासाद बंदीगृह नहीं है और आप सबको वहीं ले-जाने की आज्ञा हुई है।"

सम्प्रति भामिनी और ज्योति की परस्पर तुलना करना चाहता था। इसके लिए एकान्त की आवश्यकता थी। प्रासाद में तो एकान्त मिल सकना कठिन था। इस कारण वह अपना रथ लेकर गंगातट पर जा पहुँचा। वहाँ राज-परिवार के बजरे में सवार हो गंगा के मध्य में चला गया। दिनभर बजरे में बैठा वह अपने मन का मन्थन करता रहा। अत्यधिक विश्लेषण के उपरान्त वह इसी निर्णय पर पहुँचा कि ज्योति यदि आग है तो भामिनी सौम्यता, ज्योति वासना है तो भामिनी प्रेम, ज्योति उन्माद है तो भामिनी मानसिक निर्मलता।

यह सब तुलना कर लेने पर भी, वह मन-ही-मन यह भी मानता था कि यदि ज्योति उस समय भी सामने आ जाती तो वह भामिनी को छोड़ ज्योति से लिपट जाता। उसको सम्मुख न देख उसका उन्माद शिथिल हो रहा था और मन की निर्मलता के साथ-साथ भामिनी का चित्र आँखों के सामने आ उपस्थित होता था। वह सायंकाल प्रासाद को लौटा। लौटने पर महारानी की दासी ने संदेश दिया कि उन्होंने तुरन्त बुलाया है।

सम्प्रति समझ गया कि अवश्य भामिनी के विषय में ही कुछ बात हो सकती है। अतएव वह खड़ा-खड़ा ही महारानी जी के आगार में जा पहुँचा। महारानी जी महाराज से मिलने गई हुई थीं। सम्प्रति वहीं जा पहुँचा। उसको तुरन्त मिलने की आज्ञा थी।

इस समय तक भामिनी का पत्र वहाँ पहुँच गया था। उसका उत्तर देने से पूर्व महारानी सम्प्रति की सम्मति जानना चाहती थीं। वह इसी विषय में महाराज से बात करने गई थी। वहाँ महाराज ने एक नवीन परिस्थिति का वर्णन कर दिया। उन्होंने बताया कि महाप्रभु सुनन्द आया था और राज्य-परिषद् की एक विशेष बैठक बुलाने का आग्रह कर गया है। उसमें वह राज्य के उत्तराधिकारी के विषय में पुनः विचार करने की आवश्यकता समझता है।

महारानी ने सतर्क हो कहा, "इस बात का निश्चय तो हो चुका है। अब उस पर पुनः विचार की आवश्यकता क्यों आन पड़ी है?"

"अब ज्योति सम्प्रति की पत्नी नहीं बन रही है न! एक स्त्री के लिए इतना बड़ा साम्राज्य स्वाहा किया जा रहा है। मैं विचार करता हूँ कि सम्प्रति को युवराज बनाने के लिए हमको ज्योति से उसका विवाह मान लेना चाहिए। राज्य हाथ में आ जाने पर वह इस स्त्री को बन्दीगृह में बन्द कर सकता है।"

"नहीं, महाराज! आपने इन श्रावकों को बहुत छूट दे रखी है। अब ये सीमा से बाहर होते जा रहे हैं। इनको रोकना होगा। अन्यथा हम तो नष्ट होंगे ही, साथ ही साम्राज्य भी मिट्टी में मिल जाएगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो क्या किया जाए?" महाराज ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा।

"विष्णुचरण को बुला लीजिए और उनको कहिए कि राज्य-परिषद् के पूर्व-निर्णय के अनुसार कल राज्याभिषेक का प्रबन्ध करें और कल सायंकाल ही सम्प्रति के विवाह का प्रबन्ध भी हो जाना चाहिए।"

"किससे विवाह होगा?"

"एक लड़की है। वह पण्डित वज्रबाहु की लड़की है। बहुत सुन्दर है। विवाह और सम्प्रति के युवराज घोषित होते ही एक सैना तैयार कर ली जाएगी और उसके तैयार होते ही बौद्ध संघ का जाल छिन्न-भिन्न होते देर न लगेगी।"

"पर सम्प्रति उसको पसन्द करेगा?"

"उसने लड़की को देखा है। मैंने उसको बुलवाया है। वह अभी आता ही होगा। उससे पूछकर मैं लड़की को पाटलिपुत्र में रोक लेना चाहती हूँ। वह और उसका पिता आज मध्यरात्रि के समय यहाँ से विदा हो रहे हैं।"

इस समय सम्प्रति वहाँ आ गया। उसके आते ही महारानी ने पूछा, "सम्प्रति! तुमने उस लड़की को देखा है, जो आज मध्याह्न के समय मेरे पास बैठी थी?"

"देखा है महारानी जी!"

"कैसी लगी है?"

"पूजा के योग्य देवी है।"

"उससे विवाह के विषय में क्या कहते हो?"

"मुझको आपत्ति नहीं।"

"ज्योति के सामने वह कैसी जँची?"

"ज्योति विनोद की वस्तु है, यह पूजा की।"

उसके कथन पर महाराज हँस पड़े। सम्प्रति समझा कि महाराज को उसकी दो लड़कियों में यह तुलना बचपन की बात प्रतीत हुई है। इससे वह शंकित दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा। महाराज उसको शंकित देख कहने लगे, "सम्प्रति! तुम विवाह विनोद के लिए करना चाहते हो अथवा राजप्रासाद तथा देश में एक देवी की स्थापना के लिए।"

"महाराज!" सम्प्रति ने डरते हुए कहा, "यदि राज्य का उत्तराधिकारी मुझे बनना है, तो राजप्रासाद और देश में एक देवी की स्थापना एक कर्त्तव्य हो जाता है, और यदि मुझे केवल सम्प्रति ही रहना है तो विनोद के लिए प्रयत्न करना मेरा अधिकार हो जाता है।"

"ठीक, ठीक! बहुत उत्तम। सम्प्रति! तुम्हारे गुरु को हम पुरस्कृत करेंगे। हम तुम्हारी बुद्धि के विकास पर बहुत प्रसन्न हैं। हमारा विचार है कि हम कल तुमको युवराज घोषित करें और तत्पश्चात् भामिनी से तुम्हारा विवाह घोषित कर दें।"

"महाराज की आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म होगा।"

महारानी पद्मावती ने कहा, "महाराज! भामिनी और उसके पिता को जाने से रोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना चाहिए।"

महाराज ने पत्र पढ़ा और द्वारपाल को बुलाकर आज्ञा दे दी, "बीस सुभट ले जाकर नगर के पांथागार में ठहरे हुए वज्रबाहु और उनके साथियों को हमारी आज्ञा से यहाँ ले आओ!"

द्वारपाल ने सब साथियों का विवरण पूछा तो महारानी ने कहा, "वज्रबाहु, उनकी लड़की भामिनी, उनका सेवक तथा उनका साथी सेठ माधव। देखो, मध्यरात्रि को वे पाटलिपुत्र छोड़कर विशालापुरी जा रहे हैं। समय से पूर्व ही जाकर उनको बुला लाओ!"

द्वारपाल गया तो महाराज ने कहा, "मैं समझता हूँ कि महामात्य विष्णु को भी बुला लिया जाए तो ठीक रहेगा।"

"ठीक है महाराज! कल राज्य-परिषद् की बैठक बुलाई ही न जाए। पूर्व-निर्णयानुसार सम्प्रति के युवराज होने की कल घोषणा कर दी जाए।"

"मैं समझता हूँ कि जो फाँस मैंने अपने प्रयोजनविशेष के लिए निर्माण की थी वह अपने जीवनकाल में ही तोड़ जाऊँ। मुझको तो विश्वास हो गया है कि यह श्रावकों का आधिपत्य देश को अतिदुर्बल कर चुका है और अब वे इसको नष्ट ही कर देने पर तुले हुए हैं।

"एक घटना पहले भी हो चुकी है, जिससे मेरे मन में परिवर्तन आरम्भ हो गया था। तीन वर्ष हुए, कोंकण देश के आयुक्तिक ने कर नहीं दिया। उसने बौद्ध विहारों को उनके भाग का कर देना अस्वीकार कर दिया है। कर का बहुत-सा भाग शिवमन्दिरों को देना आरम्भ कर दिया है। राज्य का भाग उसने अपने प्रयोग के लिए रख लिया है। मेरी इच्छा थी कि सेना तैयार कर उस देश पर आक्रमण कर दिया जाए। परन्तु राज्य-परिषद् की श्रावक-मण्डली ने मेरे विचार का विरोध किया। उनका कहना था कि रक्तपात कदापि और किसी भी अवस्था में उचित नहीं है; हिंसा से निर्वाण-पथ छूट जाता है, इससे दुःख और क्लेश की वृद्धि होती है।"

"विष्णुचरण ने कहा—'अहिंसा का बर्ताव उनसे ही किया जा सकता है जो मानवता के सिद्धान्तों को मानने के लिए तैयार न हों। कोंकण के आयुक्तिक ने विद्रोह किया, साथ ही असत्य भाषण किया। इसका उसको दण्ड मिलना ही चाहिए था। एक आयुक्तिक को, जिसने विद्रोह कर दिया हो, आक्रमण से ही दण्ड दिया जा सकता है।'

"उस समय सुनन्द का कहना था—'आक्रमण के अतिरिक्त एक और भी उपाय है। जनता के मन में युद्ध का भय तथा इससे घृणा उत्पन्न कर दी जाए, जिससे वहाँ की सेना के लिए सैनिक ही न मिल सकें।'

"इस उपाय की उपादेयता के विषय में संदेह होते हुए भी इसको प्रयोग में लाया गया। सुनन्द का कहना था कि उसकी युक्ति सफल हुई है, परन्तु हमको तो वह पूर्ण रूप में विफल हुई प्रतीत हुई है। कोंकण की जनता ने तो बौद्ध प्रचार से सेना में भर्ती होने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्कार कर दिया है, परन्तु वहाँ के आयुक्तिक ने कावेरी से, दक्षिण-स्थित देशों से सैनिक भर्ती कर लिये हैं। इस पर सुनन्द ने वहाँ के आयुक्तिक को वहाँ का नरेश स्वीकार कर लिया है। इसके प्रतिफल में उसने राज्य को दस लक्ष स्वर्ण प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया है। युद्ध नहीं हुआ, परन्तु कोंकण देश से मगध का राज्य समाप्त हो गया।

"पिछले वर्ष दस लाख स्वर्ण वहाँ से आया था और वह धन उत्तरी भारत में बौद्ध धर्म के प्रचार में काम आया है। इस वर्ष दस लाख में से पाँच लाख ही आया है। कोंकण-नरेश ने कह दिया है कि देश में अकाल पड़ा है और इस कारण इस वर्ष पूरा कर नहीं दिया जा सकता।"

"वास्तव में वहाँ अकाल पड़ा भी है?" महारानी ने पूछा।

"विष्णुचरण का कहना है कि वहाँ इस वर्ष अनाज पहले की अपेक्षा अधिक हुआ है। वहाँ राज्य की ओर से सैकड़ों शिवमन्दिर बनवाए जा रहे हैं। सहस्रों पण्डित ग्रन्थ-रचना में लगे हुए हैं। प्रजा नाच-रंग में लीन है।"

"तो कर प्राप्त करने के लिए उन पर आक्रमण क्यों नहीं किया जा सकता?"

"बौद्ध पद्धति में आक्रमण के लिए कोई स्थान नहीं है। सुनन्द का तो यह विश्वास है कि यह पाँच लाख भी उनको लौटा दिया जाय, जिससे भूखी प्रजा में वह धन बँट सके। उसका कहना है कि इससे वहाँ की प्रजा में हमारी सचाई और धर्मपरायणता की छाप लग जाएगी। हमारा कल्याण होगा और प्रजा का भी हित इसी में है।

"हम जान चुके हैं कि वहाँ बौद्ध मत लगभग निर्मूल हो चुका है। ऐसी अवस्था में यदि यह पाँच लाख भी लौटा दिया गया तो इससे वहाँ का नरेश और अधिक सेना बना लेगा। अभी से 'हर-हर महादेव' का स्वर घर-घर में गूँजने लगा है। रक्त-रंजित त्रिशूल का चिह्न मन्दिरों पर चढ़ा दिया गया है। वहाँ पर तो पूरे ढंग पर युद्ध की तैयारी हो रही है। हमारा दिया धन भी तो इसी तैयारी में सहायक होगा!

"इस प्रकार राज्य-परिषद् में मतभेद होने पर कोंकण पर आक्रमण नहीं हो सका।"

इसी समय द्वारपाल ने भीतर आकर सूचना दी कि वज्रबाहु इत्यादि आ गए हैं। महाराज ने उनको भीतर भेज देने के लिए आज्ञा दे दी।

तब तक महामात्य विष्णुचरण भी पहुँच गए थे।

वज्रबाहु और माधव क्रोध और निराशा से लाल-पीले होते हुए भीतर आए। जब उन्होंने महाराज, महारानी और महामात्य को वहाँ उपस्थित देखा तो अपने क्रोध को संयत कर चुपचाप खड़े हो गए। महाराज ने उनके मुख पर रोष देखा तो उनको शान्त करने के लिए कहा, "पण्डित वज्रबाहु! आओ विराजो। निश्चिन्त होकर अपने बुलाए जाने का कारण जानो।"

जब वज्रबाहु और उनके सभी साथी बैठ गए तो महाराज ने कहा, "यहाँ एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गई है। इस कारण आप सबको पाटलिपुत्र से जाने से रोकना पड़ा है। हमको यह ज्ञात हुआ है कि आपकी लड़की और सम्प्रति में विवाह की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल रही थी। कल इस विवाह का सम्पन्न होना आवश्यक है, परन्तु इससे पूर्व भामिनी के पिता की स्वीकृति आवश्यक थी।"

वज्रबाहु के मन में यह बात आ ही नहीं सकती थी। इस कारण वह प्रश्नभरी दृष्टि से भामिनी की ओर देखने लगा। भामिनी अपने पाँव की ओर देख रही थी। वज्रबाहु समझ गया। इस कारण उसने महाराज से विनीत भाव से कहा, "महाराज! यह लड़की मुझको अति प्रिय है, इस कारण जो कुछ भी इसकी इच्छा होगी मैं उसे अस्वीकार नहीं करूँगा।"

"लड़की की स्वीकृति महारानी ने प्राप्त कर ली है। सम्प्रति की भी रुचि हमने जान ली है। कल हम इस विवाह को सम्पन्न कर देना चाहते हैं। यदि कल आप और भामिनी यहाँ न होते तो इसमें भारी बाधा खड़ी हो जाने की सम्भावना थी।"

विष्णुचरण ने कहा, "सेठ माधव को तो यहाँ से जाने की स्वीकृति दे देनी चाहिए।"

"हाँ! सेठ जी जा सकते हैं।"

माधव इस सबका अर्थ नहीं समझ सका। उसको घर से आए कई मास हो चुके थे, इस कारण वह उसी समय तुरन्त प्रासाद से निकल नगरद्वार की ओर चल पड़ा। जब माधव चला गया तो विष्णुचरण ने कहा, "इस योजना में कठिनाई यह है कि बौद्ध संघ इस विवाह और इसके परिणामस्वरूप कुमार के युवराज घोषित किए जाने का विरोध करेगा, इस कारण हमको प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए।

"मैं अभी सारे नगर में यह घोषणा करवाना चाहता हूँ कि कल तीसरे पहर में प्रजा-परिषद् की बैठक होगी और महाराज उसमें अपने उत्तराधिकारी की घोषणा करेंगे। इस घोषणा में सम्प्रति के विवाह की भी घोषणा होगी। इस समय अथवा इसके पश्चात् बौद्ध संघ बाधाएँ उत्पन्न करने का यत्न करेगा। उसका विरोध हम कैसे करेंगे, यह एक विचारणीय बात है। हमारे पास सैन्य शक्ति नहीं है। साथ ही बौद्ध भिक्षुओं के विरुद्ध, जो शस्त्रहीन होंगे, सैन्य शक्ति का प्रयोग करना हितकर नहीं हो सकता। पूर्ण जनता हमारे विरुद्ध हो जाएगी।

"इस कारण मेरा कहना है कि कल सब काम इतना अकस्मात् किया जाए कि बौद्ध संघ सम्पन्न हुए कार्य को रोकने में असमर्थ रह जाए। इस कारण यह सब तैयारी गुप्त रखनी चाहिए। मेरा विचार है कि भामिनी यहीं महारानी जी के आगार में और वज्रबाहु सम्प्रति के आगार में रहें।"

वज्रबाहु इस लुकाछिपी की बात का अर्थ नहीं समझ सका। उसने कहा, "संघ के इन निरस्त्र लोगों से भयभीत होने का क्या कारण हो सकता है?"

"पण्डित जी! राज्य में सेना नहीं है। महाराज की पूर्ण शक्ति प्रजा की सम्मति में है। प्रजा की सम्मति दूषित करने के लिए देश में दो करोड़ से अधिक श्रावक अनर्थ कर सकते हैं। एक बार घोषणा हो जाए, तब बहुत-कुछ किया जा सकता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात इस प्रकार निश्चित हो गई। सब अपने-अपने निवास-स्थान पर चले गए। परन्तु महामात्य ने प्रजा-परिषद् के लिए आमंत्रित किए जाने वाले लोगों में बहुत-से ऐसे लोगों को भी बुलवा लिया जो बौद्धों का विरोध करने में संकोच नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त बहुत-से गुप्तचर इस काम पर लगा दिए गए कि वे प्रजा में महाराज की जय-जयकार करने के लिए सदैव तैयार रहें। इस सब तैयारी में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा, क्योंकि ऐसे लोग बहुत कम थे जिन पर विश्वास किया जा सकता था। बौद्ध उपासक तो संघ की आज्ञा का उल्लंघन कर नहीं सकते थे। जनसाधारण महाराज की बौद्धपोषक नीति को पंद्रह वर्ष से चलता देख न तो अब विश्वास करते थे कि महाराज बौद्धों के विरोध के पक्ष में हैं, न ही वे इस प्रकार के विरोध में कोई लाभ देखते थे।

फिर भी जो कुछ वर्तमान परिस्थिति में हो सकता था, वह कर दिया गया। जो कार्यक्रम अगले दिन के लिए निश्चित किया गया, वह था मध्याह्न के पश्चात् प्रजा-परिषद् की सभा। इस परिषद् में लगभग एक सहस्र प्रजा के प्रतिनिधि बुलाए जाने वाले थे और उनमें केवल तीन सौ निमन्त्रण-पत्र सुनन्द के पास भेजे गए, जिनके द्वारा वह प्रतिष्ठित बौद्ध लोगों को बुला सके। शेष सात सौ अन्य लोग आमन्त्रित थे, जो बौद्धों से चिढ़े हुए थे। इसके पश्चात् सम्प्रति का विवाह होना था और सायंकाल नगर के भीतर वाले मैदान में एक सार्वजनिक सभा होने का प्रबन्ध था। उसमें महाराज तथा युवराज युवराज्ञी के साथ उपस्थित होने वाले थे। इस सार्वजनिक सभा में शान्ति बनाए रखने के लिए नगरपाल को समझा दिया गया और उसको भय की सम्भावना का भी परिचय करा दिया गया। फिर भी एक बात ध्यान से चूक गई। वह थी महाराज, महारानी, कुमार तथा भामिनी की परिषद् से पूर्व रक्षा की व्यवस्था।

दिन निकलने तक प्रजा-परिषद् के समारोह की तैयारियाँ आरम्भ हो गईं। नगरभर में इसकी धूम मच गई और सभी लोग इस उत्सव के समय महाराज और महारानी की शोभा देखने के लिए व्याकुल दिखाई देने लगे।

नगरभर में राज्य-मार्गों पर, मुहल्ले-टोलों में, नदी के घाटों पर और चैत्यों तथा पांथागार में महाराज की ओर से निम्न घोषणा होने लगी।

"देवानां प्रिय, प्रियदर्शी, महाराजाधिराज, भारतसम्राट्, दया के भण्डार, प्रजापालक, संघसंरक्षक, महाराज अशोकवर्द्धन आज मध्याह्नोत्तर प्रजा-परिषद् के अधिवेशन में आवश्यक घोषणा करने वाले हैं। प्रजा के आमन्त्रित प्रतिनिधियों को इस परिषद् में सम्मिलित होने की प्रार्थना की जाती है। प्रजा-परिषद् के अधिवेशन के पश्चात् महाराज तथा महारानी नगर-चौक में एक सार्वजनिक सभा में पधारेंगे और वहाँ पर प्रजा-परिषद् में होने वाली घोषणा सुनाएँगे। सर्व प्रजागण को इस सभा में आने का निमन्त्रण दिया जाता है।"

इस घोषणा को पाटलिपुत्र की लक्ष-लक्ष जनता ने सुना और सार्वजनिक सभा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचने की तैयारियाँ करने लगे। जिस मार्ग से महाराज तथा महारानी को नगर-चौक में जाना था, उस मार्ग के किनारे पर प्रातःकाल से ही लोग एकत्रित होने लगे थे। उस मार्ग की दुकानें, मकान, मकानों के छज्जे पताकाओं, ध्वजाओं और तोरणों से सजाए जाने लगे। पूर्ण नगर में उस दिन कार्य बन्द रहा। घर-घर और द्वार-द्वार पर महाराज द्वारा की जाने वाली घोषणा की चर्चा थी।

जब नगर में, राजप्रासाद में प्रजा-परिषद् की तथा सम्प्रति के विवाह तथा युवराज बनाए जाने की तैयारियाँ हो रही थीं, ठीक उसी समय नगर से बाहर बौद्ध विहार में महाप्रभु सुनन्द की अध्यक्षता में श्रावकों की एक बैठक हो रही थी। उसमें सुनन्द ने सभा के आयोजन का कारण बताते हुए कहा, "महाराज के मन्त्री विष्णुचरण की बौद्ध धर्म और संघ से विशेष शत्रुता है। उसने षड्यन्त्र करके राजपरिवार पर से बौद्ध प्रभाव को कम करने के लिए राजकुमार कुणाल के स्थान पर कुमार सम्प्रति को युवराज घोषित कराने के लिए, बिना संघ के कर्मचारियों को सूचना दिए, प्रजा-परिषद् की बैठक बुला ली है। इस कारण हमको धर्म और संघ की प्रतिष्ठा के लिए इस विपत्ति के समय एकत्रित होकर यत्न करना चाहिए। मेरी सम्मति है कि राजकुमार कुणाल को युवराज की पदवी मिलनी चाहिए। इस प्रस्ताव को किस प्रकार कार्यान्वित कराया जाए, यह इस सभा के लिए विचार का विषय है।"

इस प्रस्ताव पर विचार किया गया और यह निर्णय किया गया कि महाराज पर जनता का दबाव डलवाकर राजकुमार कुणाल को युवराज घोषित करवाया जाए। साथ ही यह निश्चय हुआ कि महाप्रभु सुनन्द को अधिकार दिया जाए कि वह महाराज से मिलकर इस विषय में जो भी कार्यवाही उचित समझें, करें।

इस प्रकार संघ की अनुमति लेकर सुनन्द ने एकत्रित श्रावकों को आज्ञा देनी आरम्भ कर दी। उसने यह आज्ञा दी कि नगर के सब श्रावक नगर में बौद्ध उपासकों को लेकर राजप्रासाद के द्वार पर एकत्रित हो जाएँ और राजकुमार कुणाल का जयघोष करें। राजप्रासाद के कर्मचारियों में, जो भी श्रावक हैं, वे सब-के-सब महाराज के आगार के सम्मुख एकत्रित हो सुनन्द की आज्ञा का पालन करें।

इतनी व्यवस्था कर सुनन्द अपने साथ अपने चैत्य के सब श्रावकों को लेकर राजप्रासाद में जा पहुँचा। दूसरी ओर समस्त नगर के चैत्यों के पचास हजार श्रावक एकत्रित होकर नगर में राजकुमार कुणाल की जय-जयकार करने लगे। सुनन्द के राजप्रासाद में पहुँचने पर वहाँ के श्रावक और उपासक एकत्रित हो गए। वास्तव में राज्य के प्रायः सब कर्मचारी, दास और दासियाँ बौद्ध उपासक ही थे। बौद्ध मन्त्रियों ने इस बात का पहले ही विचार कर रखा था कि किसी भी समय राजपरिवार के लोगों को वश में रखने के लिए, बौद्धों के अतिरिक्त वहाँ किसी अन्य को घुसने नहीं देना चाहिए।

इस प्रकार जब सुनन्द की आज्ञा से राजप्रासाद के उपासक और श्रावक कर्मचारी एकत्र हो गए तो राजपरिवार की सेवा करने के लिए वहाँ उनके पास कोई नहीं रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना प्रबन्ध कर सुनन्द ने सबको यह कहा, "इस समय धर्म और संघ पर आपत्ति का समय आ गया है। इस कारण इसको बचाने के लिए आप सबको मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करनी चाहिए और जैसे मैं कहूँ, वैसे ही करना चाहिए।"

पश्चात् वह एक अन्य श्रावक को साथ लेकर महाराज से भेंट करने के लिए महाराज के आगारों के सामने जा पहुँचा। वहाँ पर उसने भेंट करने के लिए भीतर सूचना भेजी। महाराज उस समय विष्णुचरण से प्रजा-परिषद् की तैयारी का समाचार पूछ रहे थे। सुनन्द की भेंट करने की प्रार्थना आई और साथ ही वह स्वयं वहाँ आ उपस्थित हुआ।

महाराज ने उसको इस प्रकार बिना आने की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए भीतर आते देख उसकी ओर घूरकर देखा। सुनन्द ने महाराज की आँखों से आँख मिलाते हुए कहा, "महाराजाधिराज! देश की कोटि-कोटि जनता का मैं प्रतिनिधित्व करता हूँ। इस पर भी श्रीमान् ने आज की प्रजा-परिषद् की बैठक की सूचना मुझको नहीं दी और न ही उसमें की जाने वाली घोषणा का ज्ञान मुझको कराया है। मेरा नम्र निवेदन है कि इस प्रजा-परिषद् की बैठक से पूर्व राज-परिषद् की बैठक हो जानी चाहिए।"

महाराज ने इसके उत्तर में कहा, "मंत्री! इस प्रजा-परिषद् के करने का निर्णय राज्य-परिषद् में हो चुका है और इसमें की जाने वाली घोषणा की रूपरेखा भी निश्चित हो चुकी है।"

"मैंने श्रीमान् जी से कल प्रार्थना की थी कि युवराज बनाने के विषय में विचार करने के लिए राज्य-परिषद् की बैठक की जाए।"

"मैंने एक बार निश्चित की गई बात पर पुनः विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी।"

"परन्तु महाराज! परिस्थिति बदल गई है। इस अवस्था में वह निश्चय अब टिक नहीं सकता।"

"क्या परिस्थिति बदली है?"

"यह मैं राज्य-परिषद् में ही वर्णन करूँगा।"

"अच्छी बात है, जब राज्य-परिषद् की बैठक होगी, तब वर्णन कर दीजिएगा।"

"राज्य-परिषद् की बैठक अभी होनी चाहिए।"

"तुम मुझको आज्ञा करते हो?"

"मैं नहीं महाराज! यह बौद्ध संघ की आज्ञा है और बौद्ध संघ ही आज देश तथा जनता का प्रतिनिधित्व करता है।"

"हमको इसमें सन्देह है कि जो कुछ आप चाहते हैं, वही बौद्ध संघ चाहता है।"

"तो इस सन्देह का निवारण करना चाहिए। जब तक देश का मत इस विषय में न जान लिया जाए, तब तक आज की घोषणा स्थगित रखी जाए।"

"यह घोषणा राज्य-परिषद् के निर्णय के अनुसार की गई है। इसको स्थगित करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हम कोई कारण नहीं समझते।"

"महाराज! राज्य-परिषद् की बैठक तुरन्त बुला ली जाए, अन्यथा मेरे इस निवेदन को ठुकरा देने से लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना है।"

"क्या हानि हो सकती है?"

"जनता विद्रोह कर सकती है।"

"क्यों?"

"इसलिए कि जनता के वास्तविक प्रतिनिधि की बात नहीं मानी जा रही है।"

"जनता का प्रतिनिधि कौन है?"

"राज्य-परिषद् के श्रावक मन्त्री।"

"वे क्या चाहते हैं?"

"वे चाहते हैं कि राजकुमार को युवराज बनाया जाय।"

"यह देश के हित में नहीं और न ही यह जनता का मत है।"

सुनन्द ने अपने वक्षःस्थल पर हाथ रखकर कहा, "यह है देश, महाराज!"

"मैं इसे देश नहीं मानता।"

इस पर सुनन्द ने द्वार की ओर देखा। द्वार के बाहर खड़े दस श्रावक भीतर घुस आए। सुनन्द ने आवाज दी, "और आ जाओ!"

दस और आ गए।

सुनन्द को इस पर भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा, "और आओ!"

इस बार बीस और श्रावक भीतर आ गए। वह आगार, जहाँ महाराज बैठे थे, पीतवसनधारी मुँडे सिर वाले श्रावकों से भर गया। इस पर महाराज घबरा उठे। विष्णुचरण, जो समीप बैठा सब-कुछ सुन रहा था, महाराज के कान में कहने लगा, "महाराज! भाग जाइए।"

महाराज उठ खड़े हुए, परन्तु सुनन्द ने आज्ञा दे दी, "महाराज को बन्दी बनाकर पिछले आगार में डाल दो। देखो! महामात्य भाग न सके, इसको बन्दी बनाकर राजकुमार के आगार में ले आओ!"

श्रावकों ने महाराज और महामात्य को घेर लिया और दोनों को बाँधकर इंगित स्थानों को ले गए। सुनन्द भी महाराज के पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँचा, जहाँ उनको बन्दी करने की आज्ञा दे चुका था। वहाँ पहुँच उसने महाराज से कहा, "महाराज! आप राजकुमार कुणाल को युवराज घोषित करने की आज्ञा लिखवा दीजिए।"

"मैं बन्दी हूँ और बन्दी आज्ञा नहीं दे सकता।"

"घोषणा लिखा दीजिए। नीचे हस्ताक्षर कर दीजिए और वह घोषणा हम आपकी अनुपस्थिति में प्रजा-परिषद् में सुना देंगे।"

महाराज ने लिखना स्वीकार नहीं किया। इस पर सुनन्द ने एक लिखा हुआ पत्र अपने झोले से निकालकर महाराज के सम्मुख कर दिया और कहा, "आप हस्ताक्षर कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीजिए।" जब महाराज ने हस्ताक्षर नहीं किया तब सुनन्द ने उस पत्र में कुछ परिवर्तन कर नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिए और पूर्ण पत्र महाराज को पढ़कर सुना दिया। उसमें लिखा था—

"हम आज रुग्ण हैं, इस कारण आज प्रजा-परिषद् के अधिवेषन में उपस्थित नहीं हो सकते। इस पर भी यह हमारी इच्छा है कि हमारे उपरान्त भारत राज्य के सिंहासन पर राजकुमार कुणाल बैठे और इस राज्य का धर्म और न्याय से पालन करे। हमारे पूर्ण जीवन की नीति कि बौद्ध संघ को सुदृढ़ रखा जाए, अवश्य जारी रहे।"

इस लिखित घोषणा पर हस्ताक्षर करने के लिए पुनः कहा गया, परन्तु पूर्ववत् महाराज ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा, "हम इस घोषणा को अत्यन्त हानिकर समझते हैं और इस पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश नहीं किए जा सकते।"

"ठीक नहीं हो रहा महाराज! मैं बाध्य हो रहा हूँ कि आपको इस आगार में बन्दी रखूँ और तब तक आपको स्वतन्त्रता से न विचरने दूँ, जब तक आप हमारे कथन का समर्थन नहीं करते।"

महाराज ने कहा, "दुष्ट···।" परन्तु इससे आगे वे कुछ नहीं कह सके। इसी समय राजप्रासाद के आँगन में युवराज कुणाल के जयघोष का नाद सुनाई दिया। कई बार जयघोष होने के पश्चात् कुछ शान्ति हुई तो महाराज ने कहा, "मैं बाहर एकत्रित हुई जनता के सम्मुख उपस्थित हो अपनी बात कहना चाहता हूँ।"

"यह अब नहीं हो सकता।"

महाराज को उसी आगार में बन्द कर दिया गया। बाहर श्रावकों को बैठा दिया गया।

उस दिन प्रातःकाल जागते ही भामिनी को दासियों ने घेर लिया। उसके कपड़ों का नाप लिया गया। उसको स्नान कराकर सुगन्धित इत्र-तेल से शृंगार कराया गया। उसको जलपान कराया गया और पश्चात् महारानी पद्मावती के सम्मुख उपस्थित किया गया।

यह बात महारानी की प्रत्येक दासी को विदित हो गई थी कि भामिनी का विवाह सम्प्रति से होगा और वह युवराज्ञी मान ली जाएगी। इस कारण जिधर वह जाती थी, दास-दासियाँ आदरयुक्त मुद्रा में खड़ी हो जाती थीं।

महारानी के समक्ष पहुँच उसने उनके चरण-स्पर्श किए और आज्ञा के लिए सामने खड़ी हो गई। महारानी ने उसको अपने समीप बैठाकर, उसके सिर पर हाथ फेर आशीर्वाद देते हुए कहा, "बेटी, सौभाग्यवती हो! सुखपूर्वक दीर्घ जीवन भोग करो! देश तथा जाति के लिए आदर्श बनो!"

भामिनी अपने से इतनी सन्तुष्ट और प्रसन्न थी कि वह अपने मन की बात कहने के लिए शब्द नहीं पा रही थी। वह महारानी के चरणों की ओर देखती हुई बैठी रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशीर्वाद के पश्चात् महारानी जी ने कहा, "भामिनी ! आज तुम्हें प्रजा-परिषद् में कुमार के साथ आसन पर बैठना होगा। उस समय के लिए उपयुक्त वस्त्र बन रहे हैं। वह आ जाएँगे और वही पहनने होंगे।

"राज्य-परिषद् से उठते ही तुम दोनों वापस यहाँ आ जाना और यहाँ तुम्हारा विवाह होगा। इसके पश्चात् तुम दोनों नगर में एक सार्वजनिक सभा में जाओगे और वहाँ तुम्हारा प्रजा से परिचय होगा।"

इस प्रकार महारानी जब भामिनी को पूर्ण व्यवहार का परिचय दे रही थी, तो उस समय एक घटना घटी। एक दासी ने दूसरी के कान में कुछ कहा। दूसरी ने तीसरी के कान में और एक-एक कर सबके कानों में कुछ बात कह दी गई और वे सब एक-एक कर आगार के बाहर निकल गईं। किसी कार्यवश महारानी को दंपा की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने आवाज दी, "दंपा···ओ दंपा···।"

न तो कुछ उत्तर आया और न ही दंपा आई। इस पर महारानी ने पुनः आवाज दी, "अरी कोई है?"

एक दासी, जो वृद्ध होने के कारण सबके पीछे रह गई थी, लौटी और महारानी के सम्मुख उपस्थित हो गई।

"ये दासियाँ किधर चली गई हैं री?"

"उपासना में सम्मिलित होने गई हैं। मैं भी जा रही थी।"

"उपासना? आज तो रविवार का दिन है और फिर इस समय?"

"विशेष उपासना हो रही है। राजप्रासाद के सब कर्मचारी एकत्रित हो रहे हैं।"

"अच्छा जाओ; शीघ्र आना।"

परन्तु चार घड़ी व्यतीत हो गईं और कोई नहीं लौटा। इससे महारानी को चिन्ता हुई। वे बाहर निकल खिड़की में से झाँककर देखने लगीं। नीचे प्रांगण में एक सहस्र स्त्री-पुरुष एकत्रित थे। वह ध्यान से सुनना चाहती थी कि वहाँ क्या हो रहा है। भामिनी महारानी के पीछे खड़ी थी। इतनी दूर से कुछ सुनाई नहीं देता था। मक्खियों की भिनभिनाहट की भाँति शब्द हो रहा था।

इस समय दंपा, महारानी और भामिनी के पीछे आ खड़ी हुई और धीरे से बोली, "महारानी जी ! राजप्रासाद में विद्रोह हो गया है।"

"विद्रोह? किसने किया है?" महारानी ने दंपा की ओर घूमकर पूछा।

"बौद्ध उपासकों ने। संघ की आज्ञा है कि महाराज और आप सबको बन्दी बना लिया जाए और जब तक आप राजकुमार कुणाल को युवराज बनाना स्वीकार न करें, तब तक छोड़ा न जाए।"

"कौन-कौन इस विद्रोह में सम्मिलित है?"

"सब बौद्ध उपासक। वे संघ की आज्ञा पालन करना अपना कर्तव्य मानते हैं। प्रासाद में उपासकों और श्रावकों के अतिरिक्त तो बहुत कम लोग हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दंपा ! तुम भी उपासिका हो क्या ?" महारानी ने कुछ विचार कर पूछा।

"नहीं महारानी जी ! इसी कारण वहाँ से चली आई हूँ।"

"अच्छा, एक काम करो। सम्प्रति को समझाकर यहाँ ले आओ, शीघ्रता करो !"

दंपा भागती हुई गई, पर लौटी नहीं।

राजप्रासाद में लगभग बीस वर्ष से खड्ग, धनुष, बाण इत्यादि अस्त्र-शस्त्र को अपने पास रखना वर्जित था। इनके रखने से हिंसा होने की सम्भावना थी। प्रासाद के संरक्षक सुभट भी निश्शस्त्र ही कार्य करते थे। इस प्रकार सहस्त्रों कोस लम्बे-चौड़े देश का राज्य बिना सेना के अथवा बिना अस्त्र-शस्त्रों के चलता रहना एक चमत्कार की बात थी। ज्यों-ज्यों अशोकवर्द्धन के शान्तिमय राज्य में बिना रक्त बहाए वर्ष-पर-वर्ष व्यतीत होते जाते थे, त्यों-त्यों जनता महाराज की योग्यता का गुणानुवाद गाती जाती थी। साथ ही बौद्ध सम्प्रदाय भी इसका श्रेय प्राप्त कर रहा था। इस श्रेय के कारण बौद्ध संघ का संगठन सुदृढ़ और सुदृढ़तर होता जाता था। अब समय ऐसा आ गया था कि जनता की श्रद्धा महाराज अशोक से हटकर बौद्ध संघ पर हो गई थी। यही कारण था कि जब राज्य और संघ में संघर्ष हुआ तो संघ का पांसा ऊँचा रहा।

दंपा तो कुमार सम्प्रति को बुलाने गई थी, परन्तु वहाँ उसके पहुँचने से पहले ही बौद्ध संघ के लोग पहुँच चुके थे। सम्प्रति ने अपने निवास-गृह में वज्रबाहु को ठहराया हुआ था। प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त हो भविष्य पर विचार हो रहा था। इस समय प्रासाद के आँगन में बहुत-से लोग बातें करते सुनाई दिए। सम्प्रति ने इसका कारण जानने के लिए सेवक को बुलाया, परन्तु कोई नहीं आया। तब वह स्वयं खिड़की में जा खड़ा हुआ। उसने देखा कि लगभग दौ सौ व्यक्ति उसके निवास-गृह की ओर आ रहे हैं। वज्रबाहु भी कुमार के साथ ही खिड़की में आ खड़ा हुआ था। कुमार अभी इसका अभिप्राय समझने का प्रयत्न कर ही रहा था कि वज्रबाहु ने कह दिया, "कुमार ! ये लोग मित्र नहीं, शत्रु प्रतीत हो रहे हैं !"

"कैसे जाना ?"

"श्रावक आपका युवराज बनाया जाना पसन्द नहीं करते और इस आने वाली भीड़ का अगुआ कोई श्रावक ही है।"

"आने दो, देखें क्या कहते हैं !"

"यदि आप अनुचित न समझें तो मैं अपना खड्ग निकाल लाऊँ ?"

"क्यों ?"

"जिससे ये आप पर कोई बल-प्रयोग न कर सकें।"

सम्प्रति यद्यपि सिद्धान्त से मानता था कि रक्षा के लिए शस्त्र धारण करना उचित है, परन्तु जन्म से लेकर अब तक उसने खड्ग चलता अथवा नर-रक्तपात होता नहीं देखा था। इस कारण खड्ग धारण करने के लिए वज्रबाहु को वह सम्मति नहीं दे सका। उसने बात को टालने के लिए कह दिया, "आप एकाकी इतनी भीड़ के सम्मुख क्या कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेंगे ?"

"मैं अकेला अपने इस खड्ग के सहारे एक सहस्र को भी भेड़ों की भाँति भगा सकने में समर्थ हूँ।"

सम्प्रति ने केवल इतिहास में ही ऐसी बातें पढ़ी थीं। फिर भी उसको वज्रबाहु के कथन पर तत्काल विश्वास नहीं आया। विचार करने के लिए कुछ अधिक समय भी नहीं था। अतएव वज्रबाहु लपककर उस आगार में जा पहुँचा, जहाँ उसका सामान रखा था और वह खड्ग, जो पाण्ढरी के समीप जंगल में मृगया के लिए प्रयोग किया जाता था और जिसको, जब से वह विशालापुरी में आया था, उसने खोलकर नहीं देखा था, उसको निकाल और खोलकर उसकी धार तेज करने लगा। धार तेज करने का समय नहीं था। वह अपने खड्ग को वैसे ही खोल में रखकर सम्प्रति के पास आ गया।

इस समय तक कुछ श्रावक और कर्मचारी सम्प्रति के समीप आ खड़े हुए थे। एक श्रावक कहने लगा, "कुमार! संघ की आज्ञा है कि आप चैत्य में चले जाएँ। आज नगर में विप्लव होने लगा है और आपके प्राण जाने की सम्भावना हो सकती है।"

"कैसा विप्लव है ?" सम्प्रति ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा।

"राजकुमार के सहायकों ने महाराज की घोषणा का विरोध करना आरम्भ कर दिया है।"

"और उन सहायकों में तुम भी हो ?"

"हम आपके जीवन की रक्षा के लिए भेजे गए हैं।"

"किसने भेजा है तुमको ?"

"बौद्ध संघ ने।"

"मैं बिना महाराज की आज्ञा के यहाँ से टल नहीं सकता।"

"वे स्वयं चैत्य के लिए प्रस्थान कर गए हैं।"

"मुझको विश्वास नहीं होता।"

"तो क्या हम असत्य बोल रहे हैं ?"

"मैं कुछ नहीं जानता। मैं नहीं जाऊँगा।"

"तो हम अपना कर्तव्य बलपूर्वक पालन करेंगे।"

वज्रबाहु वहीं पर खड़ा उनकी बातें सुन रहा था। श्रावकों ने अपने साथ आई भीड़ को आज्ञा दे दी, "कुमार को पकड़कर रथ तक ले चलो!"

ज्यों ही उपासक कुमार की ओर लपके, त्यों ही वज्रबाहु का खड्ग प्रकाश में चमक गया। एक ने कुमार को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि खड्ग ने उसके हाथ के दो टूक कर दिए। उस समय कुछ लोग वज्रबाहु पर लपके, परन्तु वह पैंतरा बदलकर पीछे हट गया और पलक की झपक में दो और सिर कटकर भूमि पर लुढ़क गए।

श्रावक उपासकों को आज्ञा देनेवाला परिस्थिति का अनुमान नहीं लगा पा रहा था। वज्रबाहु को कोई नहीं जानता था। न ही किसी को यह आशा थी कि राजप्रासाद में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड्ग चलानेवाला भी कोई हो सकता है।

श्रावक नेता ने नर-रक्त देखा तो अपने साथियों को आज्ञा दे दी, "पीछे हट जाओ! यह कोई हिंसक जन्तु यहाँ कहीं से घुस आया है।" उपासक भी नर-रक्त को देखकर भयभीत हो रहे थे, अतः इस आज्ञा को सुनकर वे पीछे हट गए।

वज्रबाहु यह भली-भाँति समझता था कि वराह के आखेट में पीछे हटते जन्तु का पीछा करने से ही विजय मिल सकती है। प्रायः पीछे हटता हुआ वराह दुगुने बल से आक्रमण करता है। उस अवस्था में उसका पीछा करने से वह भाग खड़ा होता है। इस कारण पीछे हट रहे श्रावकों और उपासकों पर वज्रबाहु खड्ग-संचालन करता हुआ टूट पड़ा। देखते-ही- देखते एक श्रावक का सिर कट गया और इसे देख अन्य श्रावक भाग खड़े हुए। उनको भागता देख उपासक भी भागने लगे। वज्रबाहु ने इस समय पीछे घूमकर सम्प्रति की ओर देखा। वह अपने विवर्ण मुख से आँखें फाड़-फाड़कर इस घटना के विषय में सोचने में लीन था। वज्रबाहु ने सम्प्रति की बाँह पकड़कर उसे प्रासाद के द्वार की ओर घसीटते हुए कहा, "कुमार! भाग चलो यहाँ से, ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा।"

दोनों द्वार की ओर द्रुत गति से चल पड़े। मार्ग में वज्रबाहु की रक्तरंजित खड्ग देख लोग मार्ग छोड़ देते थे। प्रासाद-द्वार पर कई रथ खड़े थे। वज्रबाहु ने एक रथ, जिसके घोड़े चुस्त और बलिष्ठ दिखाई देते थे, पकड़ लिया। वे दोनों उस पर चढ़ गए। वज्रबाहु ने खड्ग उठाकर सारथी को आज्ञा दी कि वह नीचे उतर जाए।

सारथी के नीचे उतर जाने पर, उसके स्थान पर वह स्वयं बैठ गया और रथ को नगरद्वार की ओर हाँककर ले गया।

भामिनी और पद्मावती दंपा के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थीं। वास्तव में दंपा जब कुमार सम्प्रति के निवास-गृह पर पहुँची तो उस समय वज्रबाहु खड्ग चला रहा था। जब उपासक उससे भयभीत हो भागे तो वह भी भाग खड़ी हुई। श्रावक का सिर उसके सामने कटा था। श्रावक के रक्त के छींटे उसके आँचल पर भी गिरे थे। वह इतनी भयभीत हुई थी कि दिशाशून्य हो महारानी के निवास-स्थान की ओर जाने की अपेक्षा महाराज कुणाल के निवास-गृह में जा पहुँची। वहाँ वह अन्य दास-दासियों में मिल गई। वहाँ पर कुछ शान्ति का वातावरण था और वह एक कोने में भूमिस्थ हो अपने हृदय की धड़कन को शान्त करने का यत्न करने लगी।

दंपा जब नहीं आई तो भामिनी को लेकर महारानी महाराज के आगार की ओर चल पड़ी। वह दूर नहीं गई थी कि महाराज को लोग हाथ-पाँव बाँधे हुए प्रासाद के भूम्यन्तर्गत आगारों में ले-जाते हुए मिले। वे दोनों घबराकर लौटीं, परन्तु उस समय सुनन्द ने उनको देख लिया और अपने साथ आ रहे लोगों को आज्ञा दी कि इन दोनों को भी पकड़ लें। भामिनी और महारानी पद्मावती को उसने नगर के बाहरवाले चैत्य में ले जाने की आज्ञा दे दी। वह परिवार के सब लोगों को एक ही स्थान पर उचित नहीं समझता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भामिनी इन सब परिवर्तनों को देख चकित थी। ज्यों-ज्यों उसको राजपरिवार और राज्यप्रबन्ध में श्रावकों का हस्तक्षेप दिखाई देता जाता था, त्यों-त्यों वह राज्य के अन्त और घोर दुःख तथा अशान्ति की सम्भावना करने लगी थी। चैत्य को ले-जाए जाने पर उसको अतिविस्मय हुआ। वह बौद्ध संघ को राजनीति में अत्यन्त लिप्त मानकर भी, पूजा-स्थानों को बन्दीगृह बनाए जाने की स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकती थी।

जब उनका रथ प्रासाद से दूर चला गया और नगर से बाहर हो गया तो उसको वज्रबाहु की याद आई। उसने महारानी जी से कहा, "भगवान् जाने पिता जी का क्या हुआ होगा?"

"चिन्ता की बात नहीं। वे भी किसी चैत्य में पहुँचा दिए जाएँगे।"

महारानी और भामिनी को जिस चैत्य में पहुँचाया गया, वह एक विदेशी श्रावक 'लाई-उन-चाई' की स्मृति में बना था। नगर से पाँच कोस बाहर आकर गंगा के किनारे पन्द्रह हाथ ऊँची दीवार के भीतर दो भागों में चैत्य था। एक विभाग में श्रावक रहते थे और दूसरे विभाग में श्राविकाएँ। ये दोनों स्त्री-विभाग में ले-जाई गईं। रथ के पहुँचने पर चैत्य का बड़ा द्वार खोल दिया गया और रथ भीतर ले-जाकर ही खड़ा किया गया। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके आने की सूचना वहाँ पहले ही थी। चैत्य की अध्यक्षता कल्याणी सुनन्दा चैत्य के प्रांगण में खड़ी रथ के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। फिर भी भामिनी के विषय में वह कुछ नहीं जानती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि इनको बन्दी बनानेवाले को भामिनी के विषय में कुछ विदित नहीं था।

अध्यक्षा इस अप्रत्याशित अभ्यागत को वहाँ देख विस्मय में उनका मुँह देखती रही। रथ के वहाँ पहुँचते ही कल्याणी ने आज्ञा दे दी, "महारानी जी को आगार संख्या बीस में ले जाओ और उनको कह दो कि अब आराम करें। उन्होंने अभी लम्बी यात्रा के लिए जाना है।"

"पर इसको क्या करें?" एक श्राविका ने पूछा।

"कोई दासी प्रतीत होती है। एक-दो दिन में छोड़ दी जाएगी। इसको मेरे कार्यालय में ले चलो।"

इस प्रकार महारानी और भामिनी पृथक् हो गईं। भामिनी को विहार के कार्यालय में ले-जाकर एक चटाई पर बैठा दिया गया। महारानी का उचित प्रबन्ध कर कल्याणी कार्यालय में आकर एक उच्चासन पर बैठ गई और भामिनी को अपने सामने बैठाकर पूछने लगी, "क्या नाम है तुम्हारा?"

"पर तुम कौन हो जो इस प्रकार मुझसे पूछती हो?"

"मैं इस चैत्य की अध्यक्षा हूँ। मुझको चैत्य के लोग कल्याणी सुनन्दा कहते हैं।"

"ये लोग मुझको यहाँ क्यों ले आए हैं?"

"मैं नहीं जानती।"

"तो मैं जा सकती हूँ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम अपनी इच्छा से नहीं आई हो ?"

"न मैं और न ही महारानी जी अपनी इच्छा से आई हैं। मैं जाती हूँ। उनको तुम प्रासाद में पहुँचा देना।" इतना कहकर भामिनी उठकर चलने को तैयार हो गई।

"नहीं, इस प्रकार नहीं। महारानी जी यहाँ इसलिए भेजी गई हैं कि यहाँ से वे किसी अन्य स्थान पर ले-जाई जाएँगी। जहाँ तक तुम्हारा सम्बन्ध है, तुमको यहाँ भेजने वालों से पूछना अतिआवश्यक है। तब तक तुम यहाँ पर अतिथि की भाँति रहोगी।"

इतना कह कल्याणी ने वहाँ खड़ी दो श्राविकाओं को कह दिया, "इनको गुफा संख्या पाँच में ले जाओ और जब तक कोई दूसरी आज्ञा नहीं होती, इनको बाहर मत निकलने दो!"

"पर मैं पूछती हूँ कि बौद्ध चैत्य अब बन्दीगृह बन गए हैं क्या ? संसार को मुक्त करानेवाले भगवान् बुद्ध के शिष्य क्या अब जनता को बन्धन में डालनेवाले हो गए हैं ?"

कल्याणी इस युक्ति का उत्तर नहीं जानती थी। फिर भी उसने बौद्ध संघ का मुख उज्ज्वल रखने के लिए कह दिया, "इस चैत्य और बन्दीगृह में एक समानता के कारण तुमको भ्रम हो रहा प्रतीत होता है। देखो, महाराज प्रियदर्शी के राज्य में ऐसे सुधार-केन्द्र बने हुए हैं, जहाँ भूली-भटकी बहनों के लिए स्थान है। मेरी इस स्थान पर नियुक्ति है।"

"पर मैं भूली-भटकी हुई नहीं हूँ। मेरी पाँचों इन्द्रियाँ ठीक प्रकार से काम कर रही हैं। मैंने तो किसी की बुराई का चिन्तन न किया है और न ही मैंने कोई ऐसा कार्य किया है, जिससे किसी को हानि पहुँची हो।"

"यही तो देखना है ! जब तुम्हारे कथन की सत्यता का विश्वास हो जाएगा, तुमको मुक्त कर दिया जाएगा।"

भामिनी अभी कुछ और कहना चाहती थी परन्तु वे श्राविकाएँ, जिनको उसे गुफा में ले-जाने की आज्ञा दी गई थी, उसको बाहों से पकड़कर वहाँ से ले गईं। भामिनी उनसे झगड़ा करना अपनी शक्ति का अपव्यय समझकर उनके साथ चल पड़ी। श्राविकाएँ उसको गुफा संख्या पाँच में ले गईं और वहाँ उसको बैठाकर उन्होंने गुफा का द्वार बाहर से बन्द कर दिया।

भामिनी कितने ही काल तक किंकर्तव्यविमूढ़ की भाँति बैठी रही। द्वार बंद हो जाने से गुफा सर्वथा अँधेरी हो गई थी। उसमें किसी अन्य स्थान से प्रकाश अथवा हवा आने के लिए मार्ग नहीं था। आरम्भ में तो उसको इतना अँधेरा प्रतीत हुआ कि वह अपने को भी नहीं देख सकती थी, परन्तु धीरे-धीरे एक तो उसकी आँखें उस अंधकार में देखने की अभ्यस्त हो गईं, और दूसरे, गुफा के द्वार में, जो सुदृढ़ लकड़ी के तख्तों से बना था, छिद्र थे, उनमें से धीमा-धीमा प्रकाश आने लगा था। अब भामिनी को गुफा की रूपरेखा कुछ-कुछ दिखाई देने लगी थी।

यह तो वह सुन चुकी थी कि बौद्ध विहार राज्यसंरक्षण के कारण राजनैतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षड्यन्त्रों के अड्डे बन चुके हैं, परन्तु वह संघ के जनता पर इतने प्रभाव को, जिससे वे भारत-सम्राट् और सम्राज्ञी को पकड़कर बन्दी बना सकें, नहीं जानती थी। आज उसने देखा कि जो लोग महाराज की जय-जयकार किया करते थे, वही महारानी को बन्दी बनाकर विहार में ले आए हैं।

जब वह एकान्त में बैठी हुई विचार करने लगी तो उसको वज्रबाहु और सम्प्रति की याद आई। उसको विश्वास था कि वज्रबाहु आसानी से पकड़ा नहीं गया होगा। उसके पास खड्ग है। यदि उसने उसे निकालकर चलाने का यत्न किया होगा, तो क्या कुछ हो गया होगा, वह अनुमान नहीं लगा सकती थी। वह लड़ते-लड़ते पकड़ लिया गया होगा अथवा मार डाला गया होगा, कहना कठिन था।

उसका विचार था कि सम्प्रति भी महाराज की भाँति पकड़ लिया गया होगा। उसको भय था कि महाराज की भाँति उसका पुत्र कुणाल भी क्या, अपने राज्यारोहण के लिए अपने पुत्र तक को मार डालेगा? क्या वह अपने पिता और पुत्र दोनों की हत्या करेगा? इस विचार से उसके समस्त शरीर में कँपकँपी हुई और उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गए। उसने इस प्रकार के भयंकर विचार अपने मन से निकाल देने का यत्न किया। इसलिए वह अपने विषय में सोचने लगी। वह विचार करती थी कि वह अति दुर्भागिनी है। माँ के गर्भ में आते ही उसके देश पर आक्रमण हुआ और उसके सब सम्बन्धी मारे गए। उसकी माँ बची तो वह भी उसको जन्म देकर परलोक गमन कर गई। वह सज्ञान हुई तो उसका पिता-तुल्य संरक्षक मन्दिर से निकाल दिया गया। वह एक श्रावक से प्रेम करने लगी और उसको एक वेश्या की लड़की ऐसे उड़ाकर ले गई, जैसे चील मांस के टुकड़े को झपटकर ले जाती है। पश्चात् वह भारत की सम्राज्ञी के सम्पर्क में आई और कुमार से उसका विवाह होने का प्रस्ताव हुआ तो इसके होते ही कुमार सम्प्रति विपद्ग्रस्त हो गए और वह स्वयं बन्दी बना ली गई। वह मन में विचार करती थी कि न जाने उसने कौन-से पाप किए हैं कि जो सुख और शान्ति संसार में सबको प्राप्त है, वह उससे वंचित रखी जा रही है!

जब वह गुफा में लाई गई थी, तब वहाँ पर रखी हुई लकड़ी की एक खाट पर बैठा दी गई थी। अभी तक वह उसी पर बैठी हुई अपने मन में अपने भाग्य पर मनन कर रही थी। अब उसने विचारजगत् से निकल अपने बन्दीगृह की देख-भाल करनी उचित समझी। लकड़ी की खाट, जिस पर वह बैठी थी, गुफाद्वार के ठीक सामने लगी थी। गुफा के कोने में जल का कलश रखा था। गुफा के दूसरे कोने में मल-मूत्र का स्थान बना था। इस समय वह स्थान साफ था। इस कारण वहाँ किसी प्रकार की दुर्गन्ध नहीं थी।

उसने उठकर गुफा को नाप डाला। वह दस पग लम्बी और आठ पग चौड़ी थी। अब वह पुनः चौकी पर बैठ गई और अपने भाग्य पर विचार करने लगी। प्रातःकाल से लेकर विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में से निकलने के कारण उसका मस्तिष्क थक गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, इस कारण वह लेट गई और एकान्त स्थान तथा शान्ति के कारण सो गई। उसकी निद्रा तब भंग हुई, जब उसके कानों में दूर से किसी के मधुर स्वर में कुछ उच्चारण करने का शब्द हुआ। उसको पहले तो यह केवल मक्खियों की भिनभिनाहट-सी ही लगी, परन्तु ज्यों-ज्यों उसकी निद्रा दूर होती गई, त्यों-त्यों वे शब्द उच्च और स्पष्ट स्वर में सुनाई देने लगे। एक व्यक्ति पहले कहता था, "बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि", पश्चात् कई स्त्री-पुरुष मिलकर वही मन्त्रोच्चारण करते थे। पहले तो भामिनी को इस पर हँसी आई। उसने समझा कि श्रावक लोग अपना मनोविनोद कर रहे हैं। परन्तु ये शब्द-संगीत अथवा प्रार्थना, जो कुछ भी इसको कहा जाए, निरन्तर चलती रही। यहाँ तक कि स्वर मधुर और धीमा होने पर भी अप्रिय प्रतीत होने लगा।

वह उठकर खाट पर बैठ गई और कानों में अँगुली देकर आवाज को अनसुनी करने का यत्न करने लगी। परन्तु इसमें वह सफल नहीं हुई। शब्द निरन्तर ऐसे आता रहा मानो गुफा का पूर्ण वायुमण्डल कम्पित होकर वही शब्द उच्चारण कर रहा हो। वह कानों में उँगली दिए बैठी रही।

इस समय द्वार के छिद्रों में से आने वाला प्रकाश धीमा पड़ने लगा था। इससे उसने अनुमान लगाया कि सायंकाल होने जा रहा है। रात हो गई, घटाटोप अँधेरा छा गया। अब भी वह शब्द कानों में पड़ रहा था। उसको भूख लगी, परन्तु यहाँ खाने को कुछ नहीं था। उसका विचार था कि भोजन के लिए कोई पूछने आएगा, परन्तु कोई नहीं आया। गुफा में अँधेरा था, इस कारण उसने टटोलकर कलशे में से थोड़ा जल लेकर पिया और पुनः खाट पर लेट गई।

मन में अनेकानेक विचारों में लीन वह पड़ी रही। कब वह "बुद्धं शरणं....." का शब्द बन्द हुआ और कब वह सो गई, उसको पता नहीं। जब वह उठी तो पुनः वैसे ही "बुद्धं शरणं गच्छामि" का शब्द हो रहा था। द्वार के छिद्रों में से प्रकाश फिर आने लगा था।

थोड़ी देर में दो श्राविकाएँ द्वार खोल भीतर आ गईं और उनमें से एक बोली, "बहन, चलो।"

"कहाँ?" भामिनी ने पूछा।

"शौचादि के लिए।"

भामिनी भी इसकी आवश्यकता को अनुभव कर रही थी। वह बिना कुछ और पूछे चल पड़ी। स्नानादि से निवृत्त होकर आई तो उसकी गुफा पुनः धो-पोंछकर साफ कर दी गई थी। उसको चौकी पर बैठाकर भोजन दिया गया। अभी भी उसके कानों में "बुद्धं शरणं....." इत्यादि की ध्वनि पड़ रही थी। भोजन के समय श्राविकाएँ उसके सामने खड़ी थीं। उसने उनसे पूछा, "प्रार्थना कभी बन्द भी होती है अथवा नहीं?"

"मध्याह्न के समय एक प्रहर के लिए और रात्रि के समय दो प्रहर के लिए। शेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच प्रहर यह चलती रहती है।"

"कौन उच्चारण करता है इसका?"

"बारी-बारी से कई लोग करते हैं।"

"मैं इससे तंग आ गई हूँ।"

"अभ्यास से यह ध्वनि सुखप्रद प्रतीत होने लगेगी।"

"मैं आपकी अध्यक्षा से मिलना चाहती हूँ।"

"वे स्वयं मिलने आएँगी, इस समय तो चैत्य का कार्य देख रही हैं।"

भामिनी ने भोजन किया। इसमें दलिया, दूध और शाक-भाजी थी। आठ प्रहर के पश्चात् खाने के मिलने पर वह भूख से व्याकुल हो रही थी। इस कारण वह साधारण भोजन भी उसको बहुत स्वादिष्ट लग रहा था।

सुनन्द की योजना सफल हुई। महाराजा अशोकवर्द्धन राजप्रासाद के भूम्यन्तर्गत आगार में बन्द कर दिए गए। महारानी पद्मावती को पहले तो कल्याणी के चैत्य में पहुँचा दिया गया, फिर वहाँ से हिमालय के पार्श्व में एक चैत्य में बन्दी बनाए रखने को कह दिया गया। महामात्य विष्णुचरण को भी प्रासाद के एक आगार में ही बन्द कर रखा गया था। सम्प्रति और वज्रबाहु भागने में सफल हो गए थे।

यद्यपि सम्प्रति के स्वतन्त्र रह जाने से सुनन्द बहुत चिंतित था, तथापि वह इस अवसर को उनकी खोज में व्यर्थ गँवाना नहीं चाहता था। उसने प्रजापरिषद् की बैठक हो जाने दी और उसमें वह घोषणा, जो उसने महाराज के समक्ष स्वयं लिखी थी, पढ़कर सुना दी।

सुनन्द ने प्रजापरिषद् की बैठक में आमन्त्रित बहुत-से श्रावकों को घुस आने की स्वीकृति दे दी थी, और जहाँ एक सहस्र लोगों के बैठने का स्थान था, वहाँ लगभग दो सहस्र श्रोतागण बैठा दिए गए थे। भवन में लोग खचाखच भरे थे। तिल धरने को स्थान नहीं था। मंच पर सिंहासन रिक्त पड़ा था। सिंहासन के दाहिनी ओर कुमार कुणाल बैठा था, उसके साथ ज्योति अपनी पूर्ण सजधज के साथ विराजमान थी। उनके पीछे श्रावक-मन्त्रीगण थे। सिंहासन के बाईं ओर नगरसेठ और अन्य प्रतिष्ठित बौद्ध उपासक बैठे थे। सिंहासन पर महाराज का प्रतीक उनका मुकुट धरा था।

यद्यपि महाराज और महामात्य का बन्दी किया जाना अत्यन्त गुप्त रखा गया, तथापि नगरभर में यह समाचार कानों-कान फैल गया। अतएव नगर के वे लोग, जो बौद्ध धर्मानुयायी नहीं थे, परिषद् की बैठक में नहीं आए। नगर में भी जो उत्साह प्रातः दिखाई दिया था, धीरे-धीरे ठंडा प्रतीत होने लगा। यद्यपि बौद्ध लोग भलीभाँति संगठित थे, तो भी उनकी संख्या अबौद्धों से कम थी। पूर्ण नगर में वे एक-तिहाई से भी कम थे। बौद्धों के अतिरिक्त सबका उत्साह महाराज के बन्दी बनाए जाने के समाचार से शिथिल हो रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासकों ने अपने घर सजाए थे और सायंकाल के समय दीपमाला करने का आयोजन किया था। परन्तु अन्य लोग अपने घरों में शोक मना-मनाकर बैठे रहे।

परिषद् की बैठक में सुनन्द ने बताया कि महाराज रुग्ण हैं, परन्तु इस बात पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। फिर भी किसी ने उठकर विरोध नहीं किया। सब कार्यक्रम ऐसे चलता रहा, जैसे कोई शोक का कार्य चल रहा हो। पूर्ण बैठक आधी घड़ी में समाप्त हो गई।

सायंकाल नगर में एक सार्वजनिक सभा होने वाली थी। उस सभा में पहुँचने के लिए युवराज कुणाल और युवराज्ञी ज्योति की सवारी निकाली गई। बौद्ध उपासकों ने सवारी का स्वागत किया और मार्ग में सवारी को खड़ा कर युवराज और युवराज्ञी को भेंट दी। जो बौद्ध नहीं थे, वे अपनी दुकानें बन्द कर घरों को चले गए। जिनके मकान उसी मार्ग पर थे, जहाँ से सवारी जा रही थी, उन्होंने अपने मकानों की खिड़कियाँ बन्द कर लीं।

सुनन्द को प्रजा-परिषद् की अवस्था से ज्ञान हो गया था कि सार्वजनिक प्रदर्शन भी वैसा ही फीका रहेगा। इस कारण उसने सवारी को सफल बनाने के लिए सब श्रावकों को आज्ञा कर दी थी कि अपना सब काम छोड़कर सवारी देखने के लिए मार्ग पर आ जाएँ। इसी प्रकार उपासकों को यह कह दिया गया था कि नगर के सब उपासक सवारी के साथ रहें। सुनन्द स्वयं युवराज के हाथी पर युवराज और युवराज्ञी के पीछे बैठा था। वह देख रहा था कि यद्यपि नगर के मार्ग पर सवारी देखनेवाले बहुत अधिक थे, तथापि मार्ग पर के दुकानदार और मकानोंवाले इस समारोह में बहुत कम भाग ले रहे थे। कुणाल कुछ नहीं देख रहा था, परन्तु ज्योति और सुनन्द दोनों इस जनता के मूक बहिष्कार को समझ रहे थे। श्रावक और बौद्ध उपासक युवराज कुणाल की जयघोष से आकाश गुंजायमान कर रहे थे, परन्तु ज्योति मन-ही-मन यह समझ रही थी कि यह सभी कुछ बनावटी है। वह अपने मन में इन बहिष्कार करनेवालों की समर्थन-प्राप्ति का उपाय सोच रही थी। उसके मन में कई बातें आ रही थीं। परन्तु वह सवारी के हाथी पर बैठी कुछ कर नहीं सकती थी। सुनन्द के मन में भय समा रहा था कि कहीं वज्रबाहु जैसा कोई हिंसक व्यक्ति इस सवारी में आकर विघ्न न मचा दे। वह भलीभाँति जानता था कि पाँच-दस खड्गधारी उसके सभी बने-बनाए काम को विध्वंस कर सकते हैं। इस कारण वह निरन्तर हाथी चलानेवाले को कह रहा था, "शीघ्रता करो ! शीघ्रता करो !"

एक स्थान पर जब उपासकों ने युवराज का जयघोष किया तो किसी ने मकान की छत पर से महाराज प्रियदर्शी का जयघोष कर दिया। इसके पश्चात् युवराज के साथ-साथ महाराज का भी जयघोष होने लग गया। सुनन्द इससे बहुत घबराया। परन्तु ज्योति ने पीछे झुककर सुनन्द को कह दिया, "चलने दीजिए, इस जयघोष को मत रोकिए !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार ज्यों-त्यों कर सवारी निश्चित स्थान पर पहुँची और वहाँ पर भी उपस्थित लोगों में बहुतों के मुख क्रोध से लाल देख, सुनन्द सब काम आधी घड़ी में ही समाप्त कर प्रासाद को लौट आया।

जब यह कार्य हो रहा था, राजप्रासाद में दंपा, जो बौद्ध नहीं थी और जिसके मन में ज्योति के महारानी बनने से अपने बन्दी किए जाने का भय समा रहा था, निश्चल नहीं थी। उसने जब वज्रबाहु और सम्प्रति को प्रासाद-द्वार पर रथ में सवार होकर भाग जाते देखा तो समझ गई कि अभी विरोधी पक्ष जीवित है। उसने इस पक्ष में सम्मिलित होकर अपनी जान बचाने का विचार किया। उसको वज्रबाहु के खड्ग से सैकड़ों श्रावकों और उपासकों के भेड़ों की भाँति भाग जाने का दृश्य स्मरण कर हँसी आ जाती थी। इससे उसके मन में उत्साह बँध गया था और वह इस पक्ष की सहायता करने के लिए विचार करने लगी थी। इस समय उसको विष्णुचरण की याद आ गई। उसने समझा कि यदि वह महामात्य को छुड़ा सके तो जहाँ वह इस पक्ष की भारी सहायता करेगी, वहाँ वह कुमार इत्यादि सभी को अपने पक्ष में कर लेगी।

दंपा, महारानी के निवास-गृह के भूमि वाले तल पर एक आगार में रहती थी। वहाँ जाकर वह महामात्य को छुड़ाने की योजना बनाने लगी।

महामात्य को छुड़ाना इतना सुगम नहीं था, जितना कि वह समझ रही थी, फिर भी परिस्थिति ने उसकी सहायता की।

प्रजापरिषद् की बैठक में जनता के मुखों पर विषाद के लक्षण देख सुनन्द ने सब श्रावकों और उपासकों को अपने सब काम छोड़कर युवराज की सवारी में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दी। दंपा ने भी अपने आगार में बैठे-बैठे यह आज्ञा सुनी। इसको सुनते ही उसके मन में आशा अंकुरित हो उठी। वह आगार से निकल आई और उस आगार के सामने जा खड़ी हुई, जहाँ महामात्य बन्दी किया हुआ था। उस आगार की रक्षा के लिए दो श्रावक नियुक्त किए गए थे, परन्तु वे दोनों सुनन्द की आज्ञा पा बन्दी के आगार को ताला लगाकर सवारी देखने चले गए थे। आगार की चाबी वे प्रासाद के संरक्षकों के नायक को दे गए थे।

दंपा ताली को खोजने का उपाय सोचने लगी। ताला तोड़ने का प्रश्न ही नहीं था। तोड़ने में जो शब्द होता, उससे यह कार्य असम्भव ही था। इस कारण उसका उपाय नीतियुक्त था। वह सम्प्रति के निवास-गृह की पाकशाला में चली गई और पाचक को, जो सवारी देखने के लिए जाने की तैयारी में था, बोली, "महाप्रभु ने मुझको आज्ञा दी है कि महामात्य को भोजन करवाकर ही सवारी देखने जाऊँ। वृद्ध व्यक्ति कहीं भूख से मर गया तो बहुत पाप लगेगा।"

पाचक विचार करने लगा। उसको भी सवारी देखने जाना था। इस कारण बिना बहुत-कुछ विचार किए वह भोजन, जो कुछ बचा-खुचा रखा था, एक थाल में परसकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंपा के साथ उस आगार को चल पड़ा, जिसमें महामात्य बन्दी था। वहाँ पहुँच जब आगार को ताला लगा देखा और रक्षक श्रावकों को नहीं देखा तो विस्मय में दंपा का मुँह देखने लगा। दंपा भी स्वयं विस्मय करने लगी। उसने कहा, "ये मूर्ख न जाने कहाँ चले गए हैं?"

दंपा की इच्छा थी कि पाचक नायक के पास जाकर चाबी ले आए। इस कारण उसने कहा, "महाराज! जाओ तो ज़रा चाबी ले आओ!"

पाचक ने तनिक क्रुद्ध होकर कहा, "मैं तो भोजन लिये खड़ा हूँ, तुम खाली खड़ी इतना काम भी नहीं कर सकती?"

विवश दंपा को प्रासाद के द्वार पर जाना पड़ा। मुख्य संरक्षक भी सवारी देखने जाने की तैयारी कर रहा था। दंपा ने उसको जाकर कहा, "नायक! महाप्रभु सुनन्द ने मुझको आज्ञा दी है कि महामात्य को भोजन करवाकर ही सवारी देखने जाऊँ। भोजन तो पाचक लेकर आ गया है। पर बंदी के आगार के संरक्षक ताला लगाकर चले गए हैं। आप चलकर ताला खोल दीजिए, जिससे भोजन आगार में रखा जा सके।"

"महाप्रभु बहुत ही विचित्र व्यक्ति हैं। जब बन्दी को आगार में रखा जा रहा था, तब मैंने पूछा था कि इनके भोजन का क्या होगा? कहने लगे कि मरने दो इनको! अब कहला भेजा है कि भोजन करवा दो। मुझसे यह नहीं हो सकता। मैं सवारी देखने जा रहा हूँ।"

"नायक महोदय! पाचक खाना लिये आगार के द्वार पर खड़ा है। मैंने आपको बता दिया है कि महाप्रभु की यह आज्ञा है। आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने!"

इस प्रकार की बात सुनकर नायक घबरा उठा। उसने दंपा की ओर देखकर कहा, "पर मुझे सवारी देखने जाना है।"

"मैं भी जाना चाहती हूँ, तो जाऊँ?"

"अच्छा एक काम करो। मैं ताली तुमको दे देता हूँ, तुम उनको खाना खिलाकर ताला बन्द कर ताली अपने पास रख लेना। मैं सायंकाल आकर ले लूँगा।"

"नहीं बाबा! मैं ताली तुम्हारी पत्नी को दे जाऊँगी।"

"पर वह तो मेरे साथ जा रही है। बात यह है कि हमारे एक सम्बन्धी का घर राजमार्ग पर है। हम वहाँ पर बैठकर सवारी देखना चाहते हैं। यदि हम तुरन्त न गए तो मार्ग रुक जाएगा और पश्चात् हम उस घर तक नहीं पहुँच सकेंगे।"

दंपा मन-ही-मन इस प्रस्ताव से बहुत प्रसन्न थी। फिर भी उसने मुँह पर असन्तोष की मुद्रा बनाकर कहा, "मैंने सवारी मार्ग पर ही खड़े होकर देखनी है और न जाने कितनी देरी इस काम में लग जाएगी।"

"देरी क्यों लगेगी! तुमने भोजन उनके मुख में तो देना नहीं। वहाँ उनके द्वार को बाहर से ताला लगाकर चली जाना। बर्तन आकर सैनिक निकाल लेंगे।"

फिर भी दंपा के मुख पर असन्तोष की मुद्रा बनी ही रही। वह अन्यमनस्क भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से खड़ी रही। नायक ने ताली निकाल दंपा के हाथ पर रख दी और कहा, "तनिक ध्यान से काम करना। यों तो महामात्य अतिवृद्ध हैं, वह भाग नहीं सकते, फिर भी जब खाना भीतर रखने लगो तो उसे रखकर तुरन्त द्वार बन्द कर ताला लगा देना।"

दंपा विचारमग्न वहीं खड़ी थी कि नायक अपनी स्त्री को साथ लेकर चला गया। जब वह दूर निकल गया तो दंपा लम्बे-लम्बे डग भरती हुई महामात्य के आगार की ओर चल पड़ी। वहाँ पाचक अभी भी भोजन का थाल लिये खड़ा-खड़ा मन में दंपा को गाली दे रहा था। उसको भी सवारी देखने जाना था और विलम्ब हो रहा था। दंपा ने वहाँ पहुँचते ही पूछा, "खाना ठण्डा तो नहीं हो गया?"

"ठंडा नहीं तो क्या खड़े-खड़े गरम होगा? देखो दंपा! जल्दी करो, मुझे जाना है।"

"महाराज! जाना तो सबको ही है। नायक भी जा रहा था, बहुत कठिनाई से उससे चाबी ली है।"

दंपा ने चाबी लगाके द्वार खोल दिया और पाचक को, जो भोजन का थाल लिये हुए था, साथ लेकर भीतर आ पहुँची। विष्णुचरण आगार के एक कोने में बैठा हुआ था। इनको द्वार खोल भीतर आते देख वह चौंक पड़ा। उसको भोजन आने की आशा नहीं थी। उसका विचार था कि इस आगार से अब उसका शव ही बाहर निकलेगा। परन्तु भोजन का थाल देखकर पूछने लगा, "यह भोजन किसके लिए लाए हो?"

उत्तर दंपा ने दिया, "महाप्रभु ने आपके लिए भेजा है।" इतना कह उसने थोड़ा-सा आँख को मींचकर संकेत कर दिया।

विष्णुचरण समझ गया कि कुछ विशेष बात है। उसने कहा, "विष मिलाकर लाई हो इसमें?"

"नहीं भगवन्! मैंने अपने हाथ से तैयार किया है।" पाचक ने विनीत भाव से कहा।

दंपा ने पुनः आँख से संकेत कर कहा, "श्रीमान्, थोड़ा-सा पहले मुझको खिला दीजिए जिससे संशय निवारण हो जाय।"

विष्णुचरण हँस पड़ा और बोला, "हाथ धोने को थोड़ा जल लाओ।" विष्णुचरण की इच्छा थी कि एकान्त में दासी से पूछे कि उसके संकेतों का क्या अर्थ है। जल्दी में पाचक जल लाना तो भूल ही गया था। इस कारण वह जल लेने चला गया। जब वह गया तो दंपा ने कहा, "महाराज! भाग जाइए, यह सब प्रपंच मैंने आपको छुड़ाने के लिए किया है।"

विष्णुचरण समझकर विस्मय में दासी का धन्यवाद करने लगा। पश्चात् उसने पूछा, "तुम कौन हो?"

"मुझको सब दंपा कहते हैं, मैं महारानी जी की दासी हूँ।"

"तो चलो, पाचक के आने से पूर्व ही चल दें।" दंपा यद्यपि जानती थी कि चाबी उसके पास है, इस पर भी वह नहीं चाहती थी कि कोई विपत्ति आ जाए। इस कारण वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठ खड़ी हुई और दोनों आगार से बाहर निकल आए। दंपा ने द्वार बंद कर ताला लगा दिया। वहाँ से वह महामात्य को अपने आगार में ले गई। उनको भीतर बन्द करते हुए उसने कहा, "मैं पाचक को समझाकर आती हूँ।"

बाहर से ताला लगा के वह पुनः महामात्य के बन्दी-गृह की ओर पहुँची। पाचक हाथ में जल का लोटा लिये आगार के बाहर खड़ा था। दंपा ने लोटा अपने हाथ में लेकर कहा, "तुम जाना चाहो तो जा सकते हो। महामात्य ने कहा है कि वे शौचादि से निवृत्त हुए बिना भोजन नहीं कर सकते। इस कारण भोजन मैंने उनके सामने रख दिया है, और बाहर से ताला लगाकर चली आई हूँ। हम दिनभर उनकी प्रतीक्षा तो कर नहीं सकते।"

पाचक ने जल का लोटा उसको देते हुए कहा, "दंपा! तुम जानो तुम्हारा काम जाने। मैंने भोजन दे दिया है। अब मैं जा रहा हूँ। लोटा खाली हो जाने पर पाकशाला में पहुँचा देना।"

पाचक चला गया तो वह अपने आगार में जा पहुँची। इतने समय में विष्णुचरण ने अपने वहाँ से निकल जाने की योजना बना ली थी। दंपा के आते ही उसने अपने नाई को बुलाने के लिए भेज दिया और यह भी कह दिया कि किसी श्रावक के कपड़े भी कहीं से ले आए। दंपा शीघ्रता से चली गई। यह भलीभाँति जानती थी कि यदि सुनन्द के आने से पहले महामात्य भाग नहीं सके तो उनके लिए और अपने लिए भी बहुत बुरा होगा। इस कारण वह भागी हुई गई और महामात्य के नाई को, जो अपने स्वामी जी के पकड़े जाने से शोकमग्न घर में बैठा था, हजामत के सामान के साथ ले आई। इस भाग-दौड़ में बहुत समय लग गया था। इस प्रकार जब तक महामात्य सिर, मुँह तथा दाढ़ी मुँडवाकर तथा पीत वस्त्र पहनकर दासी के आगार से बाहर निकला, तब तक सायंकाल हो चुका था। उस घुसमुसे प्रकाश में वह प्रासाद में बाहर निकल गया। जाने से पूर्व उसने दंपा से पूछा, "तुम क्या करोगी?"

"मैं अब राजप्रासाद में तो रह नहीं सकती, यहाँ से अभी चली जाऊँगी। पश्चात् करने को अभी कुछ समझ में नहीं आ रहा।"

"अच्छी बात है, तुम मुझे दो दिन में मिलना। मेरा पता तुम शिवमन्दिर के पुजारी से पूछ लेना।"

महामात्य बौद्ध श्रावकों की भाँति आँखें भूमि की ओर किए हुए राजप्रासाद से निकल गया।

युवराज-घोषणा का समस्त कार्यक्रम नीरस रहा। जब युवराज और युवराज्ञी सार्वजनिक सभा से लौट आए तो महाप्रभु प्रासाद में मन्त्रियों के लिए नियत गृहों में गया; फिर अपने आगार में बैठ गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा। उस दिन उसको असफलता मिली थी। साथ ही उसको भविष्य में होने वाली असफलता के लक्षण भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई दिए थे। इससे उसको भारी चिन्ता लग गई थी। एक बात उसने देखी थी कि महाराज की ख्याति बहुत अधिक थी और उनके इस उत्सव में उपस्थित न होने से ही वह फीका पड़ रहा था। उसको एक बात सूझी। वह कुछ विश्राम कर युवराज के आगार में पहुँच उनसे मिला। युवराज कुणाल ज्योति से उस दिन की पूर्ण कथा सुन रहा था। वह स्वयं तो कुछ भी देख नहीं सकता था, फिर भी उसको पूर्ण कार्यक्रम उत्साह-रहित-सा प्रतीत हुआ था। युवराज के इस अनुमान का ज्योति ने समर्थन किया। ज्योति का कहना था, "महाराज ! आप राजगद्दी के समीप पहुँच गए प्रतीत होते हैं, परन्तु मैं समझती हूँ कि इन श्रावकों ने आपको एक ज्वालामुखी पर्वत के मुख पर ले-जाकर बैठा दिया है। जनता के मन में संशय उत्पन्न हो गया है कि महाराज को कुछ धोखा दिया गया है। मैंने देखा है कि लोग आपकी जयघोष करते थे और बगलों में मुँह देकर हँसते थे। जब सवारी में महाराज का जयघोष होने लगा तो जहाँ लोगों के मुँह पर उत्साह दिखाई देने लगा था, वहाँ उनकी आँखों में क्रोध की ज्वाला भी दिखाई देती थी।"

कुणाल ने पूछा, "तुम्हारा गुरु निरुपम भद्रायण कहाँ है ?"

"आज वह चैत्य को वापस नहीं गया, इसलिए यहीं कहीं होगा।"

"उसको बुलवाओ !"

ज्योति ने ताली बजाई। एक दासी अन्दर आ गई। उसने दासी से कहा, "देखो, प्रभु भद्रायण कहीं हों तो उनको बुला लाओ।"

निरुपम आया तो युवराज ने उससे पूछा, "दिनभर कहाँ रहे प्रभु ?"

"महाराज, आपके साथ-ही-साथ रहा हूँ। महाप्रभु ने मुझको पूर्ण कार्य में आपके साथ ही रहने पर नियुक्त किया था।"

"तो क्या देखा आपने ? क्या लोग आज के उत्सव से प्रसन्न थे ?"

"महाराज ! यदि आप मुझे क्षमा करें तो मैं कहना चाहता हूँ कि आज की सभा एक शोकसभा ही प्रतीत होती थी। किसी के भी मुख पर प्रसन्नता अथवा उत्साह के लक्षण दिखाई नहीं देते थे। इसके अतिरिक्त उपासक और श्रावक भी अपने किए पर पश्चात्ताप कर रहे प्रतीत होते थे।"

"क्यों ?"

"महाराज ! आपके पूज्य पिता जी की अनुपस्थिति सबको अखर रही थी। जो लोग परिस्थिति को जानते थे, जहाँ वे आपका जयघोष करते थे, वहाँ महाराज के लिए दुःख भी प्रकट करते थे।"

"महाराज कहाँ हैं ?"

"तो आप नहीं जानते ?"

"मुझको बताया गया है कि वे रुग्ण हैं और इसी कारण कार्यक्रम में भाग नहीं ले सके।"

"यह बात सत्य नहीं है महाराज !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय सुनन्द वहाँ आ गया। उसके आने पर कुणाल ने पूछा, "महाप्रभु! महाराज का स्वास्थ्य कैसा है?"

"उन्हीं के विषय में मैं आपसे बात करने आया हूँ। वे आपके युवराज घोषित किए जाने को स्वीकार नहीं करते थे। इस कारण मंत्रिमंडल ने उनको प्रासाद के एक आगार में रोक रखा है। अब आप युवराज घोषित हो चुके हैं। इस कारण यदि आप स्वीकृति दें तो उनको आपके सम्मुख लाकर आज के कार्यक्रम की उनसे स्वीकृति ले ली जाए?"

"यदि उन्होंने अब भी मुझे युवराज स्वीकार नहीं किया तो?"

"मैं समझता हूँ कि वे मान जाएँगे।"

"वे हैं कहाँ?"

"आप वहाँ चलेंगे अथवा उनको यहाँ लाया जाय?"

"मैं उनके पास जाना चाहता हूँ।"

"तो चलिए।" सुनन्द यही चाहता था। वह कुणाल से क्षमा मँगवाकर महाराज को प्रसन्न कर लेना चाहता था। अतएव युवराज, ज्योति, सुनन्द और निरुपम उस आगार में जा पहुँचे, जहाँ महाराज को बन्दी बनाकर रखा गया था।

महाराज अशोक अपने राजगद्दी प्राप्त करने के दिनों की बातें स्मरण कर अपने जीवन से निराश हो एक कोने में भूमि पर ही लेटे हुए थे। जब ये सब लोग वहाँ आए तो वे समझ गए कि उनका अन्तकाल आ गया है। इस कारण वह चुपचाप बैठे इनके बोलने की प्रतीक्षा करने लगे। सबसे पहले ज्योति ने महाराज को झुककर नमस्कार की और उनके चरणस्पर्श किए। पश्चात् सुनन्द ने कहा, "महाराज! युवराज कुणाल आपकी चरण-वन्दना करते हैं।"

"क्या चाहते हो मुझसे युवराज?"

युवराज ने आवाज से यह जाना कि महाराज कहाँ बैठे हैं। वहाँ बैठ, हाथ पसार महाराज के पाँवों को स्पर्श करने का यत्न किया। ज्योति ने युवराज के हाथ पकड़कर महाराज के पाँवों की ओर करने चाहे, परन्तु महाराज ने पाँव पीछे हटा लिये और पूछा, "पहले यह बताओ कि मुझसे क्या चाहते हो?"

कुणाल ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं उस अपराध के लिए क्षमा माँगने आया हूँ, जो बिना मेरे ज्ञान के मेरे नाम पर किया गया है।"

"कौन-सा अपराध है, जो तुम नहीं जानते और तुम्हारे नाम पर किया गया है?"

"मुझको बताया गया था कि महाराज रुग्ण हैं और प्रजा-परिषद् की बैठक में नहीं आ सकते। उस समय कार्यक्रम इतनी जल्दी हो रहा था कि आपकी सेवा में उपस्थित होकर आपका समाचार लेने का अवकाश नहीं मिला। अब पूर्ण कार्यक्रम से अवकाश पाकर ज्यों ही आपके यहाँ होने का समाचार मिला है, क्षमा माँगने चला आया हूँ।"

"तो क्या तुम मुझको रुग्ण और चिकित्साधीन देख रहे हो?"

"नहीं महाराज! मुझसे यह असत्य भाषण किया गया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो असत्य भाषण करनेवालों को दण्ड मिलना चाहिए।"

"यथासमय सब हो जाएगा, महाराज! अब तो आप चलिए और स्नानादि से निवृत्त होकर भोजन करिए।"

"मैं चाहता हूँ कि महामात्य विष्णुचरण को यहाँ बुलाया जाए!"

"आपको अब अपने आगार में चलना चाहिए और मैं विष्णुचरण को आपकी सेवा में उपस्थित कर दूँगा।" कुणाल ने अति विनीत शब्दों से कहा।

महाराज अशोकवर्द्धन उठे और उन सब के साथ अपने आगार में पहुँच गए।

वहाँ पहुँचते ही महाराज ने पूछा, "सुनन्द! विष्णुचरण कहाँ हैं?"

"मैंने उनको बुलाने के लिए सेवक भेजा है।"

"महारानी पद्मावती और कुमारी भामिनी को भी बुलाओ!"

"वे ऐसे स्थान पर हैं, जहाँ से इस समय नहीं आ सकतीं। इस विषय में आपसे कल विचार-विनिमय करेंगे।"

कुछ प्रतीक्षा करने पर द्वार-संरक्षकों का नायक आया और सिर से पाँव तक काँपता हुआ कहने लगा, "श्रीमान्! महामात्य ने दंपा दासी के हाथ आज्ञा भेजी थी कि वह उनके भोजन का प्रबन्ध कर दे। इस कारण वह आगार की ताली ले गई थी। पुनः लौटी नहीं। अब महामात्य के आगार के बाहर का ताला तो लगा मिला है, परन्तु महामात्य उसमें नहीं हैं।"

"क्या?" विस्मय में महाराज ने पूछा।

"महाराज! दंपा उनको छुड़ा ले गई है।"

"अच्छा तो सम्प्रति और उनके अतिथि वज्रबाहु कहाँ हैं?"

"महाराज! वे तो दो श्रावकों की हत्या कर और बीस के लगभग उपासकों को घायल कर यहाँ से भाग गए हैं।"

इस परिस्थिति से तो महाराज घबरा गए। वह नहीं जानते थे कि विष्णुचरण, महारानी पद्मावती, भामिनी और सम्प्रति के विषय में उससे सत्य कहा जा रहा है अथवा झूठ। उनको भय था कि इन अहिंसावादी श्रावकों ने इन सबकी हत्या करवा दी है और अब समय प्राप्त करने के लिए टाल-मटोल कर रहे हैं। इससे वे अपने विषय में भी चिन्ता अनुभव कर रहे थे। क्या जाने कि उसको भी रात-रात में समाप्त कर दिया जाए! इससे वे गम्भीर विचार में मग्न स्नानादि का बहाना कर सबको विदा करते हुए कहने लगे, "अच्छा, तो अब आप सब जाइए। इस समय मैं थकान अनुभव कर रहा हूँ, भोजन कर विश्राम करूँगा।"

महाराज का विचार था कि बौद्ध लोग भी मांस खाते हैं, परन्तु वे जन्तु को छुरी अथवा कटार से नहीं मारते। रक्त को वे देख नहीं सकते। इस कारण भोजन के लिए मांस उपलब्ध करने के लिए वे जन्तु के गले में रस्सी बाँधकर उसका गला घोंटकर मारते हैं और फिर उसका मांस खाते हैं। महाराज मन में सोच रहे थे कि ये श्रावक शायद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको भी इसी प्रकार गला घोंटकर मार सकते हैं। इस विचार से महाराज काँप उठे।

जब सुनन्द और कुणाल इत्यादि चले गए तो महाराज अपने किसी विश्वस्त सेवक की खोज करने लगे, परन्तु उस दिन प्रातःकाल सब सेवकों को विद्रोह करते देख चुके थे। इससे किसी पर उनका मन नहीं जमता था। अतएव वे स्नानादि से निवृत्त हो भोजन करने के लिए पाकशाला में जा पहुँचे। वहाँ उनके लिए भोजन का थाल लगा हुआ था। ज्योति सामने खड़ी भोजन की व्यवस्था कर रही थी। इससे तो महाराज के मन का सन्देह और भी बढ़ गया। वे विचार करते थे कि यह वेश्या की लड़की क्या-कुछ नहीं कर सकती! इससे भोजन के सामने बैठ महाराज ने थाल पीछे हटा दिया और कहा, "मैं यहाँ पर खाना नहीं चाहता।"

"क्यों महाराज?" ज्योति ने पूछा।

"इसमें विष भी हो सकता है। इस समय यहाँ मेरा कोई विश्वस्त सेवक नहीं है। किसी अपरिचित के हाथ का बना खाना मैं नहीं खाऊँगा।"

"महाराज! वह मैंने अपने सामने बनवाया है। मैं जानती हूँ कि इसमें किसी प्रकार की खराबी नहीं है।"

"पर एक वेश्या की कन्या का कौन विश्वास कर सकता है?"

इस कथन पर ज्योति लज्जा से लाल हो उठी। फिर कुछ विचार कर बोली—

"यदि यह बात है तो महाराज! अपने भोजन में से थोड़ा-थोड़ा मुझको खिला दीजिए और पश्चात् आप खाइएगा।"

यह विधि महाराज को पसन्द आ गई। उन्होंने आज्ञा दी कि ज्योति के लिए एक थाल दिया जाए। अपने भोजन में से आधा उसको बाँट दिया और ज्योति के खाने की प्रतीक्षा करने लगे। जब ज्योति ने पेटभर खा लिया तो महाराज ने भोजन किया।

रात को सोने के समय भी महाराज को यह भय लगा रहा कि कोई आकर उनकी हत्या न कर जाए। अतएव अपने शयनागार को चारों ओर से भीतर से बन्द करके ही वे सोए थे। उस दिन से यह प्रथा बना दी गई कि कुणाल और ज्योति में बाँटकर महाराज भोजन खाने लगे और रात को अपने शयनागार को भीतर से बन्द करके सोने लगे। अगले दिन से विष्णुचरण, सम्प्रति और वज्रबाहु की खोज आरम्भ हो गई। दूर-दूर तक यह डुग्गी पिटवा दी गई कि सम्प्रति इत्यादि का पता देनेवाले को पुरस्कृत किया जाएगा। इस पर भी किसी का पता नहीं चला।

मध्याह्न के समय कल्याणी भामिनी से मिलने गई। वह गुफा में लकड़ी की खाट पर लेटी हुई थी। कल्याणी को गुफा में आते देख उठकर बैठ गई। कल्याणी सामने चौकी पर बैठ गई और कहने लगी, "तुम्हारे पिता वज्रबाहु कई श्रावकों और उपासकों की हत्या करके भाग गए हैं। उनको पकड़ने के लिए राजदूतों को चारों ओर भेजा गया है। कुमार सम्प्रति भी उनके साथ ही हैं। जब वे पकड़े जाएँगे तब उन पर श्रावकों की हत्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अभियोग चलाया जाएगा और उनके अनुसार दण्ड मिलेगा। इस कारण तुमको चैत्य में रखना ही उचित समझा गया है। तुम यदि बाहर चली गईं तो भय है कि कहीं तुम भी अपराधियों के साथ मिलकर अपराधी न बन जाओ।"

"तो विहार में मुझको किस रूप में रखा जाएगा? मैं यहाँ क्यों हूँ?"

"जब तक तुम श्राविका नहीं बन जातीं तब तक तुमको इसी गुफा में रखा जाएगा।"

"क्यों, मैंने क्या अपराध किया है?"

"तुम एक अपराधी की लड़की हो। जब तक तुम्हारे मन में अपने सम्बन्धियों के लिए मोह है, तब तक तुमको खुला नहीं छोड़ा जा सकता। तुम उनकी सहायता करने लगोगी।"

"और यदि मैं श्राविका बन जाऊँ तो?"

"तो यह समझा जाएगा कि तुमको अब संसार से मोह नहीं रहा। इससे तुम किसी पाप करने के योग्य नहीं रहीं। तब तुमको बन्दी नहीं रखा जाएगा।"

"क्या तब मैं विहार के बाहर भ्रमण के लिए जा सकूँगी?"

"यह बात तो वर्षों की परीक्षा के पश्चात् ही हो सकती है।"

"किस बात की परीक्षा करती हैं आप?"

"एक श्राविका को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से मुक्त होना चाहिए। उसे गम्भीर और शीतल स्वभाव वाली होना चाहिए। जब इतनी बात का विश्वास हो जाएगा तभी विहार से बाहर जाने की स्वीकृति दी जा सकती है।"

"विश्वास किसको होना आवश्यक है?"

"विहार की अध्यक्षा को।"

भामिनी को और कुछ पूछना शेष नहीं रहा। इस कारण उसने कहा, "इस सूचना के लिए मैं आपका धन्यवाद करती हूँ।"

"कुछ और चाहिए क्या?"

"यह जो हल्ला होता रहता है, इसको बन्द करवा दीजिए।"

"कैसा हल्ला?"

"यह 'बुद्धं शरणं गच्छामि' इत्यादि का।"

"यह यहाँ का नित्य का काम है। कुछ दिनों में सुनने का अभ्यास हो जाएगा।"

भामिनी अपनी वर्तमान अवस्था पर गम्भीर विचार में मग्न हो गई। उसको इस बात का भान तब हुआ, जब कल्याणी चली गई और उसके साथ आई श्राविकाओं ने गुफा का द्वार बन्द कर दिया।

इस प्रकार चौबीस घंटे में एक बार भोजन मिलने से और एक ही बार बाहर निकल सकने से वह उदास रहने लगी। दिन-दिन कर दो मास बीत गए। इस अवधि में वह अति दुर्बल हो गई। उसकी पाचनशक्ति कम हो गई और सिर में चक्कर आने लगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। उसने कल्याणी को, जो उसको नित्य मिलने आती थी, अपनी रुग्णावस्था के विषय में बताया, परन्तु उसको उसने यह कहकर टाल दिया कि जब धीरे-धीरे स्वभाव पड़ जाएगा तब इसी कार्यक्रम में आनन्द का अनुभव करने लगोगी।

इसके साथ ही दिनभर "बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि" की पुकार उसके कानों में पड़ती रहती थी। यों तो दो दिन में ही उसको इसके सुनने का अभ्यास हो गया था, परन्तु अब उसको इस मन्त्र में कुछ रस तथा सार भी प्रतीत होने लगा था। कभी-कभी बिना प्रयास के ही उसके मुख से स्वर के साथ स्वर निकलने लगे थे। वह भी 'बुद्धं शरणं गच्छामि' इत्यादि गाने लगी थी। जब वह यह कहती तो उसको अपने कहने पर लज्जा आने लगती थी। परन्तु धीरे-धीरे वह लज्जा भी चली गई। अब तो सोते-जागते उसके मुख से स्वयमेव यह मंत्र निकलने लगता था।

दो मास के पश्चात् उसको नींद बहुत कम आने लगी थी और उसको अपना बौद्ध धर्म के विपरीत होना निरर्थक प्रतीत होने लगा था।

एक रात को उसको बहुत रात बीतने तक भी नींद नहीं आई, परन्तु जब सोई तो उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह स्वप्न देखने लगी है।

वह देख रही थी कि वह गुफा में नहीं, अपितु एक विशाल मैदान में खड़ी है। वहाँ वह चारों ओर से श्राविकाओं से घिरी हुई है। उन श्रावकों और श्राविकाओं में सुनन्द और कल्याणी भी हैं और सब-के-सब उत्सुकता से एक ओर देख रहे हैं। उसने भी उस ओर देखा। इस समय उसको दूर एक अतिमधुर स्वर में "बुद्धं शरणं गच्छामि····" का मंत्रगान सुनाई देने लगा। इस स्वर को सब सुन रहे प्रतीत होते थे। सब उस ओर ही देख रहे थे।

मंत्र का स्वर अधिक और अधिक स्पष्ट तथा समीप आता हुआ सुनाई देने लगा। अब उसको दिखाई दिया कि एक भारी भीड़ उस ओर से आ रही है। दूर क्षितिज के समीप से धूलि उठती हुई दिखाई दी। उसने देखा कि उसके चारों ओर खड़े श्रावक-श्राविकाएँ भी उस मधुर स्वर के साथ मिलकर मंत्र उच्चारण कर रहे हैं। एकाएक अनायास ही उसके मुख से भी वही मंत्र निकलने लगा। वह इस पर विस्मय करने लगी थी। फिर भी वह इस मंत्र के उच्चारण से अपने को रोक नहीं सकी। अभी वह अपने इस मंत्र के उच्चारण करने पर विस्मय कर रही थी कि उसको आने वाली भीड़ की रूपरेखा अधिक स्पष्ट दिखाई देने लगी। उसने देखा कि वह भीड़ पीतवसनधारी सिरमुँडे बौद्ध श्रावकों तथा श्राविकाओं की थी। ये संख्या में कई सहस्र थे और इनके आगे एक अति ओजस्वी भव्यमूर्ति श्रावक चला आता था। वह व्यक्ति अन्य सब साथियों से आधा हाथ ऊँचे सिर निकाले हुए था।

यह भीड़ जब कुछ समीप आई, तो इसका नेतृत्व करनेवाला व्यक्ति स्पष्ट दिखाई देने लगा। विहार में उसने तथागत भगवान् बुद्ध की पत्थर की एक मूर्ति देखी थी। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह नेतृत्व करनेवाला व्यक्ति उसी पत्थर की मूर्ति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकृति-जैसा है। उसको एक और चमत्कार दिखाई दिया। उस श्रावकों की भीड़ का नेतृत्व करने वाले पर आकाश से पुष्पवर्षा हो रही है। वह यह तो नहीं देख सकी कि पुष्प कहाँ से आ रहे हैं, परन्तु वे आ अवश्य रहे थे।

अब तो वे लोग बहुत ही समीप आ गए थे। उस भीड़ का नेतृत्व करनेवाले की मुखाकृति स्पष्ट दिखाई देने लगी थी। वह भगवान् स्वयं ही थे। उनके चारों ओर खड़े श्रावक, 'जय हो, जय हो' का नाद करने लगे। उसके मुख से भी यही शब्द निकलने लगे। कहीं से उसके हाथ में पुष्पमाला आ गई और वह आगे बढ़कर भगवान् के गले में पुष्पमाला डालने के लिए व्याकुल होने लगी। वह आगे बढ़ने लगी तो किसी ने उसका हाथ पकड़ उसको जाने से रोक दिया। उसके समीप कल्याणी खड़ी थी। उसने कहा, "उतावली क्यों हो रही हो, वे तो तुम्हारे लिए ही आ रहे हैं।"

"मेरे लिए?"

"हाँ।"

भामिनी अभी इसका अर्थ समझ ही रही थी कि वह भव्य मूर्ति, तथागत भगवान् बुद्ध, उसके सामने आकर खड़े हो गए। भामिनी उनके तेज को सह नहीं सकी। उसने वह पुष्पमाला, जो वह हाथ में पकड़े हुई थी, उनके गले में डालने के स्थान उनके चरणों में रखने के लिए झुक गई, परन्तु भगवान् ने उसको पकड़कर खड़ा कर दिया। उसने वह माला आगे की तो भगवान् ने उसके हाथों से माला ले ली। तत्पश्चात् भगवान् ने अपना कमल-समान हाथ उसके सिर पर रखकर आशीर्वाद दिया और कहा, "पूर्ण निर्वाण की भागिनी बनो!" भामिनी को इस आशीर्वाद को सुन अति आनन्द अनुभव हुआ। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि उसका सिर अत्यन्त शीतल हो गया है और उसको प्रगाढ़ निद्रा अनुभव होने लगी है। वह अभी भी अपने को स्वप्न में अनुभव कर रही थी। नींद के आने से उसको सुख प्रतीत हो रहा था। वह धीरे-धीरे सो गई। सब दृश्य उसकी आँखों से ओझल हो गया। चारों ओर घटाटोप अँधेरा छा गया।

जब उसकी नींद खुली तो गुफा के द्वार से प्रकाश आता दिखाई दिया। वे श्राविकाएँ, जो उसको शौचादि के लिए बाहर ले-जाने आया करती थीं, उसके समीप खड़ी थीं। इतनी देर तक सोए रहने पर वह अपने-आपको लज्जित अनुभव करने लगी थी। उसने आँखें नीचे किए हुए पूछा, "दिन निकल आया है क्या?"

"हाँ भन्ते!" एक श्राविका ने उत्तर दिया।

इस समय उसको स्वप्न की याद आई और उसको अनुभव हुआ कि उसका सिर अभी भी वैसा ही ठंडा है, जैसा उसको भगवान् के आशीर्वाद मिलते समय प्रतीत हुआ था। इससे अनायास ही उसका हाथ उठकर अपने सिर पर चला गया। ज्यों ही उसका हाथ सिर पर लगा कि उसके मुख से चीख निकल गई। उसके सिर पर केश नहीं थे। सिर श्राविकाओं की भाँति मुँडा हुआ था। इस समय उसकी दृष्टि अपने शरीर पर गई। वह पीत वस्त्र धारण किए हुए थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भामिनी अभी भी यही समझ रही थी कि वह स्वप्न देख रही है। इस कारण उसने पुनः आँखें मूँद लीं। समीप खड़ी श्राविकाएँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। इससे उसने आँखें खोलकर उनकी ओर देखा। वे उसकी ओर देख मुस्करा रही थीं। उसने कहा, "हँस क्यों रही हो?"

"तुम्हारा भयभीत मुख देखकर।"

"मेरे सुन्दर केश कहाँ गए?"

"भगवान् के चरणों में अर्पित हो गए।"

"किसने अर्पित किए?"

"तुमने स्वयं।"

"कब?"

"आज ब्राह्म मुहूर्त में।"

"वह तो पुष्पमाल थी?"

"तुम्हारे सुन्दर केश किसी पुष्पमाल से कम सुन्दर नहीं थे। तुम भगवान् के चरणों में दे रही थीं, परन्तु उन्होंने चरणों के स्थान अपने हृदय में लिये थे। तुम भाग्यशालिनी हो। पूर्ण निर्वाण की पथिक हो।"

भामिनी का मस्तिष्क चक्कर खाने लगा था। वह कुछ भी समझ नहीं सकी थी। वह सबको स्वप्नमात्र समझ रही थी। वह उसको पुष्पमाला समझ रही थी। वह भगवान् के आशीर्वाद से सिर में शीतलता व्याप्त हो रही समझ रही थी। वह समझी कि वह सब-कुछ सत्य था। उसने अपनी इच्छा से अपने केश भगवान् के चरणों में अर्पण कर दिए हैं और अब वह श्राविका है। इस प्रकार के विचारों से घबराकर वह उठी और सामने खड़ी श्राविकाओं के साथ शौचादि के लिए चल पड़ी। परन्तु जब वह गुफा से बाहर निकली तो साथ जा रही श्राविकाओं में से एक ने कहा, "अब तुमको दीक्षा मिल चुकी है और तुम इस चैत्य के भीतर घूमने के लिए स्वतंत्र हो।" इतना कहकर वे दोनों श्राविकाएँ उसको छोड़कर चली गईं।

वह उनको जाते देखती रह गई। पश्चात् नित्य-क्रिया के लिए वह शौचालय की ओर चली गई।

भामिनी के मस्तिष्क में बवंडर उठ रहा था। वह समझ नहीं रही थी कि यह सब कैसे और क्या हो गया है। इसी अन्यमनस्क भाव में वह नित्य-क्रिया में लीन थी और समझ नहीं रही थी कि यह क्या है।

जब वह स्नान कर रही थी तो एक श्राविका उसके समीप खड़ी उसको स्नान करते देखने लगी। भामिनी ने उसको अपनी ओर इतने ध्यान से देखते हुए पाया तो पूछा, "भगिनी, क्या देख रही हो?"

"तुम्हारी सुन्दर काया।"

"किसलिए हो रहा है यह सब?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"संसार में बहुत-सी बातें हैं, जो हम तुच्छ जीव समझ नहीं सकते। वे अपने ही बल में चलती जाती हैं। कोई उनको रोक नहीं सकता।"

भामिनी इस श्राविका की बात को सुन पुनः रात के स्वप्न अथवा जागृत अवस्था की बात स्मरण कर विचारमग्न हो गई। इस पर वह श्राविका भी स्नान करने लगी। भामिनी स्नान कर चुकी थी। अब कपड़े पहन रही थी। इस समय भी वह बाह्य जगत से दूर स्वप्नलोक में विचर रही थी। इस समय स्नान करते हुए साथवाली श्राविका ने पूछा, "भगिनी, मुझको पहचानती हो?"

"नहीं।" इतना कहते हुए भामिनी ने उसकी ओर देखा। वह पुष्करिणी में स्नान करती हुई उसकी ओर देख-देखकर मुस्करा रही थी। भामिनी को अब कुछ-कुछ स्मरण आया कि उसने इसको कहीं देखा है। परन्तु वह निश्चय नहीं कर सकी कि कहाँ?

इस पर उस श्राविका ने कहा, "जानने की इतनी शीघ्रता ठीक नहीं। मैं कल यहीं मिलूँगी। पुनः गुफा में मत जाना! पागल हो जाओगी।"

इतना कह उसने मुख मोड़ लिया। भामिनी अभी कपड़े पहन रही थी कि एक श्राविका आई और उससे कहने लगी, "बहन कल्याणी आपसे मिलना चाहती हैं।"

भामिनी उनके साथ कार्यालय की ओर चल पड़ी। आज कल्याणी अतिप्रसन्न मुस्कराती हुई उसकी ओर देख रही थी। भामिनी को आया देख उसने सामने रखे आसन की ओर संकेत कर उसको कहा, "बैठो!"

भामिनी बैठी तो उससे कहा, "सुनाओ! कोई कष्ट तो नहीं है?"

"शारीरिक कष्ट तो कुछ विशेष प्रतीत नहीं होता, परन्तु मस्तिष्क में गुबार उठ रहा है।"

"समय पाकर वह भी ठीक हो जाएगा। भगवान् तुम पर प्रसन्न हैं। तुम सौभाग्यशालिनी हो। तुम्हारा नाम अब कमला सुनन्द है। तुम आगार संख्या पाँच में रह सकती हो। वहाँ एक अन्य श्राविका भी है। वह तुम्हारे मनोरंजन में सहायक होगी।"

भामिनी इस सबका अर्थ नहीं समझ सकी। उसने कहा, "भगिनी! बहुत-कुछ समझना चाहती हूँ।"

"समय पर सब समझ में आ जाएगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ परिच्छेद

महाराज अशोकवर्द्धन ने जब देखा कि उसके सब साथी, जिनसे वे अपने विचारों का समर्थन पाने लगे थे, छिन्न-भिन्न हो गए हैं, तो वे शांत रहे। कुणाल के नाम पर राज्य चलने लगा। लेकिन वास्तविक राज्य महाप्रभु सुनन्द और ज्योति ही करते थे। ज्योति अतिप्रसन्न थी। उसके मन की अभिलाषा पूरी हो गई थी। इस आशा के पूर्ण होते ही उसके मन में अभिमान की मात्रा बढ़ने लगी। निरुपम को वह अब भी अपने पास रखे हुए थी। निरुपम भी, जो पहले विशालापुरी लौट जाना चाहता था और अभी भी भामिनी से विवाह की आशा लगाए हुए था, भामिनी के विहार में बन्दी होने से उस ओर से निराश हो चुका था। उसको यह विदित था कि भामिनी को उसके ज्योति से सम्बन्ध का ज्ञान हो चुका है। इससे वह विशालापुरी जाने का विचार छोड़ चुका था। वह अपने को युवराज के लिए उपयोगी सिद्ध करने का यत्न करता रहता था। इससे उसका सदैव ज्योति और महाराज के समीप रहना युवराज को अखरता नहीं था।

महाराज अशोकवर्द्धन भी नाममात्र का सम्राट् होने से अपने निवास-स्थान के एक आगार में पड़ा रहता था। श्रावक-श्राविकाएँ उसको चारों ओर से घेरे रहते थे। बौद्ध उपासक तक उसके समीप नहीं आने दिए जाते थे। फिर भी वे महारानी पद्मावती और सम्प्रति का समाचार जानने के लिए व्याकुल रहते थे। एक दिन महाराज ने कुणाल को बहुत डाँटा और कहा, "विचित्र युवराज हो तुम! अपनी माँ तक को इन श्रावकों के पंजे से छुड़ा नहीं सकते?"

"मैं भी यही अनुभव करता हूँ" कुणाल ने एकान्त पाकर कहा "कि आपके बोए हुए बीज काँटों के वृक्ष बनकर मेरे सामने आ रहे हैं।"

"यदि तुम अपनी माँ को यहाँ नहीं बुला सकते तो यह राज-पाट किस काम का है?"

कुणाल इस अवस्था पर लज्जित था। वह कई बार कह चुका था कि वह सुनन्द को कहकर महारानी को यहाँ बुलवा देगा। उसने सुनन्द को कहा भी था, परन्तु सुनन्द सदैव यह कहकर टाल जाया करता था कि महारानी जी इतनी विरक्त हो गई हैं कि वे न तो महाराज का मुख देखना चाहती हैं और ना ही आपसे मिलकर प्रसन्न होंगी।

कुणाल ने कहा, "तो मैं स्वयं उनसे मिलने के लिए कल यहाँ से जाना चाहता हूँ, बताओ कहाँ हैं?"

"यह भी मैं महारानी जी से पूछे बिना आपको नहीं बता सकता।"

"मुझे?....भारतसम्राट् को भी नहीं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक श्रावक सम्राट् से किसी प्रकार से भी कम सामर्थ्य नहीं रखता।"

इसके पश्चात् सुनन्द को इस विषय पर कुछ भी कहना उचित नहीं समझा गया।

परन्तु जब महाराज़ से डाँट पड़ी तो वह ज्योति से इस विषय में विचार-विनिमय करने लगा। रात के समय उसने ज्योति को अपने वक्षःस्थल से लगाते हुए कहा, "प्रिये, राज्य हम कर रहे हैं अथवा सुनन्द कर रहा है?"

"क्या हुआ महाराज?"

"मैं अपनी माता जी से मिलना चाहता हूँ और सुनन्द इसमें बाधा डाल रहा है!"

ज्योति इस विषय पर चल रही बातचीत को भलीभाँति जानती थी। इस विषय में वह सुनन्द से सहमत नहीं थी। फिर भी उसको यह लगा रहता था कि यदि किसी कारण से महामात्य उससे रुष्ट हो गए तो उसको भी किसी विहार में बन्दी बनाकर महाराज से मिलने से रोक दिया जाएगा। वह इसको अत्यन्त लज्जा की बात समझती थी कि राजपरिवार के सदस्यों की ये श्रावक ऐसे अवहेलना करें कि जैसे वे उनके दास-दासी हों। वह इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रही थी। जब युवराज ने उससे अपने मन के दुःख का वर्णन किया तब वह गम्भीर हो गई। उसने महाराज से इस विषय पर विचार कर बात करने का वचन दिया। वास्तव में ज्योति निरुपम से सहायता लेना चाहती थी।

अगले दिन ज्योति ने निरुपम से कहा, "बौद्ध क्षेत्रों से यह पता लगाओ कि महारानी और भामिनी किस विहार में बन्दी हैं।"

"क्यों, क्या काम है उनसे?"

"युवराज अपनी माता से मिलना चाहते हैं।"

"वे नहीं मिल सकते।"

"क्यों?"

"संघ की यही नीति है।"

"तो तुम भी संघ की नीति का पालन करते हो?"

"मैं जिस थाली में खाता हूँ, उसमें छेद नहीं कर सकता।"

"तुम किस थाली में खाते हो? संघ की थाली में अथवा युवराज्ञी की थाली में?"

"युवराज्ञी स्वयं संघ के आश्रित है। यदि संघ उसका सहायक न होता तो वह अब तक विशालापुरी के युवकों के भोग-विलास की सामग्री बन चुकी होती।"

ज्योति वस्तुस्थिति को सुनकर मौन हो गई। परन्तु इस बात ने उसको अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए विवश कर दिया। उसन युवराज से कहा, "महाराज! इन श्रावकों के अन्याय से बचने के लिए राज-परिवार के सदस्यों को सुसंगठित हो जाना चाहिए। ये लोग हममें फूट डलवाकर स्वयं राज्य कर रहे हैं।"

"पर तुम ही तो इनकी प्रशंसा करती नहीं थकती थीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप ठीक कहते हैं, मैं भूल कर रही थी। परन्तु इस समय हम इन लोगों से ही घिरे हुए हैं। इनसे विद्रोह करने के लिए विचार करके ही कोई कदम उठाना चाहिए।"

"क्या किया जाए? महाराज आज फिर महारानी जी के विषय में पूछेंगे तो उनको क्या कहूँगा?"

"आप मुझको उनके सम्मुख ले चलिए। मैं उनसे इस विषय में विचार-विनिमय करूँगी।"

उस दिन भोजन के समय युवराज ज्योति को महाराज के समक्ष ले गया। महाराज ने उसे देखकर समझा कि वह कोई विशेष बात के लिए आई है। इसलिए पूछा, "भारत की युवराज्ञी! भारत-सम्राट् से क्या चाहती हो?"

ज्योति मुस्कराकर बोली, "महाराज मेरी और अपनी दोनों की हँसी उड़ा रहे हैं। क्या वे नहीं जानते कि न तो वे भारत-सम्राट् हैं और न ही हम युवराज और युवराज्ञी हैं? भारत का राज्य सुनन्द के इंगितों पर चल रहा है।"

"तो इसमें दोष किसका है?"

"महाराज का। महाराज ने इन मूर्ख श्रावकों को राज्यसभा में लेकर पहली भूल की थी। पश्चात् राज्य में इनकी संख्या इतनी बढ़ा दी कि ये एक महान् शक्ति बन गए। इसके साथ ही इनके विरोध के लिए राज्य के हाथ में कोई शक्ति नहीं रही। यह सब कुछ महाराज ने ही किया है।"

"पर तुम यह मेरी हँसी उड़ाने के लिए कह रही हो अथवा अपना कोई उल्लू सीधा करने के लिए?"

"दोनों में से कोई भी बात नहीं महाराज! मैं यह आपको इसलिए स्मरण करा रही हूँ कि जिससे हम आपकी सहायता से इन पीतवसनधारियों का जाल तोड़-फोड़ सकें।"

"मुझसे क्या सहायता चाहती हो?"

"आप धैर्य रखें और हमारी सहायता करें। मैं सबसे पहली बात यह करने वाली हूँ कि अपने निज के सेवक और सेविकाएँ शैव और जैन मतानुयायियों को रखने लगी हूँ। जब तक हमारे विश्वासयोग्य सेवक नहीं होंगे, तब तक हम परस्पर बात भी नहीं कर सकेंगे।"

"पर ऐसे सेवक मिलेंगे कहाँ से? ज्यों ही हम बौद्ध उपासकों के अतिरिक्त किसी अन्य को राजप्रासाद में आने देंगे, ये लोग हल्ला करने लगेंगे।"

"महाराज! आप देखते जाइए। आप आपत्ति न करिएगा। शेष मैं स्वयं निबट लूँगी।"

महाराज के विशेष आग्रह पर और कुणाल के अनेक बार कहने पर एक दिन सुनन्द महारानी जी के हाथ का लिखा एक पत्र लाया और कहा, "महाराज! वे अपनी इच्छा से संन्यासिनी हो गई हैं। इस कारण अब बाहर का कोई भी सम्बन्धी उनसे नहीं मिल सकता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने पत्र हाथ में लेकर देखा तथा पढ़ना आरम्भ किया। उसमें लिखा था—

"श्रीमान्, आपके जीवनभर के प्रयास सफल हुए। पूर्ण भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार हो गया और यह धर्म इतना सुसंगठित हो गया है कि भारत के सम्राट् भी उसकी उँगलियों पर खेलने लगे हैं। देश में धर्म की इतनी महिमा हो गई है कि यदि यह कहा जाए कि देश ने स्वयं भी पीतवसन धारण कर लिये हैं तो अतिशयोक्ति न होगी। इस समय नगर, ग्राम, वन, उपवन सभी इन पीतवसनधारियों से भर गए हैं।

"यह सब-कुछ देखकर भला मैं इस सौभाग्य से, अर्थात् पीतवसन-धारण करने से कैसे वंचित रह सकती थी! मैं भी श्राविका हो गई हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं रह गया था। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप भी शीघ्र ही भगवान् तथागत् की भाँति राजपाट छोड़कर श्रावक बन जाएँ। तब आप महानाम्ना की पदवी पा जाएँगे और हम-जैसे तुच्छ जीव आपके नेतृत्व में निर्वाण-पद की प्राप्ति के लिए अग्रसर हो जाएँगे।

"मुझको ज्ञात हुआ है कि आप मुझसे मिलने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। मैं आपसे निवेदन करना चाहती हूँ कि जब मैंने संन्यास नहीं लिया था, तब तो आपने कभी व्याकुलता प्रकट नहीं की थी। अब तो मैं संन्यासिनी हूँ। मेरे और आपके मध्य पन्द्रह हाथ ऊँची दीवार है। इसको लाँघ सकने की आज देश में किसके पास शक्ति है? इस कारण मेरी प्रार्थना स्वीकार कर मुझे यहीं रहने दें, और आप यदि इस ओर भीतर नहीं आना चाहते तो उस ओर ही रहिए और प्रसन्न रहिए।"

महाराज पत्र पढ़ विस्मय में कुणाल और सुनन्द का मुँह देखते रह गए। प्रत्यक्ष में तो उन्होंने पत्र पढ़कर सन्तोष प्रकट किया, किंतु जब वे एकान्त में कुणाल और ज्योति से मिले तो उन्होंने बताया कि महारानी अतिकष्टमय स्थिति में हैं, ऐसा प्रतीत होता है। इस पत्र का एक-एक अक्षर दुःख की साँस ले रहा है।

ज्योति ने कहा, "महाराज! आप अपने सेवकों को निकालकर बौद्धातिरिक्त धर्म के माननेवाले सेवक रखने प्रारम्भ कर दीजिए। मैंने एक सेविका रखी है। उसका नाम निबिड़िया है। वह बौद्ध नहीं है। मैंने उसको कह दिया है कि जब कोई श्रावक उससे पूछे तो वह बता दिया करे कि वह बौद्ध उपासिका है। मैं उसको बौद्ध धर्म के विपरीत बातें बता-बताकर पक्का कर रही हूँ। इसी प्रकार मैं अन्य सेवक और सेविकाएँ भी रख रही हूँ।"

"परन्तु इन सेविकाओं से क्या हो सकता है? जनता पर बौद्ध श्रावकों के प्रभाव की उपस्थिति में हम कुछ नहीं कर सकते।"

"उस प्रभाव को भी मिटाया जा सकता है। इसके लिए हमको देश में उन पुरुषों से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए, जो बौद्ध-विरोधी हैं।"

"इस सम्पर्क-स्थापन के लिए भी तो हमारे पास विश्वसनीय सेवकों का होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है, जोकि बौद्ध संघ के प्रभाव में न आ सकें और हमारे कार्य को सम्पन्न कर सकें।"

ज्योति निरुपम भद्रायण की ओर से विमुख हो रही थी। यह ठीक था कि दोनों में वासनामय सम्बन्ध था, परन्तु उससे भी प्रबल उसकी महत्त्वाकांक्षा भारत की महारानी बनना था, जिसमें वह सहायक नहीं हो रहा था। ज्योति यह परखना चाहती थी कि यदि किसी समय बौद्ध संघ उसके विपरीत हो जाए तो निरुपम उसका पक्ष लेगा अथवा संघ का। अपनी ओर से निरुपम यह देख चुका था कि वर्तमान परिस्थिति में संघ की शक्ति सर्वोपरि थी। इसलिए उसके विरोध में होने से उसे कोई लाभ नहीं दिखाई देता था।

निरुपम भद्रायण युवराज कुणाल को प्रसन्न रखता था। उसका विचार था कि उसके ज्योति के समीप रहने को सबसे अधिक युवराज ही नापसन्द कर सकता है। इससे वह अपने को युवराज के लिए अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध करने में लगा रहता था।

एक दिन युवराज ने सुनन्द को कहा कि राज्य की शोभा के लिए शस्त्रास्त्रधारी सुभट रखे जाएँ। महाप्रभु ने कहा, "किसी वस्तु की शोभा इस बात में नहीं कि वह किसी दूसरे को कितनी हानि पहुँचा सकती है, प्रत्युत इसमें है कि वह दूसरों के लिए कितनी उपयोगी एवं लाभप्रद सिद्ध हो सकती है।"

ज्योति समीप ही बैठी थी। उसने कहा, "लाभ-हानि का प्रश्न इसमें कहाँ से आ गया? महाराज ने तो केवल राजप्रासाद की शोभामात्र ही कहा है।"

"मैं भी तो शोभा की बात ही कर रहा हूँ। शस्त्रास्त्र सर्वसाधारण को डराने के लिए होते हैं।"

"यदि शस्त्रास्त्र दुष्टों को भयभीत करने के काम में आएँ तो साधु लोगों को निर्भय करने से सुखकर भी तो हो सकते हैं!"

"परन्तु दुष्ट कौन हैं और साधु कौन, इसका निर्णय करना क्या कठिन नहीं?"

"जो राज्यनियम का पालन करे वही तो साधु कहलाएगा!" निरुपम ने बीच में बोलते हुए कहा। वह अभी तक यही देख रहा था कि युवराज की हार्दिक इच्छा क्या है। युवराज और ज्योति दोनों चाहते थे कि पुनः शस्त्रास्त्रों का व्यवहार आरम्भ हो जाए। इससे उसने युवराज और युवराज्ञी में मतभेद उत्पन्न करने के लिए वार्तालाप में भाग लेना आरम्भ कर दिया।

सुनन्द उसके आशय को न समझ सकने के कारण उसकी ओर घूरकर कहने लगा, "राज्यनियम का अभिप्राय राजा की इच्छा नहीं।"

निरुपम ने महाप्रभु को अति विनम्र भाव में कहा, "भगवन्! राजा की इच्छा राज्यनियम न सही, परन्तु राज्यनियम का चलानेवाला तो राजा ही है। इससे राज्यनियम और राजा की इच्छा में भेद नहीं हो सकता। ये पर्यायवाचक शब्द ही हैं।"

कुणाल ने प्रसन्न होकर कहा, "प्रभु भद्रायण का कहना ठीक है। राज्यनियम का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचालन करनेवाला राजा होता है। चलानेवाले की इच्छा हो अथवा न हो, परन्तु समझा तो यही जाएगा कि यह चलानेवाले की इच्छा है।"

"तो श्रीमान् की क्या इच्छा है?"

उत्तर निरुपम ने दिया, "राजप्रासाद के सुभटों को सुनहरी गणवेश बनवा दीजिए और उनकी कमर में बाँधने के लिए लकड़ी के खड्ग और कपड़े के ढाल बनवा दिए जाएँ। ये सभी सुन्दर रंगों में रँगे हों। इससे राजप्रासाद की शोभा बढ़ जाएगी।"

"पर यह सब महाराज देख सकेंगे क्या?"

"महाराज तो कुछ भी देख नहीं सकेंगे। वास्तव में तो यह हम लोगों के देखने के लिए ही है।"

ज्योति समझ नहीं सकी कि निरुपम महाराज की हँसी उड़ा रहा है अथवा उनके चक्षुविहीन होने से उनका अपमान कर रहा है। इससे उसने वार्तालाप में भाग लेते हुए कहा, "मैं समझती हूँ कि प्रभु भद्रायण महाराज का वास्तविक प्रयोजन समझे ही नहीं। महाराज का कहना है कि राजप्रासाद में जो यह पंगु तथा भीरु भर रखे हैं, इन सबको निकालकर यहाँ शूरवीर क्षत्रियों को भर्ती करनी चाहिए।"

सुनन्द और भद्रायण दोनों महाराज के आशय को भलीभाँति समझते थे। वे यह भी जानते थे कि युवराज जो कुछ कह रहे हैं, वह ज्योति के कहने पर कह रहे हैं। इस कारण ज्योति के कहने पर विस्मय प्रकट करते हुए सुनन्द ने कहा—

"एक बौद्ध उपासिका के मुँह से इस प्रकार की बात सुनकर हमको जहाँ दुःख हुआ है, वहाँ विस्मय भी। भला इस प्रकार का सामान एक बौद्ध राज्य की शोभा का कारण कैसे हो सकता है?"

"शस्त्रास्त्र क्या हिंसा के लिए ही एकत्रित किए जा सकते हैं? हिंसा करना अभिप्रेत नहीं है। हाँ, यदि कोई किसी प्रकार की खराबी करे, तब उसकी हिंसा करने में क्या हानि हो सकती है?"

"परन्तु महारानी जी! यह तो विचार करने की बात है कि कौन खराबी करता है और कौन अच्छाई करता है।"

इस प्रकार यह बात समाप्त हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि ज्योति ने मन में निश्चय कर लिया कि वह धीरे-धीरे सब श्रावकों और बौद्ध उपासकों को प्रासाद से निकाल देगी।

उसका क्रोध सबसे पहले निरुपम भद्रायण पर निकला। एक दिन जब वह महाराज और युवराज का मन स्वरचित जातक सुनाकर रंजित कर रहा था कि ज्योति की दासी आई और युवराज से बोली, "रानी जी श्रीमान् को बुला रही हैं।"

"क्यों, क्या हुआ है?"

"दासी नहीं जानती, महाराज!"

युवराज उठे और भद्रायण के कंधे पर हाथ रखते हुए ज्योति के आगार में आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचे। उनको आया देख ज्योति ने भद्रायण को कहा, "प्रभु, आप तनिक बाहर ठहरें।"

युवराज को छोड़ भद्रायण बाहर की ओर घूमा तो उसको आगार के बाहर दासियों के खिलखिलाकर हँसने का शब्द सुनाई दिया। वह जब आगार के बाहर निकला तो दासियाँ एकदम चुप हो गईं। निरुपम को सन्देह हो गया कि वे उसके अपमानित किए जाने के कारण हँसी हैं। फिर भी वह निश्चय नहीं कर सका था। उसने इस बात की जाँच करनी चाही। वह आगार के बाहर दीवार पर बनी नृत्य-मुद्रा में एक सुन्दरी के चित्र को देखने लगा। दासियाँ उसकी पीठ की ओर खड़ी थीं। वह कुछ काल तक उस चित्र को देखने का बहाना करता रहा। तदनन्तर वह एकाएक दासियों की ओर घूमा। दासियाँ उसको मुँह चिढ़ा रही थीं और वे भद्रायण को अपनी ओर त्योरी चढ़ाके देखते हुए पा वहाँ से खिसक गईं। केवल एक दासी वहाँ रह गई और वह गम्भीर मुख बनाए हुए थी। उसकी वहाँ पर ही नियुक्ति थी।

भद्रायण के मन में इस सबका कारण जानने की इच्छा हुई। अतएव वह उस दासी के समीप आकर पूछने लगा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

जब दासी ने कोई उत्तर नहीं दिया तो उसने डाँटकर कहा, "नाम बताओ!"

दासी ने विनीत भाव में कहा, "पर मैं तो आपकी हँसी नहीं उड़ा रही थी।"

"तुम तो अब भी मुस्करा रही हो।"

"हाँ प्रभु! परन्तु उनकी मूर्खता पर।"

"क्या अभिप्राय था उनका?"

"वे आपको मूर्ख समझती हैं, जो मृगतृष्णा के पीछे भागा फिर रहा है।"

"मृगतृष्णा? मैं समझा नहीं? देखो, यदि तुम मुझको ठीक-ठीक बता दो तो मैं तुम्हारे विरुद्ध कुछ नहीं करूँगा। उनको तो मैं आज ही सेवाकार्य से मुक्त करवा दूँगा।"

दासी मुस्कराकर चुप हो गई। निरुपम ने यह देखा और कहा, "तो क्या तुमको मेरे कहने पर विश्वास नहीं है?"

"यह बात नहीं प्रभु! मैं तो यह विचार कर रही हूँ कि दासियों को सेवाकार्य से मुक्त कराना, उनके साथ भलाई करना है अथवा बुराई।"

"भलाई कैसे?"

"जब वे बेकार हो जाएँगी तो किसी भी विहार में जाकर संन्यास ले लेने से तो आप उनको रोक नहीं सकते।"

"तो विहार में संन्यासिनी बनना यहाँ की सेवा करने से अच्छा है?"

"बहुत-सी स्त्रियों का यही विचार है।"

"तुम भी ऐसा ही समझती हो?"

"मैं तो किसी विहार में रही नहीं। हाँ, एक बात का अनुमान तो मेरा इस प्रकार है कि यहाँ दासी एक दासी ही है। उसको दिनभर काम करना पड़ता है, स्वामिनी की डाँट-फटकार भी सुननी पड़ती है। सुना है कि विहार में सब बराबर होते हैं। सबको एक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान खाने और पहनने को मिलता है। काम करने को कुछ नहीं। केवल प्रातः-सायं प्रार्थना-उपासना करनी पड़ती है।"

"तो इन दासियों को इनकी धृष्टता के लिए यहाँ से निकलवाना ठीक नहीं?"

"यह तो उनको पुरस्कृत करने के समान होगा।"

निरुपम इस दासी द्वारा किए गए दोनों जीवनों के विश्लेषण से गम्भीर विचार में पड़ गया। वह अभी विचार ही कर रहा था कि दासी ने मुस्कराते हुए मुख मोड़ लिया। भद्रायण ने उसकी ओर देखा और पूछा, "अब क्यों मुस्कराई हो?"

"आपके मुख की आकृति देखकर। कुछ ऐसा प्रतीत हुआ था कि आपको कहीं मीठी-मीठी पीड़ा हो रही है।"

भद्रायण समझ गया कि यह दासी भी उसकी हँसी उड़ाने लगी है। इससे क्रोध में बोला, "तुम्हारा सिर होती है! मुझको पीड़ा क्यों होगी? मैं रुग्ण हूँ क्या?"

दासी भद्रायण की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोली, "जब मेरे यहाँ···" उसने अपने हृदयस्थल पर हाथ रखकर कहा, "कभी-कभी पीड़ा होती है तो मेरा मुख वैसा ही हो जाता है, जैसा अभी-अभी आपका हो गया था।"

"तो तुम्हारे हृदय में पीड़ा होती है?" अब भद्रायण ने उसकी हँसी उड़ाने के लिए गम्भीर होकर कहा।

"हाँ प्रभु! जब मैं अपने प्रेमी को किसी अन्य स्त्री के साथ देखती हूँ तो यहाँ टीस उठती है और वह इतनी तीव्र होती है कि आँखों में अश्रु आ जाते हैं।"

"बहुत दयनीय दशा है तुम्हारी देवी! क्या नाम है तुम्हारा?"

"निबिड़िया महाराज!"

"और तुम्हारे प्रेमी का?"

"औरतें अपने प्रेमी का नाम नहीं ले सकतीं।"

इस समय युवराज और युवराज्ञी अपने आगार से निकले और गंगातट पर भ्रमण करने चल पड़े। चलते हुए ज्योति ने भद्रायण की ओर देखकर कहा, "आप सायंकाल यहाँ उपस्थित रहें! महाराज को आपकी आवश्यकता पड़ेगी।"

संज्ञा का रंग-रूप बहुत ही साधारण था। इस पर भी वह एक भद्रपुरुष की कन्या थी और एक भद्र परिवार में रहना जानती थी। जब तिर्यगीश ने उससे प्रस्ताव किया कि राजकुमार से उसका विवाह हो सकता है, तो वह अपने भाग्य की सराहना करने लगी थी। तत्पश्चात् जब राजकुमार के प्रासाद में उसको पहुँचाया गया तो वह राजप्रासाद के सुख तथा आराम को देख अत्यानन्द अनुभव करने लगी।

उसकी पहली भेंट राजकुमार से होने पर उसका उत्साह और आनंद कुछ सीमा तक कम पड़ गया। राजकुमार ने पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

"संज्ञा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कैसी हो तुम?"

"जैसी एक कुमारी हो सकती है।"

"मेरा अभिप्राय है कि तुम सुन्दर हो क्या?"

इस प्रश्न पर वह बहुत घबराई। उसने कुछ विचार कर कहा, "महाराज! मेरी माँ मुझको बहुत सुन्दर समझती है।"

"और अन्य लोग क्या समझते हैं?"

"मैंने किसी से पूछा नहीं। अपने अनुचर से, जो मुझको यहाँ लाया है, पूछ लीजिए।"

"क्या वह तिर्यगीश है?"

"मैं उसका नाम नहीं जानती।"

"अच्छा इधर आओ। मैं स्वयं टटोलकर जान लूँगा।"

इससे संज्ञा को बहुत संकोच हुआ। उसने पूछा, "आप मुझको अपनी पत्नी बनाना चाहते हैं अथवा नहीं?"

"पत्नी बनाने के लिए ही तो तुमको बुलाया है। परन्तु पहले देख तो लूँ कि तुम कैसी हो।"

"महाराज! यह समस्या अतिविकट है। मैं परपुरुष का स्पर्श नहीं चाहती। पहले आप अपनी माँ, बहन अथवा किसी विश्वस्त सम्बन्धी को बुलाकर पूछताछ कर लें, पश्चात् विवाह हो जाए, तब ही मैं आपकी सेवा के लिए उपस्थित हो सकूँगी!"

"तो हमारे छूने से क्या होगा? क्या हम चाण्डाल हैं जो तुम भ्रष्ट हो जाओगी? देखो संज्ञा! मेरी आँखें होतीं तो मैं तुमको देख लेता। तुम मेरे देखने को अस्वीकार नहीं कर सकती थीं। अब वही कार्य, जो मेरी आँखों को करना था, अपनी स्पर्शेन्द्रिय से करना चाहता हूँ। फिर तुम तो बौद्ध हो। मैं, तुम और सब संसार एक ही प्रकृति के अंशमात्र हैं। प्रकृति के एक अंश को छूने से क्या हो सकता है?"

"इस विषय में मेरी माँ और पिता में मतभेद रहता है। मैं माँ की बात को ठीक समझती हूँ। हम प्राणी केवल प्रकृति ही नहीं हैं। हमारे में एक चेतन पदार्थ है, जिसमें भेदभाव करने की शक्ति है। इससे ही मैं अपने पति और परपुरुष में भेदभाव जानती हूँ। यदि आप मेरे पति बनते हैं, तब तो ठीक है, अन्यथा मुझको जाने दीजिए। मेरे माता-पिता बहुत परेशान हो रहे होंगे।"

"विचित्र बौद्ध हैं तुम्हारे माता-पिता?"

"महाराज! आप भी वैसे ही हैं जैसे मेरे माता-पिता। यदि आपकी रानी किसी परपुरुष को वही अधिकार दे दे, जो आपको उसे देना चाहिए, तो आप भी अनुभव करेंगे कि वास्तव में आपमें और एक पत्थर में अन्तर है।"

"तो पहले तुमको अपनी पत्नी बनाऊँ, उसके पश्चात् ही तुम मेरे अंग लगोगी?"

"हाँ महाराज!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुणाल इस लड़की की दृढ़ता पर विस्मय करता हुआ कहने लगा, "तब कैसे विवाह होगा तुम्हारा-हमारा ?"

"जैसे श्रीमान् के परिवार में होता है।"

"हमारे यहाँ तो गन्धर्व विवाह होते हैं।"

इस प्रस्ताव पर तो संज्ञा का मन बैठने लगा। वह जानती थी कि दुष्यन्त गान्धर्व विवाह कर शकुन्तला को भूल ही गया था। उसने कहा, "विधिवत् विवाह क्यों नहीं महाराज ?"

"समय और परिस्थिति विधिवत् विवाह के अनुकूल नहीं है।"

"मैं समझी नहीं महाराज ?"

"तुम्हारे समझने की बात नहीं देवी ! मुझे तुम्हारे विषय में तिर्यगीश ने बहुत-कुछ बताया है, उसी के आधार पर मैं तुमसे विवाह का इच्छुक हूँ।"

युवा लड़की काम से पीड़ित राजकुमार की बातों में आ गई और गान्धर्व विवाह के लिए तैयार हो गई।

अगले दिन उससे कहा गया कि वह अपने माता-पिता को सूचित कर दे, परन्तु वह अपनी अवस्था से इतनी सन्तुष्ट नहीं थी, जितनी किसी नवविवाहिता वधू को होना चाहिए। इसलिए उसने चुप रहना ही उचित समझा। पश्चात् उसके गर्भ रह गया, इस पर तो वह अपने माता-पिता को कुछ भी बताने को तैयार नहीं हुई। उसके एक लड़का हुआ, जिस पर वह अतिप्रसन्न हो गई।

जब चक्रधर लड़की का पता पा राजकुमार से मिलने आया और चक्रधर को यह आशा मिली कि वह महामात्य बनाया जाएगा, तो वह अपनी लड़की के प्रति हुए अन्याय को भूल गया।

परन्तु परिस्थिति अत्यन्त द्रुत गति से परिवर्तित हुई। ज्योति भारत-सम्राज्ञी बनने के लोभ में राजकुमार के पास आई और राजकुमार ने उसको भी अपनी पत्नी बना लिया। इससे संज्ञा के मन में ईर्ष्या हुई अवश्य, परन्तु वह चुप रही। संज्ञा का ज्योति की उपस्थिति से पूर्ण रूप से त्याग हो गया। इससे वह दुःखी हुई, परन्तु धैर्यपूर्वक सब सहन करती रही। अब ज्योति ने उसको दासीमात्र मान, उससे वैसा ही व्यवहार आरम्भ कर दिया।

"देखो संज्ञा !" एक दिन ज्योति ने कहा, "मैं महाराज के साथ गंगातट तक भ्रमण करने जा रही हूँ। यह हमारे वस्त्राभरण सँभालकर भीतर रख देना।"

संज्ञा बितर-बितर मुख देखती रह गई। पश्चात् उसने दासी को कहकर भूषण-वस्त्रादि सन्दूक में रखवा दिए। फिर भी वह अपना अपमान अनुभव करती रही।

ज्योति लौटकर आई तो पूछने लगी, "कपड़े रख दिए हैं ?"

"रखवा दिए हैं।"

"भोजन कर लिया है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज के साथ करूँगी।"

"क्यों?" ज्योति ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा।

संज्ञा अपना क्रोध छुपाकर नहीं रख सकी। उसने कह ही दिया, "इस कारण कि मैं रानी हूँ, और भारत की सम्राज्ञी बनने वाली हूँ।"

"तुम?"

"हाँ।"

"क्यों महाराज?" उसने राजकुमार को बाँह से पकड़कर हिलाते हुए पूछा।

"संज्ञा भी रानी है, सुन्दरी!"

"बहुत कुरूप है।"

"यह मैं नहीं देख सकता। वह मेरे पुत्र की माँ अवश्य है।"

"आपको विश्वास है महाराज?"

"अविश्वास का कोई कारण नहीं।"

"नहीं महाराज! आप नहीं जानते।"

"यह झूठ बोलती है महाराज!" संज्ञा ने कहा।

इन झगड़ती हुई रानियों को चुप कराने के लिए राजकुमार ने कह दिया, "देखो संज्ञा! यह कहती है कि यह तुमसे कई सौ गुना अधिक सुन्दर है।"

"महाराज, सुन्दर है तो इससे कहें कि एक सुन्दर पुत्र को जन्म देकर दिखाए!"

महाराज और ज्योति दोनों हँस पड़े और हँसते हुए भीतर के आगार में चले गए। आगार को उन्होंने भीतर से बन्द कर लिया।

संज्ञा संज्ञाहीन-सी हो खड़ी रह गई। उसको अपनी इस दुर्दशा पर भारी खेद हुआ और इससे उसके आँसू निकल आए। आँचल से आँसू पोंछते हुए वह अपने आगार की ओर चल पड़ी। वह अभी आगार में प्रवेश कर ही रही थी कि द्वार के समीप खड़ी एक दासी कहने लगी, "रानी जी! धैर्य रखो, भगवान् सबकी सुनता है।"

"ऊँह! भगवान्? कहाँ है वह?" यह कहते हुए वह आगार के भीतर चली गई। दासी द्वार पर ही खड़ी-खड़ी कहने लगी, "रानी जी! भगवान् सब में है। आप में, मुझ में, महाराज में और अन्य सभी प्राणियों में।"

"क्या उस वेश्या की लड़की ज्योति में भी है?"

"है; परन्तु आप दोनों में वह कुछ अन्तर नहीं देखता, इस कारण निष्पक्ष है।"

यह सुन संज्ञा आगार के मध्य में पहुँच रुक गई और दासी की ओर देखने लगी। दासी अब भी द्वार के समीप शांत भाव से खड़ी थी। संज्ञा ने एक-दो क्षण उसकी ओर देखकर कहा, "इधर आओ!"

दासी द्वार के भीतर प्रवेश कर संज्ञा के सम्मुख जा खड़ी हुई। संज्ञा अब भी विस्मय में उसका मुख देख रही थी। कुछ क्षण तक उसको देखकर वह अपने पलँग पर बैठ गई और उससे पूछने लगी, "बहुत ज्ञानवान प्रतीत होती हो। क्या नाम है तुम्हारा?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"निबिड़िया, रानी जी !"

"क्या समानता देखी है तुमने हम दोनों में ? एक वेश्या की लड़की है जिसके पिता का पता नहीं और दूसरी महापण्डित की पुत्री। तुमको दोनों में कुल का अन्तर दिखाई नहीं देता ?"

निबिड़िया ने आँखें नीचे किए हुए ही कहा, "रानी जी ! यदि मेरे कहने पर रोष न करें और धृष्टता के लिए क्षमा करें तो निवेदन करूँ।"

"हाँ, निर्भय होकर कहो।"

"वेश्या ने और महापण्डित ने जन्म दिया शरीरों को। दोनों में भारी अन्तर है। एक अत्यन्त सुन्दर है, दूसरा केवल एक साधारण स्त्री का रूपमात्र। मैं तो इस अन्तर की बात नहीं कह रही। मैं उस अन्तर अथवा समानता की ओर संकेत कर रही थी, जिसको जन्म देनेवाली न तो इन्दु वेश्या है और न ही महापण्डित चक्रधर। मेरा संकेत दोनों में विद्यमान आत्मा की ओर है।

"परमात्मा तो आत्माओं को देखता है। उसको आप दोनों की आत्माओं में कोई अंतर प्रतीत नहीं हो रहा। इस कारण वह एक की सहायता एवं दूसरी की अवहेलना नहीं करना चाहता।"

संज्ञा वस्तुस्थिति के विश्लेषण से स्तब्ध रह गई। उसने कहा, "निबिड़िया ! तुम दासी प्रतीत नहीं होतीं।"

"रानी जी फिर वही भूल कर रही हैं। मैं आपकी दासी हूँ, शरीर से। परन्तु आत्मा इस शरीर से भिन्न और श्रेष्ठ है।"

"आत्मा की श्रेष्ठता किस बात में है ?"

"संसार और शरीर के विषयों से निर्लिप्तता में।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"निष्काम कर्म करने से।"

"क्या संसार में कोई निष्काम कर्मी है ?"

"हैं, परन्तु बहुत कम और वे ही आत्मा भगवान् को प्रिय हैं।"

"यह सब वाग्जाल है।" संज्ञा ने अपने पिता की गोष्ठियों में कहे जाने वाले वाक्यों को स्मरण करके कहा, "न भगवान् है, न आत्मा और···"

वह कहती-कहती रुक गई। वह सोचती थी कि यदि आत्मा नहीं है तो ज्योति और उसमें अन्तर किस बात का है ? यदि दोनों ही प्रकृति के पिण्डमात्र हैं तो ज्योति उससे अधिक सुन्दर पिण्ड है और महाराज का उसको छोड़ ज्योति को ग्रहण करना ठीक ही है। इतना विचार कर वह बोली, "आत्मा के होने से भगवान् का अस्तित्व तो सिद्ध नहीं होता ?"

"आत्मा ही भगवान् है। जब वह जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है, तो परमात्मा कहाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु देवी ! मैं तो यही निवेदन कर रही थी कि रानी जी की और ज्योति की आत्मा में अन्तर होने से ही आनन्द में अन्तर हो सकता है।"

"भोग में तो अन्तर दिखाई देने लगा है।"

"यह आप शारीरिक भोग की बात कर रही हैं? इसका आत्मा के आनन्द से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

संज्ञा हँस पड़ी और बोली, "मैं शरीर के सुख से आत्मा के आनन्द को भिन्न नहीं मानती।"

"शरीर-सुख तो किसी भी युवा पुरुष से प्राप्त हो सकता है। उसके लिए राजकुमार को कष्ट देने की क्या आवश्यकता है?"

इस पर संज्ञा पुनः विस्मय में पड़ गई।

महाराज अशोक अपनी विवशता पर बहुत ही शोकग्रस्त रहते थे। उनका मन राजकार्य से उचाट हो रहा था। राज्य का सब कार्य राजकुमार कुणाल करता था, अर्थात् मंत्रिमण्डल करता था। सुनन्द महामात्य के पद को सुशोभित करता था, चक्रधर भी एक आमात्य था। सुनन्द से चक्रधर अधिक योग्य व्यक्ति था। इस कारण सुनन्द के महामात्य होने पर भी राज्य की जटिल समस्याओं के लिए चक्रधर ही काम आता था। फिर भी चक्रधर अपने कार्य से सन्तुष्ट नहीं था।

अब चक्रधर कभी संज्ञा के दर्शन पा जाता था और आमात्य चक्रधर की पत्नी कोमलांगी भी अन्तःपुर में आकर लड़की से मिल सकती थी। इस प्रकार चक्रधर को भी अपनी कन्या की दुर्दशा का ज्ञान हो रहा था। वास्तव में जब से ज्योति का राजकुमार के प्रासाद में पदार्पण हुआ था, तब से ही संज्ञा की मान-प्रतिष्ठा कम होनी आरम्भ हो गई थी।

जिस दिन ज्योति ने संज्ञा से दासी का-सा व्यवहार किया था, उसी दिन संज्ञा की माँ उससे मिलने आई थी और अपनी लड़की की रोने से फूली हुई आँखें देख अति दुःखी हुई थी। संज्ञा ने बताया था कि वह वेश्या की लड़की मुझको आँखें दिखाने लगी है और मुझसे दासियों का-सा व्यवहार करती है।

"तुमने कुछ कहा होगा?" उसकी माता ने कहा।

"मैं तो उससे बात भी नहीं करती। महाराज भ्रमणार्थ जाने वाले थे कि मैं उनको नमस्कार करने चली आई थी। मेरे पहुँचते ही वह मुझको आज्ञाएँ देने लगी।"

"देखो बेटी ! वह बहुत चतुर लड़की है। वेश्याओं का व्यापार ही उनकी चतुराई पर निर्भर करता है। भले घर की लड़कियों को धैर्य से अपने अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

संज्ञा तो मन मसोसकर रह गई, परन्तु पण्डित चक्रधर के मन में ज्योति का अपमान शूल की भाँति चुभ गया। पण्डित यह जानता था कि राजकुमार को राजगद्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कारण नहीं मिल रही कि वह ज्योति का पति है, प्रत्युत वे राजगद्दी के अधिकारी इस कारण बन रहे हैं कि बौद्ध संघ को इसमें अपना हित मालूम होता है। इस कारण वह स्वयं बौद्ध संघ का हित अधिकाधिक करना चाहता था, जिससे संघ उसका आभारी हो जाए। परन्तु बात बिगड़ती ही गई।

एक दिन राजकुमार मंत्रिमण्डल में आकर बैठा तो कहने लगा, "जनता में ज्योति से हमारे विवाह की घोषणा हो जानी चाहिए, जिससे उसके घर में होनेवाली सन्तान ही राज्य की उत्तराधिकारी बन सके।"

चक्रधर ने कहा, "महाराज! आपके घर में तो एक दूसरी रानी से एक सन्तान पहले ही विद्यमान है?"

"हाँ है, परन्तु वह विवाह····" राजकुमार कहता-कहता रुक गया, किन्तु बात सुनन्द ने चला दी। उसने कहा, "भारत की सम्राज्ञी कुछ तो सुन्दर होनी ही चाहिए। संज्ञा अति कुरूप है।"

इस वक्तव्य पर तो चक्रधर जल-भुन गया। वह यह अपमान मन-ही-मन पी गया। उसने केवल यह कहा, "जब महाराज राजसिंहासन पर बैठेंगे तब विवाह की बात पर विचार कर लिया जाएगा।"

कुणाल ने हठ करते हुए कहा, "हमारे विवाह की घोषणा इस पखवाड़े के भीतर ही हो जानी चाहिए।"

श्रावक-मन्त्रिगण सब चुप बैठे रहे, अर्थात् वे सब मान गए। इस कारण चक्रधर भी उस दिन चुप बैठा रहा।

वह घर आया तो उसका मन बुझ-सा गया था। जिस उत्साह से वह राजकुमार कुणाल की सेवा करने लगा था, वह समाप्त हो गया।

राजकुमार के ज्योति से विवाह की तैयारी होने लगी। इससे ज्योति में अभिमान की मात्रा और भी अधिक बढ़ गई और वह संज्ञा से और भी अधिक दुर्व्यवहार करने लगी। इस घोषणा की बात के दो-तीन दिन पश्चात् संज्ञा अपने आगार में बैठी वैशेषिक का अध्ययन कर रही थी कि ज्योति उसके सामने आ खड़ी हुई। संज्ञा ने आँख उठाकर प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। ज्योति ने कहा, "संज्ञा! भारत की भावी सम्राज्ञी का आदर करना सीखो!"

"मुझसे एक वेश्या की लड़की का आदर नहीं हो सकेगा।"

"तो तुम यहाँ रह नहीं सकोगी। तुम्हारा भला इसी में है कि यहाँ से निकल जाओ।"

"कहाँ जाऊँ?"

"जहाँ से आई थी।"

"महाराज कहेंगे तो चली जाऊँगी।"

"मैं जो कहती हूँ!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम और मैं समान अधिकार वाली हैं। न मैं तुमको निकाल सकती हूँ और न तुम मुझको।"

"जानती नहीं हो कि मैं महारानी बनने वाली हूँ?"

"नहीं, मैं नहीं जानती। जब बन जाओगी तो जान जाऊँगी।"

"तो तुमको सन्देह है इसमें?"

"हाँ, मुझको सन्देह है कि तुम-जैसी औरत शायद ही भारत की सम्राज्ञी बन सके।"

"अच्छा, दिखाऊँगी तुमको।"

यह कहकर ज्योति चली गई। संज्ञा उसे जाते देखती रही। जब वह चली गई तो निबिड़िया दासी संज्ञा के सामने आ खड़ी हुई। संज्ञा ने उसको खड़ी देख पूछा, "क्या है?"

"रानी जी ने बुलाया है मुझको?"

"नहीं तो!"

"मैंने समझा था कि आप मुझे किसी काम पर भेजने वाली हैं।"

संज्ञा सोचने लगी कि उसको किसी दासी को कहाँ भेजना है? उसके मन में आया कि ज्योति से झगड़े की बात पिता को कहला भेजे। इस पर भी उसको इस दासी के कहीं भेजने की बात स्मरण नहीं आई। इस कारण उसने कहा, "मुझको तो स्मरण नहीं आता कि मैंने तुम्हें कहीं भेजने के लिए बुलाया है?"

दासी ने कहा, "बुलाया भले ही न हो, परन्तु क्या आप इस समय कोई सन्देश अपनी माता अथवा पिता को भेजना नहीं चाहेंगी?"

संज्ञा को इस दासी की सूझ पर आश्चर्य हुआ। इससे वह उसका मुख देखती रह गई। दासी ने फिर कहा, "रानी जी! क्षमा करें। रानी ज्योति यहाँ से सीधी राजकुमार से मिलने गई हैं। आप यदि आमात्य चक्रधर के पास इस झगड़े का समाचार भेजना चाहें, तो कुछ बात बन सकती है। राजकुमार इस समय मन्त्रिमण्डल में हैं।"

संज्ञा सचेत हो गई और उसने पूछा, "तो तुम जानती हो कि क्या हुआ है?"

"हाँ रानी जी! मैं एक-एक शब्द उस पर्दे की ओट में खड़ी होकर सुन रही थी।"

"तो जाओ, पिता जी को बता दो। यदि मैंने कुछ अपराध किया है, तो वह भी बता देना।"

दासी ने हाथ जोड़ प्रणाम किया और चली गई। संज्ञा समझने लगी थी कि यह दासी उससे सहानुभूति रखती है और बहुत ही समझदार है। पर यह है कौन?

निबिड़िया का अनुमान ठीक था। ज्योति मंत्रिमण्डल में खड़ी हो रो-रोकर संज्ञा के विरुद्ध कुछ कह रही थी। निबिड़िया ने प्रतिहार के द्वारा आमात्य चक्रधर को कहला भेजा कि वह संज्ञा का सन्देश लेकर आई है। चक्रधर बाहर चला आया। निबिड़िया ने सब घटना ज्यों-की-त्यों बता दी और बताया कि ज्योति ने संज्ञा का भारी अपमान किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसको प्रासाद से निकाल देने की धमकी देकर आई है।

चक्रधर जब लौटकर मंत्रिमण्डल में पहुँचा तो सुनन्द कह रहा था, "ज्योति महारानी होगी, इस कारण संज्ञा को उसके अधीन होकर रहना होगा। यदि वह महारानी के अधीन होकर नहीं रह सकती तो उसको प्रासाद छोड़ देना होगा।"

राजकुमार ने कहा, "दोनों ही मेरी पत्नियाँ हैं, इनका झगड़ा मेरी निज की बात है। मैं चाहता हूँ कि मन्त्रिमण्डल इसको मुझ पर छोड़ दे।"

सुनन्द इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने कहा, "जब महारानी एक आरोप लेकर आई हैं, तो मन्त्रिमण्डल उस पर विचार करेगा ही। महारानी केवल महाराज की पत्नी ही नहीं अपितु पूर्ण देश के मान की अधिकारिणी हैं। इस कारण उनका राजप्रासाद में अथवा इससे बाहर अपमान सहन नहीं किया जा सकता।"

चक्रधर ने कहा, "महाराज का कहना ठीक है, यह झगड़ा महारानी और प्रजा के किसी व्यक्ति में नहीं हुआ अपितु महाराज की एक रानी और दूसरी रानी में हुआ है। इसका निबटारा महाराज को स्वयं करना चाहिए।

"नहीं," ज्योति, जो वहाँ पर खड़ी सुन रही थी, कहने लगी, "महारानी का अपमान हुआ है, राजकुमार महोदय की पत्नी का नहीं।"

"झगड़ा राजप्रासाद के एक आगार में हुआ है, वहाँ पर दोनों के अधिकार समान थे। मैं यह जानना चाहता हूँ कि रानी ज्योति रानी संज्ञा के आगार में किस राज्यकार्य से गई थीं?" चक्रधर ने पूछा।

"मैं उसको कुछ कहने गई थी?"

"क्या कहने गई थीं?"

"वह बताना मैं आवश्यक नहीं समझती।"

"तो सिद्ध हुआ कि कोई राज्यकार्य नहीं था, जिसके लिए रानी ज्योति रानी संज्ञा के आगार में गई थीं। रानी ज्योति को कुछ काम था, जो वे मन्त्रिमण्डल को बताना नहीं चाहतीं। इस कारण मन्त्रिमण्डल को भी उनके काम में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं जान पड़ता।"

सुनन्द और ज्योति निरुत्तर हो गए। राजकुमार यही चाहता था। उसने कहा, "प्रिये! अब तुम चलो, मैं महल में आकर तुम्हारी बात सुनूँगा।"

ज्योति लौट गई। वह मन में अति खिन्न थी। युक्ति में चक्रधर ने सबका मुँह बन्द कर दिया था। मन्त्रिमण्डल की बैठक के पश्चात् चक्रधर ने राजकुमार से मिलकर निवेदन किया, "महाराज! क्या आप मेरी लड़की को ज्योति की दासी बनाकर रखना चाहते हैं?"

"नहीं, यह बात नहीं है, फिर भी दोनों को एक ही छत के नीचे रहते हुए परस्पर लड़ना नहीं चाहिए।"

"महाराज का कहना सर्वथा सत्य है। परन्तु जब एक झगड़ा भी करे और फिर वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही आरोप भी लगाए तो क्या किया जाय?"

"पण्डित! क्या तुम समझते हो कि ज्योति ने जो कुछ कहा है, उसमें सचाई नहीं है?"

"किंचिन्मात्र भी नहीं।"

"तुम सिद्ध कर सकते हो?"

यह सुनकर महापण्डित घबराया। फिर कुछ विचार कर बोला, "महाराज, जाँच होनी चाहिए।"

"ज्योति इतनी सभ्य और सुशील है कि मुझको विश्वास नहीं आता कि उसने संज्ञा का अपमान किया होगा।"

"रानी जी किस प्रयोजन से संज्ञा के आगार में गई थीं?"

"वे रानी हैं, जहाँ चाहे जा सकती हैं।"

"यही तो निवेदन कर रहा हूँ कि वे अपने-आपको संज्ञा से बढ़कर समझती हैं और संज्ञा अपने को उनके बराबर ही समझती है। अब आपको निर्णय करना होगा कि इन दोनों में कौन ठीक है।"

"अच्छी बात। हम आज ही इस बात का निर्णय करेंगे।"

महापण्डित यह विश्वास कर कि राजकुमार के हाथ से आमात्य की लड़की के साथ अन्याय नहीं होगा, चला आया; परन्तु उसके घर पहुँचने के दो घड़ी के भीतर ही संज्ञा रोती हुई पिता के घर लौट आई।

पिता ने पूछा, "क्या हुआ है?"

संज्ञा ने बताया, "ज्योति ने अपने आगार में दुराग्रह आरम्भ कर दिया है।"

"क्या अर्थ है इसका?"

"पिता जी! वह इसको सत्याग्रह कहती है। उसने कपड़े फाड़ डाले हैं, अपने आगार का सामान तोड़-फोड़ डाला है और बाल बिखेरकर लेट गई है। उसने खाना-पीना बन्द कर दिया है। महाराज ने जब पूछा कि क्या हुआ है तो कहने लगी कि वह सत्य के लिए मरने जा रही है। उसने कहा है कि उसके कहने पर विश्वास नहीं किया गया, इस कारण वह अब अपने आगार से बाहर नहीं निकलेगी, अन्न-जल को मुख नहीं लगाएगी, अब उसकी अर्थी ही आगार से निकलेगी। विवश महाराज ने मुझको बुलाकर आज्ञा दी है कि मैं अपने माता-पिता के पास चली जाऊँ और वे मेरे निर्वाह का प्रबन्ध कर देंगे।"

अगले दिन चक्रधर ने आमात्य-पद से त्यागपत्र दे दिया।

समय के व्यतीत होते-होते ज्योति का सम्बन्ध निरुपम भद्रायण से शिथिल होता गया। कुणाल के युवराज बनने के कई मास पश्चात् ज्योति ने भद्रायण को बुलवाया। उस समय वह महाराज के पास बैठा हुआ उनका मनोरंजन कर रहा था। द्वारपाल आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बोला, "महाराज ! दासी आई है और कह रही है कि प्रभु भद्रायण को रानी जी ने स्मरण किया है।"

"भद्रायण को ?" महाराज ने क्रोध में पूछा, "कौन आया है बुलाने ?"

"निबिड़िया दासी है, महाराज !"

कुछ विचार कर युवराज ने कहा, "जाओ, भद्रायण ! पर शीघ्र लौट आना।"

भद्रायण अन्तःपुर की ओर चल पड़ा। साथ-साथ निबिड़िया जा रही थी। भद्रायण को हँसी सूझी। उसने निबिड़िया से पूछा, "तुम्हारे हृदय के शूल की क्या अवस्था है ?"

"कुछ कम हो रहा है, प्रभु !"

"क्या हुआ है ?"

"जिस स्त्री के पीछे मेरा प्रेमी भागता हुआ जा रहा था, उस स्त्री ने उसको ठुकरा दिया है।"

"सत्य ?"

"हाँ, प्रभु !"

"तो अब वह तुम्हारे पास आता है ?"

"आप भी तो बौद्धों की-सी बात करते हैं। उसके मेरे पास आने अथवा न आने से कोई प्रयोजन नहीं है। अब मैं यह देख रही हूँ कि वह किसी अन्य स्त्री के मोहजाल में नहीं फँसा हुआ है। इससे हृदय को सुख और शान्ति मिलती है।"

निरुपम उस दासी के कहने का अर्थ समझ नहीं रहा था। इस कारण उसने पूछा, "पर वह है कौन ?"

"प्रभु ! अपने प्रेमी का नाम मैं अपने मुख से निकाल नहीं सकती।"

इस समय वे ज्योति के आगार के द्वार पर पहुँच गए थे। दासी निरुपम को द्वार पर खड़ा कर भीतर सूचना देने गई। निरुपम उसको जाते देखता रह गया। कुछ काल में वह आई और निरुपम के भीतर जाने के लिए द्वार खोल एक ओर को हटकर खड़ी हो गई।

निरुपम इस समय बुलाए जाने पर विस्मय कर रहा था। वह जब ज्योति के सम्मुख खड़ा हुआ, तो उसने उसको अपने सामने रखी चौकी पर बैठने को कहा। वह स्वयं भी एक चौकी पर बैठी थी। जब निरुपम बैठ चुका तो उसने कहा, "प्रभु ! अब काल में परिवर्तन हो चुका है। कितने ही काल से मैं आपको रात के समय यहाँ बुला नहीं सकी। युवराज मेरा विश्वास नहीं करते। वे सोने से पूर्व आगार को ताला लगाकर सोते हैं।"

"यह स्वाभाविक ही है देवी ! तो हमको मिलने के लिए रात के अतिरिक्त कोई अन्य समय निकालना चाहिए।"

"यह अब नहीं हो सकता। मुझको सन्देह है कि किसी ने उनको हमारे विषय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेत कर दिया है।"

"यह एक दिन होना ही था। मैं जानता था कि मेरा और आपका सम्बन्ध केवल वासना का था। मैं आपको इस अवस्था में लाने के लिए यत्नशील था। साथ ही यह भी जानता था कि मुझको इस अवस्था में विशालापुरी लौट जाना है। एक बात है....मेरी इच्छा थी कि मैं वहाँ पर जाकर भामिनी से विवाह कर लूँगा। अब भामिनी यहाँ एक चैत्य में बन्दी है। उसको मेरे साथ कर दीजिए।"

"वह अब श्राविका बन गई है। मैं इस विषय में आज्ञा नहीं दे सकती।"

"मुझको उससे मिलने का अवसर दिला दीजिए।"

"महाप्रभु सुनन्द से क्यों नहीं कहते?"

"आपके कहने से काम सुगमता से हो जाएगा।"

"अच्छी बात है। मैं यत्न करूँगी। फिर भी मेरा विचार है कि आपकी इच्छा पूर्ण नहीं होगी। जहाँ तक मेरे सम्बन्ध की बात है, मैं चाहती हूँ कि आप यहाँ से चले जाएँ। देशाटन करने जाने का बहाना ठीक रहेगा।"

"यह महारानी जी की आज्ञा है?"

"नहीं, यह मेरा निवेदन है।"

निरुपम उठा और एक अक्षर बोले बिना ही बाहर निकल आया। जब वह द्वार से बाहर निकला तो निबिड़िया उसकी प्रतीक्षा में खड़ी थी। भद्रायण बिना उसकी ओर देखे उधर चल पड़ा, जिधर युवराज बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। निबिड़िया उसके साथ हो ली। उसे अपने साथ आते देख भद्रायण ने उसकी ओर देखकर पूछा, "किधर चल रही हो?"

"आपके साथ-साथ।"

"क्यों?"

"इसलिए कि शायद आप मेरी ओर देख सकें।"

निरुपम ठहर गया और विस्मय में उसकी ओर देखने लगा। उसने अभी तक इस दासी की ओर आँख भरकर नहीं देखा था। दासी अच्छी-खासी सुन्दर लड़की थी। निरुपम ने उसको सिर से पाँव तक देखकर कहा, "क्यों, क्या है तुममें?"

"मेरा शरीर सुन्दर नहीं है न?"

"नहीं....हाँ....परन्तु नहीं। तो फिर क्या हुआ? मैं क्यों तुम्हारी ओर देखूँ?"

"लोग कहते हैं कि अच्छी वस्तुओं के दर्शन से विचार भी अच्छे बनते हैं। शायद आपको भी बुद्धि प्राप्त हो।"

"एक सुन्दर वस्तु उस आगार में भी है। मैंने उसको देखा है।"

"तो आपने कुछ नहीं देखा। खैर, छोड़िए इस बात को। चलिए, महाराज प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"तुम क्या चाहती हो? मैं तुमको उस दिन भी नहीं समझ सका और आज भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं।"

"प्रभु! मुझको समझने की आवश्यकता नहीं। अपने-आपको समझने का यत्न करिये।"

"तो तुम समझती हो कि तुम मुझको मुझसे अधिक समझती हो?"

"मैंने यह नहीं कहा प्रभु! मैं तो यह कह रही हूँ कि आप अपने को नहीं समझे। गँदले दर्पण में सुन्दर वस्तु का प्रतिबिम्ब भी गँदला ही दिखाई देने लगता है। अपने मन के दर्पण को स्वच्छ करिए।"

यह कहकर निबिड़िया ने झुककर प्रणाम किया और लौट पड़ी। निरुपम वहाँ ही खड़ा था, जहाँ पर वह दासी के मुख को देखने के लिए खड़ा हुआ था। दासी को जाते देख उसने कहा, "ठहरो!"

निबिड़िया ठहर गई और घूमकर उसकी ओर देखने लगी। उसने कहा, "मैं शायद यहाँ से चला जाऊँगा और तुम्हारी यह पहेली मस्तिष्क में लेकर नहीं जाना चाहता। तुम मेरे आगार में चलो, मैं तुम्हारी बात को समझना चाहता हूँ।"

"चलिए।" दासी ने कहा। आगे-आगे भद्रायण और पीछे-पीछे दासी चल पड़ी। युवराज निवास-गृह में एक कोने के आगार में भद्रायण को रहने को स्थान मिला हुआ था। भीतर जाकर दासी ने द्वार बन्द कर दिया। उसे ऐसा करते देख निरुपम ने कहा, "यह क्यों?"

"जिससे कोई अन्य यहाँ आकर हमारी बात को सुन न सके और मैं आपको अपनी बात भलीभाँति समझा सकूँ।"

"अच्छा समझाओ।"

"मेरे पिता मृग का आखेट किया करते थे। एक बार वे एक मृग के पीछे गए तो मार्ग भूल गए। बीहड़ वन में उनको दिशा-ज्ञान नहीं रहा। उनका विचार था कि वह वन, जिसमें वे मृग के पीछे गए थे, उनके निवास-स्थान से पूर्व की ओर है। वास्तव में वह उस स्थान से दक्षिण की ओर था। रात हो गई और वे अपने स्थान पर पहुँचने के लिए पश्चिम की ओर चले गए। उनको मार्ग-दर्शन कराया भील ने। उसने उनको कहा, 'श्रीमान्! आपका निवास-स्थान पश्चिम की ओर नहीं, अपितु उत्तर-पूर्व की ओर है।' पिता जी को उस अपढ़-असभ्य व्यक्ति के कहने पर विश्वास नहीं आया। जब उस भील ने बहुत आग्रह किया तो पिता जी ने परीक्षा की और अपने को भूला हुआ पाया।"

इतना कह वह चुप हो गई। निरुपम भद्रायण की अब समझ में आया कि वह उसको पथभ्रष्ट मानती है। "अपने को समझो!" "मन के दर्पण को स्वच्छ करो!" इत्यादि वाक्यों के अर्थ वह समझने लगा। एक असभ्य-अपढ़ के द्वारा पथप्रदर्शन की बात भी वह समझ गया। इतना जानने पर उसने कहा, "तो तुम मुझको मार्गदर्शन कराना चाहती हो?"

"हाँ, क्योंकि मैं आपको पथभ्रष्ट मानती हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कैसे ?"

"आप पूर्व की ओर जा रहे थे, इस बीच में मृगतृष्णा के चक्कर में पड़कर पथ भूल गए। अब आप पूर्व की ओर जाने की अपेक्षा पश्चिम की ओर चल पड़े हैं।"

निरुपम की समझ में बात आती जा रही थी। उसने पूछा, "पूर्व किधर है और पश्चिम किधर? साथ ही जो दिशाज्ञान तुम करा रही हो, उसके ठीक होने का प्रमाण कहाँ है ?"

"परीक्षा करने से विदित होगा।"

"हाँ, तो बताओ, मैं किधर जा रहा था और किधर जाना चाहिए था ?"

"आप बौद्ध विचारधारा को छोड़ वैदिक विचारधारा के अनुयायी बनना चाहते थे। फिर आप मृगतृष्णा के चक्कर में आ गए। आप अपना मार्ग भूल गए और बौद्ध संघ के पोषक हो गए। आप इस पोषण को छोड़ पुनः उस मार्ग पर चले आइए।"

"पर इसमें तुम सुन्दर हो अथवा कुरूप हो, इसका क्या सम्बन्ध है ?"

"यह रहस्य मैं नहीं बताऊँगी। यह समय और परिस्थिति ही स्पष्ट कर सकेगी।"

निरुपम गम्भीर विचार में पड़ गया। वह ज्योति के पीछे-पीछे भाग रहा था। इस भाग-दौड़ में वह बौद्ध संघ का, जिसका कि वह विरोधी था, सहायक बन गया। ज्योति मरुभूमि में जलाशय की भाँति विलीन हो गई। क्या मैं मरुभूमि में भटक-भटक अपने को समाप्त कर लूँ अथवा इस दासी का हाथ पकड़, इस मरुभूमि से बाहर निकल जाऊँ और अपना सरस जीवन आरम्भ करूँ ?

वह युवराज के पास जा ज्योति की निन्दा करने का विचार कर रहा था। वह ज्योति की ऐसी-ऐसी बातें महाराज को बताना चाहता था कि वे उससे घृणा करने लगें। परन्तु इस दासी ने उसको इस प्रकार मरुभूमि में भटकने के स्थान इससे बाहर निकलने की ओर संकेत किया है। इस प्रकार का सुझाव पाकर वह विचार करता था कि वह तो चैत्य छोड़ने वाला था। फिर क्या हुआ कि वह चैत्य छोड़ने के स्थान पर अनेकों चैत्यों की स्थापना करानेवाला बन बैठा ?

भामिनी के विहार वाले आगार की साथिन का नाम अंजना था। वह विहार में पिछले पाँच वर्ष से थी और अभी चौबीस वर्ष की प्रतीत होती थी। युवा थी और इच्छी रूपरेखा वाली थी। अंजना को भिक्षा करने चैत्य से बाहर जाने की आज्ञा मिली हुई थी। पहले कुछ दिन तक तो भामिनी गुफा में बंद रहने के कारण अस्वस्थता अनुभव करती रही। उसका चित्त किसी से बात करने को नहीं चाहता था। वह अपने आगार में पड़ी रहती थी और अनुभव करती थी कि उसका मस्तिष्क कार्य नहीं करता। उसके श्राविका बनने की घटना तो इतनी विचित्र हुई थी कि जब भी वह उस पर विचार करती थी, अपने-आपको पागल अनुभव करती थी।

फिर भी स्नान करने के समय मिली श्राविका ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। अगले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन स्नान करने के लिए वह श्राविका पुष्करिणी पर पहले ही पहुँची हुई थी और भामिनी को आई देख वह मुस्कराकर उसकी ओर देखने लगी। आज वहाँ अन्य बहुत-सी श्राविकाएँ स्नान कर रहीं थीं। इस कारण उसने भामिनी से बात करने का यत्न नहीं किया। ऐसा भामिनी को अनुभव हुआ। एक बार उसने उसका नाम पूछने के लिए उसकी ओर देखा, परन्तु उस श्राविका ने दूसरी स्नान करती हुई श्राविकाओं की ओर देखकर मुख मोड़ लिया।

जब भामिनी स्नान करके अपने आगार की ओर चली तो वह भी स्नान समाप्त कर कपड़े पहन, उसके पीछे हो ली। भामिनी अपने आगार में पहुँची तो वह श्राविका भी उसके पीछे-पीछे वहाँ पहुँच गई। अंजना वहाँ नहीं थी। यह देख उस श्राविका ने सुख की साँस ली और कहा, "भगवान् का धन्यवाद है कि आप अकेली हैं।"

"क्यों, क्या बात है?"

"तो आपको याद नहीं आया कि मैं कौन हूँ?"

"नहीं, वास्तव में मेरा मस्तिष्क गुफा में बन्द रहने के कारण इतना बिगड़ गया है कि कभी-कभी तो मुझको ऐसा अनुभव होने लगता है कि मैं पागल हो गई हूँ।"

"देखिए, मैं आपको याद दिलाती हूँ। मेरा नाम दंपा है।"

"ओह! भामिनी ने लम्बा श्वास लेते हुए कहा, "तो तुमको भी श्राविका बना लिया गया है?"

"नहीं देवी, मैं अपनी इच्छा से यहाँ आई हूँ। यदि इस प्रकार कहूँ कि मुझको किसी ने यहाँ आपका पता लेने भेजा है, तो उपयुक्त होगा।"

"किसने?"

"कुमार सम्प्रति ने।"

यह सुन भामिनी को उस दिन की सब घटनाएँ स्मरण हो आईं, जिस दिन उसका कुमार से विवाह होने वाला था और वह महारानी जी के साथ बन्दी बना ली गई थी।

इसके पश्चात् जो कुछ हुआ, वह उसको स्पष्ट रूप में स्मरण नहीं था। उसको अपना गुफा का जीवन धुँधला-सा ही याद पड़ रहा था। इससे उसने पूछा, "कुमार कहाँ हैं?"

"विन्ध्य प्रदेश में वीरभूमि में हैं। पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने का विचार कर रहे हैं। मुझको उन्होंने आपकी देखभाल के लिए यहाँ भेजा है।"

"महारानी जी कहाँ हैं?"

"हिमालय के पार्श्व में एक विहार में बन्दी हैं।"

"मेरे पिता जी?"

"कुमार के साथ हैं।"

"मेरे यहाँ होने का उनको ज्ञान कैसे हुआ?"

"राजप्रासाद में हमारी ओर से भेदिए पहुँच गए हैं और वे वहाँ का सब समाचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमको बताते रहते हैं।"

इस समय अंजना वहाँ आ गई तो दंपा ने संकेत कर बात बदल दी। उसने कहा, "मैं यत्न कर रही हूँ कि मुझको चैत्य से बाहर भिक्षा करने की स्वीकृति मिल जाए।"

"तुम तो अभी सर्वथा नई आई प्रतीत होती हो?" अंजना ने भामिनी के समीप बैठते हुए कहा।

दंपा ने शोकयुक्त मुद्रा से कहा, "हाँ, अभी एक मास ही तो हुआ है। पर इससे क्या होता है? कई श्राविकाओं को तो चैत्य में प्रवेश पाते ही यह स्वीकृति मिल जाती है।"

"मैं जानती हूँ कि यह कैसे मिल जाती है।"

"कैसे मिल जाती है?" भामिनी ने पूछा।

"देवी कल्याणी की सेवा करने से।"

"कैसी सेवा?"

"वे चैत्य का काम करती-करती थक जाती हैं। उनके पाँव दबाने से अथवा सिर में तैल-मर्दन से।"

"यह तो एक साधारण-सी बात है।" दंपा का कहना था।

"साथ ही उनकी हाँ-में-हाँ मिलाने से।"

"इसका क्या अभिप्राय है?"

"जब वे किसी की निन्दा करें, तो तुम भी निन्दा करो, और जब किसी की प्रशंसा करें तो तुम भी प्रशंसा करो।"

दंपा मुस्कराई और चुप हो गई। अंजना ने पूछा, "तुम परस्पर पूर्व-परिचित हो?"

दंपा ने भामिनी को उत्तर देने नहीं दिया। वह स्वयं बोल उठी, "नहीं, मैंने इनको कल ही देखा है। स्नान करते समय इनके शरीर का गठन और रूपरेखा देख मैं इन पर मुग्ध हो गई हूँ।"

अंजना हँस पड़ी। भामिनी को इस हँसी का अर्थ समझ में नहीं आया। फिर भी दंपा ने अंजना का साथ दिया और कहा, "मनुष्य का यह स्वाभाविक गुण है कि वह प्राकृतिक सौन्दर्य का उपासक होता है। मनुष्य-शरीर प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ कृति है, और जब यह दूसरे शरीरों से अधिक सुन्दर बन जाता है तो इस शरीरधारी को देवता की पदवी दे दी जाती है। भगवान् तथागत की सुन्दर काया, उनका चौड़ा वक्षःस्थल व लम्बी भुजाएँ, विशाल मस्तक, मोटी कमलसमान आँखें, और मोटे-मोटे अधर, उनको आकर्षण का केन्द्र बनाने में मुख्य थे। इसी प्रकार जब मैंने इनको देखा तो इन पर मुग्ध हो गई।"

"बस अथवा कुछ और भी?" अंजना ने मुस्कराते हुए पूछा।

"और क्या हो सकता है? यदि मैं पुरुष होती तो इनसे विवाह की इच्छा करती।"

इस पर तो और भी हँसी छिड़ी और अंजना दंपा को अपने समीप घसीटकर उससे आलिंगन करने लगी। भामिनी उनको परस्पर पति-पत्नी का अभिनय करते देख हँसे बिना नहीं रह सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब दंपा और अंजना यह विनोद कर चुकीं तो एक-दूसरे की बाहों से निकल भामिनी की ओर मुस्कराकर देखने लगीं। दंपा ने बात बदलने के लिए भामिनी से पूछा, "बहन, आप विवाहिता थीं अथवा अविवाहिता?"

भामिनी इस प्रश्न से समझ गई कि यह उससे किसी प्रकार का पूर्व-परिचय न रखने की बात प्रकट कर रही है। फिर भी इस प्रश्न से उसका मुख लाल हो गया। उसके मुख पर रक्तवर्ण देख दंपा ने कहा, "प्रतीत होता है कि आप अविवाहिता थीं।"

"तब तो ये हमारी बातों को समझ नहीं सकतीं।"

"तुम्हारे पति जीवित हैं क्या?" दंपा ने अंजना से पूछा।

"नहीं। तुम यहाँ कैसे आई हो?" अंजना ने प्रतिप्रश्न किया।

"मेरे पति बूढ़े थे। मैं उनकी ईर्ष्या से दुःखी हो घर से निकल आई थी। मैंने समझा था कि पाटलिपुत्र में एक युवती के लिए जीवन-निर्वाह करना अति सुगम होगा, परन्तु यहाँ आकर पता चला कि सहस्रों श्राविकाएँ नगर के मार्गों पर घूमती हुई मेरी जैसों के लिए बाधा उपस्थित कर रही हैं। इस परिस्थिति को देख मैंने यही उचित समझा कि मैं भी श्राविका बन जाऊँ।"

अंजना ने अपना परिचय देते हुए कहा, "मुझको यहाँ आए पाँच वर्ष हो गए हैं। वर्षभर तो यहाँ के लोगों से परिचय प्राप्त करने में लग गया। धीरे-धीरे जब मेरा परिचय यहाँ के निवासियों से होने लगा तो तुम्हारी-जैसी बहनों से मनोविनोद होने लगा। इतने मात्र से सन्तुष्ट न रहकर, अब मैंने बाहर जाने का द्वार खोल लिया है और जीवन सरलता से चलने लगा है। इसके पश्चात् तो अब चित्त अधिक एकाग्र हो जाता है।"

दंपा ने अंजना की कथा सुन एक लम्बी साँस ली और कहा, "तुम अच्छी रूपरेखा वाली हो, इसीलिए तुम्हारे लिए संसार सुलभ हो गया है। परन्तु मैं तो यह आशा नहीं रख सकती, इसलिए मैं तो केवल आँखों से देखकर ही तृप्ति प्राप्त करने का यत्न करती हूँ।"

अंजना ने मुस्कराकर कहा, "मुझको तो कोई ऐसी बात प्रतीत होती नहीं कि जिससे तुमको जीवन से निराश होने की आवश्यकता समझूँ। धैर्य से अपनी बारी की प्रतीक्षा करो। भगवान् तुम्हारी भी सुनेंगे।"

उस दिन और अधिक बात नहीं हो सकी। परन्तु भामिनी को पता चल गया कि बाहर के लोग उसको भूले नहीं हैं। अब वह दंपा से एकान्त में मिलने का यत्न करने लगी। सायंकाल के भोजन के पश्चात् वे दोनों विहार के मध्य में बनी पुष्करिणी के तट पर बैठकर बातचीत करने का अवसर पा जातीं और दंपा, जो भी समाचार उसको बाहर से मिल पाते थे, बता देती थी।

दंपा से मिलने के लिए बाहर से कभी-कभी उसकी माँ आती थी और वह, जहाँ अपनी लड़की के लिए मिठाई और दूध दे जाती थी, वहाँ उसके लिए पत्र भी लाती थी। दंपा ने भामिनी को बता रखा था कि जो स्त्री उससे मिलने आती है वह उसकी माँ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह विष्णुचरण की भेजी हुई गुप्तचर है। वह विष्णुचरण के पत्र लाती है और उसके पत्र विष्णुचरण के पास ले जाती है। इससे भामिनी का उत्साह बढ़ गया। वह समझ गई कि उसकी देखभाल करनेवाले भी संसार में हैं। एक दिन वज्रबाहु का पत्र आया। उसमें लिखा था कि वे शीघ्र ही उसको मुक्त कराने के लिए आ रहे हैं। इस उत्साह की बात सुनकर तो उसका मुख खिल उठा। इस प्रकार कई मास व्यतीत हो गए। एकाएक एक दिन कल्याणी ने उसको मध्याह्न-भोजन के पश्चात् बुलवाया। वह वहाँ गई तो निरुपम भद्रायण को देख विस्मय में खड़ी रह गई। कल्याणी ने उसको समीप बैठाकर कहा, "ये श्रावक तुमसे मिलने आए हैं।"

निरुपम ने भामिनि से कहा, "देवी! यहाँ ही निवेदन करूँ अथवा आप बाहर एकान्त में चलने का कष्ट करेंगी?"

भामिनी ने कहा, "बाहर एकान्त में जाने की आवश्यकता मैं नहीं समझती। मैं तो आपसे मिलने की भी आवश्यकता नहीं समझती।"

"आवश्यकता तो मुझको है।"

"तो तुम कहो, क्या चाहते हो?" भामिनी ने बैठे-बैठे ही कहा।

"एकान्त में बात हो सके तो ठीक होगा।"

"मैं यहाँ ही और भगिनी जी के समक्ष ही बात करना ठीक समझती हूँ।"

इससे निरुपम सोच में पड़ गया। कल्याणी ने उसकी कठिनाई को समझ वहाँ से टल जाना उचित समझा। इस कारण वह उठकर, वहाँ से जाते हुए कहने लगी, "मैं एक घड़ीभर में आती हूँ, तब तक आपको जो कहना-सुनना हो, कह-सुन लें।"

भामिनी ने भी उठते हुए कह दिया, "हमने जो कुछ कहना-सुनना है, कह-सुन लिया है। अधिक कुछ कहने-सुनने को नहीं है।"

कल्याणी ने भामिनी को बैठाते हुए कहा, "देखो कमला! बौद्ध श्राविका के लिए क्रोध करना उचित नहीं। तुम बैठकर इस बालक की बात सुन लो और फिर जैसा मन में आए करना। यह मैं आश्वासन दिलाती हूँ कि तुम्हारे साथ कोई बलात्कार नहीं कर सकता है।"

"पर मेरे साथ तो पहले ही बलात्कार हो रहा है! मुझे यहाँ रहने के लिए विवश किया जा रहा है!"

"तो क्या तुम अपनी इच्छा से श्राविका नहीं बनीं?"

"यह मुझको पता नहीं। जहाँ तक मैं समझती हूँ मैं रुग्ण थी और उस समय मेरा मस्तिष्क बिगड़ गया था।"

"इसका ही सुझाव तो मैं बताने आया हूँ। तुम मेरे साथ विवाह करने का विचार रखती थीं। अब वह समय आ गया है कि मैं तुमसे उस बात के लिए निवेदन करूँ।"

"वह मेरी भूल थी। मैंने आपको स्वच्छ मोती समझा था, परखने पर आप मिट्टी का ढेला ही सिद्ध हुए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देखो भामिनी ! अब मैं भारतसम्राट् के मंत्रिमण्डल में मंत्री हूँ। उस समय केवल एक निर्धन श्रावक था। मैं अब स्वतन्त्र हूँ और सुख तथा सुविधा-युक्त जीवन व्यतीत कर सकता हूँ।"

"इसका मेरे निर्णय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।"

"मैं ही ऐसा व्यक्ति हूँ, जो तुमको इस विहार से छुट्टी दिलवा सकता हूँ।"

"मुझको छुट्टी नहीं चाहिए। मैं समझती हूँ कि आप में और मेरे में अब और अधिक वार्तालाप की अवश्यकता नहीं है। मैं अब जाती हूँ।"

कल्याणी ने कहा, "कमला सुनन्दा ! यदि तुम्हारे स्थान पर मैं होती तो अस्वीकार करने में इतनी शीघ्रता न करती।"

"भगिनी ! मैंने आपको अपने स्थान पर आने के लिए मना नहीं किया।"

कल्याणी ने मुस्कराकर पूछा, "भन्ते ! क्या तुम मुझसे विवाह करना चाहोगे?"

"आप मेरी माँ के बराबर हैं।" निरुपम ने मुस्कराते हुए कहा।

"तो अब बताओ कमला ! मैं कैसे तुम्हारा स्थान ले सकती हूँ?"

"यह मेरा दोष नहीं। मैं समझती हूँ कि यदि आप मेरे स्थान पर होतीं तो इस महानुभाव को धक्के दिलवाकर विहार से बाहर निकलवा देतीं।"

"तो तुम मुझसे विवाह करने का विचार नहीं रखतीं?" निरुपम ने विनीत भाव से पूछा।

"नहीं।"

कल्याणी ने कहा, "प्रभु भद्रायण ! मैं समझती हूँ कि अब तुम यहाँ से जा सकते हो।"

निरुपम मुँह लटकाए हुए वहाँ से चला गया। उसके चले जाने पर कल्याणी ने भामिनी के सिर पर प्यार देते हुए कहा, "तुमने ठीक किया है कमला ! मैं इससे प्रसन्न हूँ।"

"आपने इसको भीतर क्यों आने दिया?"

"महाप्रभु सुनन्द इस विहार के अध्यक्ष हैं और मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकती।"

भामिनी ने इस पर और कुछ नहीं कहा। वह वहाँ से चली गई।

भद्रायण राजप्रासाद छोड़ देना चाहता था। इस कारण वह युवराज के पास जाकर कहने लगा, "महाराज ! मैं देशाटन के लिए जाना चाहता हूँ।"

"क्यों?"

"एक संन्यासी और लेखक के लिए देश में भ्रमण करना आवश्यक है। इससे ज्ञान की वृद्धि होती है।"

"परन्तु प्रभु ! तुम तो मेरी आँखें हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऐसी आँखें तो महाराज, यहाँ सुगमता से मिल जाएँगी। मैं कल प्रातःकाल ही यज्ञाँ से चला जाऊँगा।"

"ज्योति से छुट्टी ले आए हो?"

"उन्हीं की आज्ञा से जा रहा हूँ।"

"तो जाओ!" ज्योति की किसी भी बात की अवहेलना युवराज नहीं कर सकता था।

इस प्रकार छुट्टी पा निरुपम अपने आगार में जाकर विचार करने लगा कि उसको कहाँ और कैसे जाना चाहिए। इस समय उसको स्मरण हो आया कि महाप्रभु कौल्यायन ने वचन दिया था कि ज्योति को राजप्रासाद में पहुँचाने के लिए उसको अपार धन मिलेगा। उसने मन में निश्चय कर लिया कि महाप्रभु के वचन को ज्योति पूर्ण करेगी। अतः वह ज्योति से धन माँगने के लिए चल पड़ा।

ज्योति से उसकी भेंट सायंकाल से पूर्व न हो सकी। युवराज और ज्योति भ्रमणार्थ गंगातट की ओर जा रहे थे। ज्योति भद्रायण को वहाँ द्वार पर खड़ा देख पूछने लगी, "तो आप कल प्रातःकाल जा रहे हैं?"

"हाँ, देवी! मैं आपसे एक निवेदन करने आया हूँ।"

"हाँ, करिये।" ज्योति ने मुस्कराते हुए कहा।

"पृथक् में कहने की बात है।"

ज्योति के माथे पर त्योरी चढ़ गई। युवराज देख न सका कि निरुपम की इस माँग पर ज्योति प्रसन्न है अथवा रुष्ट। इस कारण उसने कह दिया, "देवी! यदि इच्छा हो तो इस श्रावक की बात सुन लो। कल इसको चला जाना है। इसने मेरी बहुत सहायता की है।"

ज्योति युवराज को वहीं खड़ा छोड़, आगार के प्रांगण में दस पग उस ओर जाकर खड़ी हो गई और धीरे से पूछने लगी, "क्या चाहते हो?"

"मुझे आपको यहाँ लाने और इस पद पर पहुँचाने के लिए बीस सहस्र स्वर्ण का वचन दिया गया था।"

"यह वचन किसने दिया था?"

"वचन तो महाप्रभु कौल्यायन ने दिया था, परन्तु धन आपके द्वारा दिया जाना था। सम्राज्ञी आप बनी हैं।"

ज्योति का मुख क्रोध से लाल हो गया। वह क्रोध में कुछ कहने वाली थी, परन्तु दूर युवराज को खड़ा देख और दासियों को अपनी ओर देखते पा, अपना क्रोध भीतर-ही-भीतर पी गई। उसने बहुत शान्ति के साथ कहा, "देखो भद्र! जो कुछ तुमने मेरे लिए किया है, उससे कहीं अधिक मूल्य मैं तुमको दे चुकी हूँ। एक-एक रात के लिए मेरी जैसी स्त्री को लाख-लाख स्वर्ण देनेवाले उपस्थित हैं। कुमार सम्प्रति मेरे लिए साम्राज्य छोड़ने के लिए तैयार थे। तुम यदि कल प्रातःकाल तक पाटलिपुत्र से बाहर नहीं निकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते, तो तुम्हारा शव कुत्ते और कौवे खाते दिखाई देंगे। समझ गए न?"

इतना कहकर निरुपम को वहीं छोड़ वह युवराज के पास चली गई। वहाँ पहुँच उसने कहा, "महाराज, चलिए।"

"क्या बात थी देवी?"

"अपनी माँ के लिए सन्देश देना था, दे दिया है।"

वे दोनों चलते गए, परन्तु भद्रायण अभी भी वहीं खड़ा था। वह इस स्त्री की बात पर विचार कर रहा था।

युवराज और ज्योति के चले जाने के पश्चात् निबिड़िया मुस्कराती हुई भद्रायण के पास आई और बोली, "प्रभु! इस मलिन मुख के साथ यहाँ खड़े रहने से तो दासियाँ हँसी उड़ाएँगी। आप अपने आगार में चलिए। कहिए तो आपकी समस्या का सुझाव बताने वहाँ आऊँ?"

"क्या समस्या है मेरी?"

"तो क्या यहाँ सबके सम्मुख बताने लगूँ?"

भद्रायण ने देखा कि दासियों की मण्डली दूर प्रांगण में खड़ी उनकी ओर देख रही है। इससे वह सतर्क हो वहाँ से चल पड़ा। उसने दासी को अपने साथ आने के लिए नहीं कहा। उसे अपने पर क्रोध आ रहा था कि वह इस साधारण शिक्षा और जन्म वाली लड़की की हँसी का पात्र बन रहा है। फिर भी उसकी अन्तरात्मा कह रही थी कि वह उसके पीछे-पीछे आएगी। किन्तु वह इस सम्भावना को नहीं चाहता था।

उसे अपने आगार में पहुँचे अभी एक घड़ीभर भी नहीं हुआ था कि धीरे-धीरे आगार का द्वार खोल निबिड़िया उसके सामने आ खड़ी हुई। भीतर आकर उसने द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा दी। उसे ऐसा करते देख निरुपम ने कहा, "क्या करती हो? कोई हमको इस प्रकार बन्द आगार में देखेगा तो हँसी उड़ाएगा और निन्दा करेगा।"

"परन्तु यह बात बहुत ही गोपनीय है।"

"क्या कहने आई हो?"

"आपकी समस्या का सुझाव देने आई हूँ।"

"क्या समस्या है मेरी?"

"आप संन्यास त्याग गृहस्थ में जाना चाहते हैं। संन्यास से गृहस्थ अधिक कठिन अवस्था है। अब आपने अपने को समझना आरम्भ कर दिया है, किन्तु आपको कभी स्वतन्त्र जीविकोपार्जन करने का अवसर नहीं पड़ा। इससे आपको भय प्रतीत होता है कि आप गृहस्थ में कैसे निर्वाह करेंगे। यह केवल मानसिक दुर्बलता ही है, जो आपमें संसार से पृथक् रहने पर उत्पन्न हो गई है। आप, ऐसा प्रतीत होता है कि महारानी जी से इस विषय में सहायता की याचना करने के लिए गए थे और उन्होंने वह अस्वीकार कर दी है। वह तो मरुभूमि है, जो पूर्ण वायुमण्डल का जल सोखती है और आप उसी मरुभूमि से जल पाने की आशा में गए थे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुपम इस लड़की की युक्ति पर चकित रह गया। पहले भी एक-दो बार वह उसकी अन्तरात्मा को खोदकर निकाल चुकी थी। इससे वह विस्मय करने लगा। उसको सन्देह होने लगा था कि यह कोई दासी नहीं है। इसको तो महारानी होना चाहिए था। वह मन-ही-मन विचार कर रहा था। इससे उसके मन में और जानने की इच्छा हो गई। उसने ध्यान से दासी की ओर देखकर पूछा, "तुम कौन हो, जो इतनी चतुर और बुद्धिमती होकर भी दासी का काम करती हो?"

"प्रभु! इतने विक्षुब्ध होने की आवश्यकता नहीं। मैं निबिड़िया दासी हूँ। क्या मैं आपकी समस्या का सुझाव भी बताऊँ?"

"नहीं, पहले अपना परिचय दो। मैं समझता हूँ कि तुम किसी उच्च परिवार की कन्या हो और इस गन्दगी में किसी प्रयोजन-विशेष से रहती हो।"

"आपने आज एक बात तो ठीक समझी है। पर मैं बताऊँ क्यों?"

निरुपम मुस्कराया और बोला, "यदि मैं ठीक समझा हूँ कि तुम किसी उच्च परिवार की हो, तब तुमको खड़े-खड़े बात करने की आवश्यकता नहीं। मैं तुमको इतने काल तक न समझने के लिए क्षमा चाहता हूँ, देवी! बैठ जाओ!"

निरुपम चौकी पर बैठ गया था। आगार में दो चौकियाँ रखी थीं। निबिड़िया भी एक चौकी पर बैठकर कहने लगी, "अब मैं आपको वह गोपनीय बात बताती हूँ, जिसके बताने के लिए मैं आपके पास आई हूँ।

"मैं पाटलिपुत्र के एक प्रसिद्ध पंडित शंखपाणि की पुत्री हूँ। वे देववाणी के प्रसिद्ध विद्वान् तथा लेखक थे। महाराजाधिराज के बौद्ध संघ को प्रोत्साहन देने के कारण देववाणी के पढ़नेवाले कम होने लगे। दूसरी ओर बौद्ध चैत्यों को राज्य के राज्यकोष से सहायता मिलने के कारण, राज्यकोष को धन की आवश्यकता बढ़ने लगी और जनता पर करवृद्धि होने लगी। पिताजी को जीवन चलाना कठिन हो गया। वे रुग्ण होने लगे और समय से पूर्व ही परलोक-गमन कर गए।

"माँ नगर छोड़कर गाँव में जाकर रहने लगीं। वहाँ वे थोड़ी-सी भूमि तोड़ कृषि कर अपना निर्वाह करने लगीं। मैं वहाँ उनके साथ ही थी। माँ स्वयं विदुषी हैं और उन्होंने मुझको पढ़ा-लिखाकर विदुषी बनाया है। वह मेरा किसी सुपुत्र ब्राह्मण से विवाह करने का विचार कर रही थीं कि एक रात्रि को दो व्यक्ति हमारे द्वार पर भोजन की याचना करने आ खड़े हुए।

" 'देवी!' एक ने कहा, 'क्या दो रोटी और लोटाभर जल मिल सकेगा?'

"माँ ने उनको चारपाई पर बिठाया और मुझको आटा गूँधने पर लगाकर, वह स्वयं खेत में शाक लेने चली गईं।

"मैं आटा गूँधके आग जलाने लगी तो दोनों में से वृद्ध ने कहा, 'देवी! बहुत कष्ट दिया है हमने आपको, परन्तु हम विवश हैं। दो दिन से एक दाना अन्न नहीं खाया।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो क्या इन दिनों में आपको एक भी गृहस्थ ऐसा नहीं मिला, जो आपको दो रोटी दे सकता?"

" 'हमने दो दिन में यह पहला द्वार ही खटखटाया है देवी!'

"मुझको यह बात विस्मयजनक प्रतीत हुई। इस समय तक माँ खेत से शाक ले आई थीं। उन्होंने वृद्ध की अन्तिम बात सुन मन में सन्देह और कुछ भय अनुभव कर पूछा—'ऐसा क्यों हुआ और इस निर्धन की झोपड़ी को पवित्र करने का कारण क्या जान सकती हूँ?'

" 'यहाँ पुरुष तो कोई नहीं है देवी?'

"माँ ने उत्तर नहीं दिया और शाक धोकर कतरने लगीं। उस वृद्ध ने कहा, 'हम आपके गृह के पीछे से जा रहे थे कि यहाँ इस गृह के भीतर से—**यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति। सर्वस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।** इन वेदमन्त्रों का उच्चारण सुनकर द्वार खटखटाने का साहस किया है।'

"माँ ने उस वृद्ध का कथन सुन शाक कतरना छोड़, उनके मुख की ओर देख पूछा, 'भगवन्! किसके पर्दापण का इस कुटिया को सौभाग्य प्राप्त हुआ है? मैं श्रेष्ठवर पण्डित शंखपाणि की विधवा पत्नी हूँ।'

" 'शंखपाणि!' युवक यह कहता हुआ चारपाई से उठकर भूमि पर खड़ा हो गया। विस्मय में कुछ काल तक माँ की ओर देखकर उसने कहा, 'माँ! हम आपको बहुत ढूँढते रहे हैं। मैं····।' वह महाराज के विषय में कुछ कहने लगा था, परन्तु फिर विचार कर चुप रह गया और सँभलकर बोला, 'माता जी! आप यहाँ अकेली रहती हैं क्या?'

"माँ की आँखों से अश्रुधारा बह चली। वे कुछ बोल नहीं सकीं। अब तक वे वृद्ध और युवक भूमि पर बैठ गए थे। माँ ने कहा, 'आप अतिथि हैं, आप हमारे पूज्य हैं, आप चारपाई पर विराजिए।'

" 'नहीं।' वृद्ध ने कहा, 'हम इतना अनादर नहीं कर सकते।' वृद्ध ने अपने विषय में बताया, 'माता! पाटलिपुत्र में क्रांति हो गई है। बौद्ध संघ वाले हमारी जान लेने के लिए पूर्ण देश में हमारी खोज कर रहे हैं। इससे हम पाटलिपुत्र से दूर निकल जाना चाहते हैं। राजमार्ग पर हम चल नहीं सकते। इस कारण खेतों में चलना पड़ रहा है। दिन के समय जंगल में जाकर छिप जाते हैं और रात को खेतों की मेंडों पर से कूदते-फाँदते हुए पश्चिम की ओर भागे जा रहे हैं। जंगली फल खाते हुए अजीर्ण हो रहा है। किसी गृहस्थी के घर में जाने से भय लगता है कि कहीं वह उपासक हुआ और हमारा भेद जान गया तो पकड़कर संघ के आधीन कर देगा। यहाँ वेदमन्त्र का उच्चारण होता सुन, भीतर आने का साहस किया है। हमारा अनुमान ठीक ही निकला है।'

"माँ वह कथा सुनकर रो रही थीं। मैं भी अपने आँसू रोक नहीं सकी थी। हमारी दशा देख उन भद्र पुरुषों ने अपना परिचय दिया। उनमें एक युवक कुमार सम्प्रति था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दूसरा वृद्ध पण्डित वज्रबाहु।

"हमारा घर सुरक्षित पा वे वहाँ पर कई दिन तक रहे और वहीं उन्होंने अपना भावी कार्यक्रम निश्चित किया। उस कार्यक्रम में वे राजप्रासाद में कोई अपना भेदिया रखना चाहते थे और इसी कारण उन्होंने मुझे अन्तःपुर में दासी का कार्य करने के लिए भेज दिया।

"यहाँ मैं आई और अब राजप्रासाद के प्रत्येक व्यक्ति के विषय में पूर्ण विवरण जानकर पण्डित वज्रबाहु को लिखती रहती हूँ। इस कारण मैं आपके विषय में बहुत-कुछ जानती हूँ।

"मेरा अनुमान है कि आप इस दूषित वातावरण में रहकर अपनी बुद्धि मलिन कर रहे हैं। इस कारण आपके यहाँ से चले जाने की बात कह रही थी।

"मैं समझती हूँ कि आपका स्थान युवराज्ञी के साथ नहीं, प्रत्युत कुमार सम्प्रति के साथ है। अपने विचार के लोगों के साथ ही मनुष्य शोभा पाता है।"

जैसे ज्योति के दुत्कारने से सम्प्रति की मति ठिकाने आई थी, उसी प्रकार अब निरुपम भद्रायण की मति ठीक हो गई। फिर भी निर्मल मस्तिष्क को शायद ठीक मार्ग न मिल सकता यदि निबिड़िया, जिसका वास्तविक नाम सरिता था, न मिल जाती।

भद्रायण ने मन में निश्चय कर लिया कि वह कुमार सम्प्रति के पास उसकी सहायता के लिए जाएगा। उसने पूछ लिया, "देवी! कहाँ मिलेंगे कुमार सम्प्रति?"

"उनको मिलने के लिए आपको विन्ध्य प्रदेश की वीरभूमि को जाना पड़ेगा। आज भारत में एक श्रावक को भ्रमण करने में कोई कठिनाई नहीं होती। सब स्थान पर उसका आदर होता है और उसको खाने-पीने को मिलता है। इस कारण आप सीधा वहीं चले जाएँ।"

"क्या वे लोग मेरा विश्वास करेंगे?"

"यह आपके मन की शुद्धता पर निर्भर है। कुटिल के मुख पर कुटिलता लिखी रहती है। वह छिप नहीं सकती।"

"देवी ने मेरे मुख पर कुटिलता नहीं देखी क्या?"

"नहीं, प्रत्युत अतीव सरलता देखी है। इसी कारण यह सम्मति दे रही हूँ।"

"तो यह सम्मति किसी के कहने से नहीं दी जा रही, यह देवी अपने मन से ही कह रही हैं?"

"हाँ भद्र!"

"क्यों?"

"इसका कारण तो भविष्य बताएगा। मैं न तो बताना चाहती हूँ और शायद बता भी नहीं सकूँगी।"

इतना कह सरिता उठकर द्वार का साँकल खोल बाहर निकल गई।

उस रात निरुपम को सुख की नींद आई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि महाराज और युवराज को यह कहा जा रहा था कि राजकुमार की खोज की जा रही है, तथापि देशभर में यह घोषणा की जा रही थी कि वज्रबाहु और कुमार सम्प्रति ने राज्य से विद्रोह कर लिया है, इस कारण जो भी उनको जीवित अथवा मृत पकड़कर ले आएगा उसको भारी पुरस्कार दिया जाएगा। यह घोषणा पाटलिपुत्र में तो प्रति सप्ताह होती सुनी जाती थी। राजमार्ग के शिवमन्दिर का पुजारी इस घोषणा को सुन रहा था और वह वज्रबाहु तथा विष्णुचरण के लिए बहुत चिन्ता प्रकट करता रहता था। राजप्रासाद की एक दासी दंपा वहाँ दूसरे-तीसरे दिन आकर विष्णुचरण का पता कर जाया करती थी। इससे उसकी चिन्ता और भी बढ़ रही थी। दंपा ने उसको बताया था कि महामात्य उसको इस मन्दिर में दो दिन के भीतर मिलने को कह गए थे। इससे पुजारी को सन्देह हो गया था कि वे पुनः पकड़े गए हैं और उनको चुपचाप कहीं लापता कर दिया गया है।

लगभग एक मास व्यतीत हो जाने पर एक दिन महामात्य विष्णुचरण मन्दिर में आया तो पुजारी का मन प्रसन्नता से भर गया। उसने महामात्य को झुककर प्रणाम किया और दंपा के बार-बार आने के विषय में बताया। महामात्य ने बताया कि एक तो उसको श्रावकों के पहरावे में बाहर निकलते लज्जा लगती थी और दूसरे वह कुमार और वज्रबाहु का पता कर रहा था। अब उनकी योजना पूर्ण हो चुकी है। वह भारत को बौद्ध संघ के जाल से मुक्त कराने का एक महान् यत्न करने वाले हैं।

इसके पश्चात् महामात्य विष्णुचरण रात के समय नित्य मन्दिर में आने लगा और योजना के उस सूत्र को, जो पाटलिपुत्र में सम्पन्न होना था, चलाने लगा। जहाँ सरिता निबिड़िया के नाम से राजप्रासाद में काम करने लगी, वहाँ दंपा को यह कहा गया कि वह कल्याणी वाले विहार में जाकर श्राविका हो जाए और शीघ्रातिशीघ्र भामिनी से सम्पर्क स्थापित कर उसको साहस बँधाए। साथ ही वह वहाँ के सब समाचार उस तक पहुँचाया करे। इनके अतिरिक्त अन्य कई शैव मतानुयायियों को षड्यन्त्र में सम्मिलित कर लिया गया। मन्दिर के प्रांगण में गदका और खड्ग चलाना सिखाया जाने लगा। पहले पाँच व्यक्तियों की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। कुछ ही काल में जब सीखने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई, तो नगर के बाहर गंगा के पार सिखाने के बहुत-से अड्डे बना लिए गए।

एक दिन सरिता द्वारा सूचना मिली कि संज्ञा को राजप्रासाद से निकाल दिया गया है। इस सूचना को पाकर पार्थ, शिवमन्दिर का पुजारी, महापण्डित चक्रधर से मिलने जा पहुँचा। महापण्डित बैठा अपनी पत्नी कोमलांगी से संज्ञा के भविष्य में विचार कर रहा था। चक्रधर ने जब पार्थ को आया देखा तो अपनी पत्नी को भीतर भेज पुजारी से बात करने लगा।

"पण्डित जी ! कैसे आना हुआ ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या आपकी गोष्ठियाँ नहीं चलतीं?"

"नहीं! जब से आमात्य बना था, गोष्ठियाँ बन्द कर रखी थीं। अब फिर कर रहा हूँ।"

"हाँ, अब तो आप आमात्य नहीं रहे न? परन्तु भगवन्! यह हुआ कैसे?"

चक्रधर ने दीर्घ श्वास छोड़कर कहा, "कुछ न पूछो भाई! जीवनभर का प्रयास निष्फल गया है। भ्रम में भटकते-भटकते अपने-आपको बरबाद कर लिया है।"

"बेचारी संज्ञा का तो सर्वनाश ही कर दिया है।"

"तो तुम जान गए हो?"

"मित्र! यह बात तो अब नगरभर में विख्यात हो चुकी है। बेचारी संज्ञा के साथ जो दुर्व्यवहार हुआ है, वह प्रासाद की दासियों से लेकर नगर के सेठों तक को पता चल गया है। सब लोग इस व्यवहार को सुन दाँतों-तले उँगली दबाते हैं।"

"भाई, क्या करूँ? यह बौद्ध संघ वाले बहुत अन्यायाचरण करने लगे हैं।"

"इसका कुछ तो प्रतिकार होना चाहिए। मैं तो शैव हूँ और अपने लड़के के लिए कुछ नहीं कर सका, परन्तु आप तो बौद्ध आचार्य हैं, आपकी लड़की से दुर्व्यवहार तो बौद्ध सम्प्रदाय से दुर्व्यहार के समान है।"

"पर क्या करूँ? संघ का संगठन इतना सुदृढ़ है कि उसका विरोध महाराज भी नहीं कर सके। आपको शायद विदित नहीं कि महाराज स्वयं बंदी हैं। वे महारानी पद्मावती से मिलने की इच्छा रखते हुए भी नहीं मिल सके।"

"सत्य? यह तो किसी को भी विदित नहीं।"

"महारानी को बलपूर्वक एक विहार में रखा हुआ है और उनसे किसी को भी मिलने नहीं दिया जाता।"

"तो विहार में क्या कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जो महारानी पर दया कर उनको स्वतन्त्र कर सके? यहाँ प्रासाद में तो विष्णुचरण को कोई न कोई मिल गया प्रतीत होता है, जिससे वह बचकर भाग गया है।"

"विहारों में भी कई ऐसे भले लोग होंगे, परन्तु वे सब संगठन में इतने जकड़े हुए हैं कि संगठन के विरुद्ध कार्य करने में हित नहीं समझते हैं।"

"तो भगवन्! क्या यह अंधेर चलता रहेगा? क्या भले लोगों में बुद्धि और साहस नहीं आएगा कि जिससे वे इस अन्याय का विरोध कर सकें?"

महापण्डित चक्रधर दाँत पीसता हुआ कहने लगा, "क्या करूँ? मन तो चाहता है कि इस संघ के ढोंग का घोर विरोध करूँ, परन्तु मैं डरता हूँ कि ऐसा करने से बौद्ध धर्म का भी विरोध हो जाएगा।"

"ऐसा क्यों होगा महापण्डित? बौद्ध मत सत्य है अथवा असत्य, इस विषय में तो आपको कुछ नहीं कहना। आपको तो संघ के राज्यकार्य में हस्तक्षेप का विरोध करना है। आपको सशस्त्र विद्रोह तो करना नहीं है जिससे बौद्ध धर्म के अहिंसा के सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अवहेलना हो जाए। आ अपनी गोष्ठियों में संघ और बौद्ध धर्म में भेद को स्पष्ट करने का यत्न आरम्भ कर दीजिए। परिणाम यह होगा कि बौद्ध उपासक, जो प्रायः आपकी गोष्ठियों को सुनने आते हैं, वे बौद्ध धर्म का समर्थन करते हुए भी संघ से घृणा करने लगेंगे।"

"परन्तु उस ज्योति वेश्या का संघ से क्या सम्बन्ध है? चक्षुहीन युवराज उसको वासनावश सिर पर उठाए हुए है।"

"युवराज बेचारा क्या जानता है कि ज्योति कितनी सुन्दर है। वास्तव में यह संघ ही है, जो ज्योति द्वारा युवराज को मूर्ख बनाए हुए है।

"देखिए पण्डित! यदि बौद्ध संघ तटस्थ हो जाएगा तो कुमार सम्प्रति युवराज बन जावेगा। सम्प्रति के युवराज घोषित होते ही ज्योति, जो सम्राज्ञी बनने का स्वप्न देख रही है, निराश हो भाग जाएगी और फिर राजकुमार कुणाल संज्ञा को वापस बुला लेंगे।"

यह बात चक्रधर के मन में बैठ गई और उस दिन से उसने पुनः विचार-गोष्ठियों की बैठकें आरम्भ कर दीं। अब पण्डित कहता था, "बौद्ध मत कोई सम्प्रदाय नहीं है। यह एक विचारधारा है। किसी विषय पर मनुष्य में परस्पर विचारभेद हो सकता है। इसके लिए राज्य का बलप्रयोग अन्याय है। न ही किसी विचार के चलाने के लिए संघ के निर्माण की आवश्यकता है।"

बौद्ध जिज्ञासु पूछते, "तो भगवन्! तथागत ने संघ का निर्माण क्यों किया?"

"भगवान् को हुए आज पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो गए हैं। समय और परिस्थिति बदल गई है।"

इस प्रकार बौद्ध संघ के गढ़ पाटलिपुत्र में ही इसके विरोध की पताका फहरा दी गई।

कल्याणी एक पढ़ी-लिखी महिला थी। उसने बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था और साथ ही वह चिकित्साशास्त्र की भी ज्ञाता थी। यही कारण था कि वह इस विहार की अध्यक्षा नियुक्त की गई थी। संघ के नियन्त्रण की बात को छोड़कर वह एक सभ्य, सुशील और शान्त स्वभाव वाली महिला थी। उसके कार्यों की कितनी भी निन्दा की जाय, वह कभी रुष्ट नहीं होती थी। दंपा उसकी हँसी उड़ाया करती थी और वह उसको प्यार से प्रेरणा दिया करती थी, "बेटी! ऐसा नहीं। इससे जिस मार्ग की तुम पथिक हो, वह मार्ग दृष्टि से ओझल हो जाएगा।"

भामिनी उसके बात करने के ढंग से अतिप्रभावित हो रही थी। जब वह कहती, "आत्मा-परमात्मा की बात छोड़ो। यह बताओ कि तुम अपने विचार से भी मुक्ति प्राप्त करना चाहती हो अथवा नहीं? मैं कहती हूँ कि उस मुक्ति को प्राप्त करने के लिए भी लोगों को तैयार करने में प्रेरणा ही सर्वोत्तम उपाय है। तुम कहती हो कि श्राविकाओं में दुराचार और चरित्रहीनता बहुत फैल रही है। मैं इसको जानती हूँ, परन्तु किसी को दण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलवाना ठीक नहीं समझती। एक श्रावक नित्य रात को विहार की दीवार फाँदकर इधर आ जाता था और कार्य करता रहता था। वह एक दिन पकड़ा गया। मैंने उसको प्रेरित कर विशालापुरी भिजवा दिया। मेरा कहना था कि उसको यह कार्य नहीं करना चाहिए था।"

"यह तो बहुत ही बुरा प्रतीत होता है। यहाँ के रहनेवाले निर्वाण-पथ के पथिक इस प्रकार के शान्तिभंग से पथभ्रष्ट हो जाते होंगे।"

"यहाँ से बाहर तो इससे भी अधिक अशान्ति अनुभव होती है। वहाँ से तो यहाँ कुछ ठीक ही है।"

"पर भगिनी! वहाँ तो पुरुष से सहवास को बुरा नहीं माना जाता। हाँ, परपुरुष से सहवास घृणित समझा जाता है। विवाह होते हैं और सहवास को भी धर्म का एक अंग मान स्वीकृति दी जाती है। वहाँ अपने पुरुष से सहवास मुक्ति के मार्ग में बाधक नहीं माना जाता। यहाँ की अवस्था इससे भिन्न है। यहाँ विवाह नहीं होते। विवाह निर्वाण-पथ में बाधक माना जाता है। यहाँ यदि कोई वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त होता है तो वह अपने मार्ग में बाधा खड़ी करता है। उसका निर्वाण का मार्ग बिगड़ जाता है। इस अवस्था में यहाँ पर ऐसी बात का सहन किया जाना भी अधर्म हो जाएगा, क्योंकि इससे यहाँ के रहनेवाले लोगों में अशान्ति उत्पन्न हो जाएगी।"

"फिर भी बाहर से यहाँ अधिक शान्ति है।"

"यहाँ की थोड़ी-सी अशान्ति बाहर की बहुत-सी अशान्ति से अधिक हानिकारक है।"

"देखो कमला! जो जितना दूसरों की ओर देखता है, उतना ही पतन की ओर जाता है। प्रत्येक को अपना ही विचार करना चाहिए।"

"तब तो यह एक स्वार्थमय जगत् बन जाएगा और घोर पाप का मार्ग हो जाएगा। मैं आपसे ही पूछती हूँ कि मुझको यहाँ किस कारण बन्द किया हुआ है?"

"मुझको ऐसी आज्ञा है।"

"इसमें किसका हित है? आपका अपना तो है नहीं। तो फिर आप दूसरों के हित के लिए मुझको बंदी किए हुए हैं?"

"दूसरे इसमें आपका भी हित मानते हैं।"

"बिना इस बात को जाने कि मैं कौन हूँ, क्या हूँ और क्या चाहती हूँ?"

"ये वे लोग जानते हैं।"

"मैं समझती हूँ वे भ्रम में हैं। आप इस विषय में कुछ नहीं जानतीं। उन्होंने मुझसे इस विषय में कभी कुछ नहीं पूछा। मैं समझती हूँ कि आप जिन सिद्धान्तों को चलाने के लिए बौद्ध धर्म का संचालन कर रही हैं, उन्हीं सिद्धान्तों का हनन कर रही हैं।"

"बौद्ध धर्म की दो भारी विशेषताएँ हैं—एक, जन्म और वर्ण का विचार छोड़कर सबकी समानता; भंगी, चाण्डाल, चमार, ब्राह्मण, क्षत्रिय सब बौद्ध धर्म की दृष्टि में समान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। दूसरे, प्रेरणा ही सुधार का एकमात्र उपाय है।"

"मान लिया जाए कि बौद्ध धर्म के ये सिद्धान्त सत्य हैं, तो भी यह तो स्पष्ट ही है कि मेरे विषय में ये सिद्धान्त प्रयोग में नहीं लाए जा रहे। मेरे साथ सबके समान व्यवहार नहीं किया जा रहा। मुझको गुफा में बन्द कर प्रेरणा के अतिरिक्त उपाय प्रयोग किए गए हैं। जिस धर्म के गुरुओं का व्यवहार उस धर्म के सिद्धान्तों से मेल नहीं खाता, उसमें यह कहना पड़ेगा कि या तो सिद्धान्त असत्य हैं या उस धर्म के गुरु मिथ्याभाषी और धूर्त हैं।"

"तुम क्या समझी हो?" कल्याणी ने लालमुख होकर पूछा।

"मैं पहली बात तो यह समझी हूँ कि आपके धर्म के सिद्धान्त अशुद्ध हैं। वे अव्यावहारिक हैं और उनसे संसार के कल्याण की अपेक्षा, अहित ही हुआ है।"

भामिनी की प्रबल युक्तियों को सुनकर भी कल्याणी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हुई कि बौद्ध धर्म जनता का अहित कर रहा है।

"क्षमा करें भगिनी जी! मैं समझती हूँ कि किसी कारण से भगवान् बुद्ध को आर्य विचारधारा से अरुचि हो गई थी और उन्होंने बिना इसको पढ़े और इसका मनन किए एक नवीन विचारधारा को जन्म दिया है। जो अनुभव और ज्ञान प्राचीन विद्वानों का था, उसकी पूर्ण रूप से अवहेलना कर, नए आधार पर जीवन-मीमांसा का निर्माण करने का यत्न किया है। परिणाम यह हुआ है कि एक भारी भूल हो गई और उस भूल का परिणाम ही मैं आपके विहारों में देख रही हूँ।

"सब प्राणी समान हैं और उनसे समान व्यवहार करना चाहिए, यह एक अयुक्तिसंगत विचार है। सब समान नहीं हैं और सबके साथ समान व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए। इसी प्रकार अपराधियों को अपराध करने से रोकने के लिए केवल प्रेरणा ही उपाय नहीं है। साम, दाम, दण्ड, भेद ये सब उपाय समय और परिस्थिति के अनुसार प्रयोग में लाए जाने चाहिएँ।"

भामिनी और दंपा दोनों परस्पर एकान्त में मिलती रहती थीं और दंपा बाहर से समाचार प्राप्त कर भामिनी को बताया करती थी। धीरे-धीरे अंजना भी इनकी विचार की होती जाती थी। वह भी यह मान गई थी कि विहार में आने से उसके जीवन में किसी प्रकार की श्रेष्ठता नहीं आई। उसने बताया, "मैं अहीर जाति की हूँ। मेरा विवाह उस समय हो गया था, जब मैं बच्ची ही थी। मेरे माता-पिता को भय लग गया था कि यदि मैं बिना विवाह हुए सज्ञान हो गई तो बौद्ध श्रावक मुझको श्राविका बना लेंगे। राजनियम है कि विवाहिता पत्नी बिना पति की स्वीकृति के भिक्षुणी नहीं बन सकती। इस कारण हमारी जाति में छोटे-छोटे बच्चों के विवाह होने लगे हैं।

"मेरे विवाह के समय मेरे पति की आयु भी मेरी जितनी ही थी। हम दोनों एक ही समय सज्ञान हुए। मेरे सास-ससुर कहा करते थे कि मेरा पति मुझसे दुर्बल है और वे मुझको उसके समीप जाने से मना किया करते थे। फिर भी हम ऐसे अवसर पा जाते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब हम मिल लिया करते थे। इसका परिणाम भयंकर हुआ।

"मैं जब बीस वर्ष की थी तभी विधवा हो गई। मेरा दूसरा विवाह करने का विचार होने लगा। उन्हीं दिनों की बात है, मैं दूध देने एक ग्राहक के घर गई तो उसने मुझको समझा-बुझाकर अपने घर रख लिया। पहले तो सेविका बना रखा था, परन्तु कुछ समय पश्चात् पत्नी के रूप में रख लिया। जब मेरे एक लड़का हुआ तो उसने लड़के को अपने पास रख लिया और मुझको श्राविका बन जाने की राय दी। मैं मानती नहीं थी, परन्तु जब उसने भीतर की सुविधाएँ बताईं तो मैं मान गई और श्राविका बन गई।

"दो वर्ष तक तो मुझको यहाँ के जीवन का अभ्यास करते लगे, और तब मुझको भिक्षा करने बाहर जाने की स्वीकृति मिल गई। अब मैं जब इच्छा होती है, उस पुरुष के पास जाती हूँ और अपने बच्चे से भी मिल आती हूँ। उसको मेरे खाने-पीने का प्रबन्ध तो करना नहीं पड़ता, परन्तु पत्नी-सा व्यवहार करता है। इससे मुझको घर का काम नहीं करना पड़ता और सुख से जीवन व्यतीत हो रहा है।"

भामिनी को यह जीवन सुखद और सुलभ तो प्रतीत हुआ, परन्तु वह विचार करती थी कि कितने लोग इस संसार में हैं, जो इस प्रकार का प्रमाद और आलस्य का जीवन स्वीकार कर सकेंगे? भोजन-वस्त्रादि कितने लोगों को बिना किसी प्रकार का परिश्रम कराए दिया जा सकता है? करों का भार जनता कब तक सहन कर सकेगी?

वह अंजना से पूछने लगी, "तुम्हारा सम्बन्ध केवल उसी पुरुष से है, जो तुमको अपने घर रखता था और जिससे तुम्हारी सन्तान है या किसी अन्य से भी है?"

अंजना मुस्कराकर रह गई। जब भामिनी ने अपने प्रश्न को दुहराया तो बोली, "अब तक मेरी तीन सन्तानें हैं। एक लड़का तो उसी पुरुष से है, जिसके पास मैं रहती थी। उसी से एक लड़की भी है। विहार में आने के पश्चात् एक लड़का हुआ था। वह एक श्रावक महोदय से है। इस श्रावक महोदय से मेरा परिचय भिक्षा करने जाते समय मार्ग में हुआ था। उस सन्तान को मुझसे ले लिया गया और मैं नहीं जानती कि अब वह कहाँ है।"

"क्या इससे तुम्हारा पेट नहीं भरा? या तो तुम विहार छोड़ गृहस्थ को लौट जाओ या संयम का जीवन स्वीकार कर लो।"

"बहुत यत्न कर रही हूँ, परन्तु कभी मन नहीं मानता तो विवश हो जाती हूँ।"

"बौद्ध धर्म पर तुम्हारी श्रद्धा कितनी है?"

"मैंने इस ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया।"

एक दिन अंजना भिक्षा करके आई तो उसका मुख मलिन हो रहा था। भामिनी और दंपा आगार में बैठी बातचीत कर रही थीं। उन्होंने अंजना को मलिनमुख देखा तो पूछा, "क्या हुआ है अंजना?"

"भारी अनर्थ होने लगा है।"

"क्या हुआ है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आज नगर में यह सूचना फैल रही है कि वीरभूमि की जनता ने बौद्ध विहारों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया है। वे विहारों को गिरा रहे हैं और उनमें रहनेवाले श्रावकों को खेतों में काम पर लगा रहे हैं। जो श्रावक काम करना नहीं चाहते अथवा कर नहीं सकते उनको धक्के मार-मारकर वीरभूमि से निकाल रहे हैं। वे श्रावक, जो विहारों से निकाल दिए गए हैं और यहाँ आए हैं, महाराज के सम्मुख खड़े होकर अपना कष्ट वर्णन कर रहे हैं।"

"तो तुम भयभीत किस कारण से हो?"

"मुझको भय है कि हमारे यहाँ भी यही हुआ तो हम क्या करेंगी?"

"हम भी मेहनत-मजदूरी करने लगेंगी।"

"परन्तु बहन! तुम नहीं जानतीं कि संसार में कितना दुःख और क्लेश है। दिनभर काम करो तो दो रोटी खाने को मिलती हैं। फिर कपड़े तो मोल लेने पड़ते हैं। मकान का भाड़ा देना पड़ता है। जब बाल-बच्चे हो गए तो उनका लालन-पालन, उनके खाने का प्रबन्ध और उनकी देख-भाल सब अपने-आप करनी पड़ती है। कमला बहन! यहाँ स्वर्ग है और वहाँ नरक। यह निर्वाण का मार्ग है और वह मोह-जाल का।"

भामिनी विचार करती थी कि अंजना ठीक कहती है, परन्तु जनता क्यों अपने मुख का ग्रास निकालकर इन श्रावकों का पेट भरने के लिए दे? इस विचार से वह गम्भीर हो गई। फिर कुछ विचार कर वह बोली, "जनता को अधिकार है कि वह इन आलस्य और प्रमाद के अड्डों को तोड़-फोड़ दे।"

आज जब भामिनी कल्याणी से मिलने गई तो उसको कल्याणी का मुख भी अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक गम्भीर प्रतीत हुआ। उसने कल्याणी के सामने बैठते हुए पूछा, "भगिनी! क्यां बात है, आज आप शोकयुक्त प्रतीत होती हैं?"

कल्याणी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठी रही। भामिनी ने अब अंजना के मुख से सुना हुआ समाचार दोहरा दिया। कल्याणी कहने लगी, "जानती हो यह सब-कुछ कौन कर रहा है?"

"कौन कर रहा है?"

"तुम्हारे पिता और कुमार सम्प्रति।"

"क्यों, वे ऐसा क्यों कर रहे हैं?"

"उन्होंने राज्य के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया है।"

"क्यों?"

इसका उत्तर कल्याणी ने नहीं दिया। भामिनी ने कहा, "कुछ भी हो, आप चिन्तित क्यों हैं?"

"देश में चौरासी हजार चैत्य हैं। लगभग दो करोड़ श्रावक और श्राविकाएँ उनमें पल रहे हैं। ये सब निर्वाण-पथ के पथिक पथभ्रष्ट हो जाएँगे।"

भामिनी प्रकट रूप में विस्मय की मुद्रा बनाकर बैठी रही। उसको कुमार सम्प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की योजना समझ में आ गई और वह इसमें उनके गम्भीर प्रयोजन को भी समझ गई।

बौद्ध सम्प्रदाय के लिए यह समाचार कि जनता ने बौद्ध विहारों को तोड़ना आरम्भ कर दिया है, अतिभयंकर परिणाम उत्पन्न करनेवाला सिद्ध हुआ। बौद्ध जगत् में एकदम आतंक छा गया। इस विद्रोह को रोकने के उपाय सोचने के लिए बौद्ध गुरुओं का एक सम्मेलन पाटलिपुत्र में बुलाया गया। सुनन्द इस सम्मेलन का स्वागताध्यक्ष बना। पाटलिपुत्र, विशालापुरी, मिथिला, विजयवाड़ा, सारनाथ, काशी, अयोध्या, कौशाम्बी इत्यादि सब प्रमुख स्थानों के चैत्यों के अध्यक्ष इस सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए आए। इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए महाप्रभु सुनन्द ने कहा, "वीरभूमि में बौद्ध सम्प्रदाय का विरोध घोर रूप में प्रारम्भ हो गया है। इस विरोध के दो कारण हैं। एक तो कुमार सम्प्रति भारत का सम्राट् बनना चाहता है, किन्तु बौद्ध संघ राजकुमार कुणाल के पक्ष में है। इस कारण सम्प्रति बौद्ध संघ का विरोध करने लगा है। दूसरे, राज्यकर इतने बढ़ गए हैं कि जनता राज्य का तथा बौद्ध संघ का, जिन पर कर का अधिकांश धन व्यय हो रहा है, विरोध करने लगी है।

"आज का यह सम्मेलन इस कारण बुलाया गया है कि हम विचार करके कोई मार्ग निकालें, जिससे इस आन्दोलन को शान्त किया जा सके।

"पूर्व इसके कि इस आन्दोलन के विरोध का कोई उपाय सोचें, मैं समझता हूँ कि वीरभूमि का एक प्रतिनिधि आपके सम्मुख इस आन्दोलन की रूपरेखा का वर्णन करे तो उचित होगा।"

इसके बाद वीरभूमि के एक बहुत बड़े चैत्य के महाप्रभु नन्दक ने मंच पर उपस्थित होकर वीरभूमि की अवस्था का वर्णन कर दिया। उसने कहा, "मैं संघमित्रा नाम के चैत्य का अध्यक्ष हूँ। वीरभूमि में चार सौ से अधिक चैत्य हैं। इनमें पाँच लाख से अधिक भिक्षु-भिक्षुणियाँ रहते हैं और इन पर वर्ष में एक करोड़ स्वर्ण के लगभग व्यय होता है। इस एक करोड़ में से केवल पाँच सहस्र स्वर्ण ही जनता से दान-दक्षिणा में प्राप्त होता है। शेष राज्यकर द्वारा प्राप्त होता है।

"वीरभूमि की जनसंख्या पन्द्रह लाख से अधिक है। उसमें पाँच लाख भिक्षु-भिक्षुणियाँ हैं। परिणाम यह है कि कृषि तथा अन्य उद्योग-धन्धों के लिए बहुत कम युवक-युवतियाँ रह गई हैं। दूसरी ओर एक करोड़ स्वर्ण के लगभग कर प्राप्त करना होता है। कमानेवाले कम और कर अधिक। स्वाभाविक ही वहाँ असन्तोष उग्र रूप धारण किए हुए है।

"इस असन्तोष का लाभ उठाकर वज्रबाहु और कुमार सम्प्रति ने वहाँ विद्रोह खड़ा कर दिया है। वे चैत्य के समीप गाँव में जाते हैं और जनता को उनकी निर्धनता का कारण बताते हैं कि जब तक ये चैत्य इस देश में रहेंगे, तब तक न तो उनके करों में कमी होगी और न ही उनकी सन्तानों का श्रावक बनना बन्द होगा। इससे लोग भड़क उठते हैं, और सहस्रों की संख्या में एकत्रित होकर विहार को घेर लेते हैं। उसके दरवाजों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को तोड़ देते हैं, दीवारों को गिरा देते हैं और विहार में एकत्रित अन्नादि लूट लेते हैं। पश्चात् विहार के भिक्षु-भिक्षुणियों को घरों में और खेतों में काम करने को कहते हैं। जो काम नहीं करता, उसको प्रदेश से निकाल देते हैं।

"पिछले तीन मास में एक सौ से अधिक चैत्य गिराकर समतल किये जा चुके हैं और सहस्रों की संख्या में श्रावक प्रदेश से निर्वासित किए जा चुके हैं।"

यह विवरण सुनकर सम्मेलन में उपस्थित जन क्रोध से भड़क उठे। इस सम्मेलन में उपस्थित बौद्ध गुरुओं में कुछ ऐसे थे, जो यह चाहते थे कि श्रावकों को भी लाठी चलानी चाहिए, जिससे वे अपनी रक्षा कर सकें। उपस्थितों में अधिक संख्या में वे लोग थे जो लड़ाई-झगड़े को पसन्द न कर इस विद्रोह को शान्तिमय उपायों से सुलझाने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि लड़ाई अथवा कोई भी हिंसा का कार्य बौद्ध धर्म के अनुसार नहीं होगा। सम्मेलन में उपस्थित लोगों में से अत्यल्प संख्या में ऐसे भी थे, जो कहते थे कि इस विद्रोह को शान्त करना राज्य का कार्य है और राज्य जो भी साधन प्रयोग में लाए, सब ठीक हैं। इसके उत्तर में बहुसंख्यक प्रतिनिधि यह कहते थे कि राज्य बौद्धमतावलम्बी है। इस कारण राज्य बौद्ध सिद्धान्तों की अवहेलना नहीं कर सकता। युद्ध अहिंसा का मार्ग नहीं कहा जा सकता।

कई दिन के वाद-विवाद के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि महाराज को सम्मति दी जाए कि वज्रबाहु और कुमार सम्प्रति से सन्धि कर लेनी चाहिए। एतदर्थ महामात्य अथवा महाराज का कोई दूत अधिकृत रूप में वहाँ जाकर विद्रोहियों से सन्धि कर ले।

महाराज को यह सम्मति देने के लिए एक आयोग बनाया गया, जो महाराज के पास पहुँचा। इस आयोग ने पूर्ण परिस्थिति महाराज के समक्ष रखी और निवेदन किया कि इस विद्रोह को रोकने के लिए सम्प्रति से सन्धि कर ली जाए।

सारी बात सुनकर महामात्य ने कहा, "मेरा निर्णय तो यह है कि सम्प्रति को युवराज होना चाहिए। इसका विरोध किया था महामात्य सुनन्द ने। अब यह सन्धि की बात भी सुनन्द तथा बौद्ध संघ को ही करनी चाहिए।"

बौद्ध आयोग में सुनन्द भी था। उसने अपनी ओर से सफाई देने के लिए कह दिया, "महाराज ! पिता के रहते पुत्र को गद्दी देना शोभाजनक नहीं था।"

"अच्छी बात है, जैसा मन में आए करो।" महाराज अशोक अब इन बौद्ध श्रावकों से बात करने में लाभ नहीं समझता था। उसने कहा, "फिर भी मैं यह कहना चाहता हूँ कि किसी दूत को सन्धि करने के लिए भेजने से पूर्व युवराज से विचार-विनिमय कर लेना। सम्भव है कि तुम्हारी सन्धि के परिणामस्वरूप उसको युवराज-पद त्यागना पड़े।"

इस सम्भावना की बात सुन सुनन्द गम्भीर हो गया। उसे इस प्रकार चुप खड़े देख महाराज ने कहा, "देखिए ! मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह विद्रोह राज्य के कुप्रबन्ध के कारण नहीं हुआ। इसका कारण है बौद्ध संघ का राज्य में अनधिकारयुक्त हस्तक्षेप। इसको दूर किए बिना यह सन्धि हो नहीं हो सकेगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध गुरुओं के सम्मेलन से बौद्ध विहारों में एक विशेष हलचल होने लगी थी। सम्मेलन के कार्यक्रम से समय निकालकर आए हुए गुरुजन विहारों का निरीक्षण कर रहे थे। इनका उपदेश और निरीक्षण, कल्याणी के विहार में भी हुआ और भामिनी, जो अब शीघ्र ही विहार से छूटकर अपने पिता के पास जा सकने की आशा कर रही थी, उत्साहित हो इन गुरुजनों से विवाद में पड़ गई।

विवाद में पड़ने में अंजना के व्यवहार से और भी उत्तेजना मिली। उस दिन जब भामिनी भोजन कर अपने आगार में आई तो अंजना को खाट पर सिर से पाँव तक चादर ओढ़े पड़ी देख पूछने लगी, "अंजना! क्या बात है, स्वास्थ्य तो ठीक है?"

अंजना ने मुख से कपड़ा उतारकर कहा, "मैं सो नहीं रही थी। आज एक उपासक के घर पर भोजन का निमन्त्रण था। रबड़ी, मिठाई, पूरी, शाक, फल इत्यादि इतने पदार्थ खाने को मिले कि यदि पाँच रजत भी व्यय करती तो भी उन्हें प्राप्त न कर सकती। फिर उपासक ने अपना रथ दिया, जिस पर चढ़कर मैं यहाँ आई हूँ।

"मैं विचार कर रही थी कि यदि ये चैत्य न रहे तो फिर इन सब वस्तुओं को कहाँ से प्राप्त कर सकेंगे? मैं यह भी विचार कर रही थी कि यदि मेरे तीनों बच्चे मेरे पास होते तो मेरा जीवन कितना दुर्भर हो जाता?"

"तो क्या कोई नई बात हुई है?"

हाँ, आज समाचार मिला है कि पाटलिपुत्र में भी कुमार सम्प्रति के साथी एक सेना तैयार कर रहे हैं। वह उपासक, जिनके यहाँ मैं भोजन करने गई थी, बता रहे थे कि राजमार्ग वाले शिवमन्दिर में नित्य युवक एकत्रित होते हैं और मल्लयुद्ध तथा लाठी, खड्ग चलाना सीखते हैं।"

"वे उपासक महोदय क्या कहते थे?"

"कहते थे यदि यहाँ भी वीरभूमि जैसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई तो मैं उनके घर पर जाकर रह सकती हूँ।"

"अब तो तुमको चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं।"

"तुम नहीं जानती बहन! उस उपासक की दो पत्नियाँ पहले ही हैं। मैं वहाँ गई तो दासी बनकर ही रह सकूँगी। दो पत्नियों और उनके बच्चों की सेवा करती-करती थक जाया करूँगी।"

भामिनी इस समस्या को सुनकर अति गम्भीर हो गई। वह मन में विचार कर रही थी कि कितना स्वार्थमय जीवन है इन विहार में रहनेवालों का! यह मोह है अथवा वह जो विहारों से बाहर संसार में दिखाई देता है?

इसी दिन सायंकाल बौद्ध गुरुओं के सम्मेलन में आए हुए कुछ लोग इस विहार को देखने आए। भामिनी अंजना की बात से उत्तेजित थी और इन मण्डली से अपनी बात कहे बिना नहीं रह सकी।

उस सायंकाल उपासना के पश्चात् गुरुओं में से एक विदेशी विद्वान् लूई-इन-ताई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो नालन्दा विश्वविद्यालय में अध्यापक था, का उपदेश हुआ। उसने बौद्ध धर्म मीमांसा पर अपने विचार प्रकट किए। विद्वान् वक्ता ने कहा, "प्रकृतिरूपी नदी में जीव-जन्तु भँवरमात्र हैं। इन भँवरों अथवा बुदबुदों का उठकर पूर्ण जलराशि में विलीन हो जाना ही निर्वाण है। ऐसा होने से सब दुःख और क्लेश मिट जाते हैं। जलराशि के पृथक् अस्तित्व के लिए लालसा मोह है। यह पृथक्ता ही बन्धन का कारण है।"

भामिनी के मन पर अब 'बुद्धं शरणं गच्छामि' इत्यादि का वह जादू नहीं रहा था, जो उसको अपने सिर के सुन्दर केशों को भगवान् के चरणों में अर्पण करने पर विवश कर चुका था। कई मास के स्वच्छ वायु में स्वाभाविक व्यवहार और जीवन से अब वह स्वस्थ मन पा गई थी। वह विहार में श्राविकाओं का नितान्त स्वार्थमय जीवन देख चुकी थी। इससे वह विद्वान् वक्ता की मीमांसा पर सन्तोष अथवा समाधान अनुभव नहीं करती थी। अतएव उपदेश के समाप्त होने पर वह वक्ता के समीप जा खड़ी हुई और उसके मुख पर प्रश्नभरी दृष्टि से देखने लगी। वक्ता ने उसको जिज्ञासा के भाव से खड़े देख पूछा, "यह कौन है?"

"ये कमल सुनन्दा हैं। कुछ विशेष स्वभाव की हैं और एक प्रकार से मानसिक रोग से ग्रसित प्रतीत होती हैं।"

"भामिनी!" वक्ता ने भामिनी की ओर देखकर कहा, "मेरा वक्तव्य सुना है?"

"हाँ प्रभु!"

"समझा है?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"अयुक्तिसंगत प्रतीत होता था।"

"कैसे?"

गुरुजन कार्यालय की ओर चल पड़े थे। वक्ता और भामिनी भी परस्पर बातचीत करते हुए उधर को ही चल पड़े। वक्ता के मस्तिष्क में, कल्याणी के कहने से कि वह मस्तिष्क रोग में ग्रस्त है, भामिनी का वह चित्र नहीं था, जो यह वास्तव में थी। वह उसको अर्द्धविक्षिप्त समझता था। इस कारण उसने कहा, "मुक्ति मन की अवस्था के अनुसार बदल जाती है।"

"भगवन्, आप ठीक कहते हैं। मेरे मन की अवस्था यह है कि मुझे बौद्ध धर्म में कुछ सार प्रतीत नहीं होता। इस मन की अवस्था को कृत्रिम उपायों से, जैसे बुद्धं शरणं गच्छामि इत्यादि की रट लगाने से, अथवा इस सुन्दर वाटिका में रखकर प्रत्येक प्रकार की सुविधा देने से, बदला नहीं जा सका। इसका कारण है। मेरे विचारों की आधारशिला भावनामात्र नहीं है, प्रत्युत इसके आधार में इतिहास और पुराण का गम्भीर अध्ययन है। इस शिक्षा और अभ्यास से मुझको आपका कथन थोथा प्रतीत हुआ है।"

"यही तो पूछ रहा हूँ कि क्या बात अयुक्तिसंगत प्रतीत हुई है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप यह नहीं बता सके कि चेतनता क्या है।"

"गतिमान का नाम चेतन है।"

"मूल प्रकृति गतिशील है अथवा नहीं?"

"नहीं।"

"तो यह गतिशीलता इसमें कब और क्यों आई?"

"इसकी अवस्था में परिवर्तन होता है।"

"तो परिवर्तन गति नहीं है? और फिर परिवर्तन किसने और क्यों पैदा किया?"

"प्रकृति में परिवर्तन स्वभाववश होता है।

"स्वभाव में परिवर्तन तो सदा एकरस रहना चाहिए और आप तो कहते हैं कि मूल प्रकृति गतिशील अथवा चेतन नहीं है?"

"यदि मूल अवस्था में परिवर्तन नहीं तो यह स्वभाव से परिवर्तनशील नहीं। परिवर्तनशीलता इसमें बाद में आई है। तो क्या यह नवीन वस्तु इसमें सम्मिलित हुई है जिससे यह परिवर्तनशील हो गई है?"

इस समय वे सब कार्यालय में पहुँच गए थे। वहाँ अल्पाहार का प्रबन्ध था। कल्याणी की इच्छा थी कि भामिनी अब चली जाए और अभ्यागतों को तंग न करे। इस कारण उसने कहा, "कमला! अब तुम जाओ। अपने आगार में जाकर चिन्तन करो। भगवान् बुद्ध की शरण पकड़ो, वे तुम्हारी सहायता करेंगे।"

भामिनी समझ गई कि कल्याणी निरुत्तर हो गई है। इससे उसने कहा, "प्रभु! आप तो उपदेश करने आए थे न? तो अल्पाहार के लिए उपदेश का अवसर क्यों गँवाया जा रहा है?"

इस पर लूई-इन-ताई ने कल्याणी को कहा, "इसको भीतर आने दो। हम आहार भी करेंगे और बातचीत भी।"

इस प्रकार भामिनी भी वहाँ अभ्यागतों के सामने पहुँच गई। वहाँ बैठकर वह कहने लगी, "प्रभु, आप अपना ही उदाहरण लीजिए। जलराशि में से बुदबुदा बना है। इसके बनने का कारण क्या यह नहीं कि जल के एक अंश में वायु सीमित हो गई है? बुदबुदे में जल के अतिरिक्त वायु भी है। जब बुदबुदा फट जाता है, वायु जल से पृथक् हो जाती है तो बुदबुदा समाप्त हो जाता है। जल जल में मिल जाता है, वायु वायु में। इसी प्रकार संसार के सब प्राणियों का निर्माण होता है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि इसमें भी वायु की भाँति कोई अन्य वस्तु आकर मिल गई है। क्या यही आत्मा नहीं है?

"एक बात और है। बुदबुदे में जल के अतिरिक्त जो वायु आई है, वह भी जड़ पदार्थ है। इस कारण बुदबुदा बनने के समय आकार में तो अन्तर आया है, परन्तु प्राणी की-सी विशेषता नहीं आई। प्राणी में प्रकृति से भिन्न बात उसकी सूझ-बूझ है।"

लूई-इन-ताई ने भामिनी की बात को सुना और उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया। वह कहने लगा, "हमें तो संसार में प्रकृति के अतिरिक्त अन्य कुछ दिखाई नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता। इस कारण हम जो कुछ देखते हैं वही मानने को तैयार हैं।"

भामिनी ने हाथ में खाली कमण्डलु पकड़ा हुआ था। उसने कहा, "भला बताइए! इस कमण्डलु में कुछ है अथवा नहीं?"

"कुछ नहीं, यह खाली है।"

"परन्तु इसमें वायु है, जो दिखाई नहीं देती। इस वायु का अस्तित्व अन्य उपायों से जाना जाता है। संसार में तो वायु से भी सूक्ष्म वस्तु हो सकती है। परन्तु इससे भी जटिल प्रश्न उद्देश्य का है। इस प्राणी-रूप में आने में प्रकृति का कोई प्रयोजन अथवा उद्देश्य है या नहीं? यदि है तो क्या है और उद्देश्य अचेतन वस्तु में हो सकता है क्या?

"केवल यही नहीं, यदि सब प्रकृति ही है तो दुःख किसको होता है? क्यों होता है? बुदबुदे को तोड़ देने से क्या लाभ होगा?"

"परन्तु बुदबुदा तो जल का विकृत रूप है! इस कारण उसको कष्ट होता है।"

"विकृति तो स्वाभाविक नहीं हो सकती।"

गुरु जी महाराज निरुत्तर हो रहे थे। इस कारण अब कल्याणी ने रोका तो लूई-इन-ताई ने कह दिया, "मैं समझता हूँ तुम अभी चिन्तन करो। इससे मन में प्रकाश होने पर सब-कुछ समझ में आ जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम परिच्छेद

सम्प्रति और वज्रबाहु जब राजप्रासाद से रथ पर भागे तो कुछ दूर तो उसमें चलते गए। पाटलिपुत्र से दक्षिण की ओर दस कोस तक जाने पर वज्रबाहु ने कुमार से कहा, "अब हमको रथ छोड़ देना चाहिए।"

"क्यों?"

"रथ तो राजमार्ग पर ही जा सकेगा और निश्चय जानो कि पाटलिपुत्र से हमारा पीछा किया जाएगा। अतएव यदि पकड़े जाने की इच्छा नहीं है तो रथ को छोड़ खेतों तथा जंगलों में होकर चलना चाहिए।"

"पर हमें जाना किधर है?"

"हमें ऐसे स्थान पर जाना है, जहाँ हम राज्य को इन सिरमुँडों से बचा सकें। यह एक विचारणीय विषय है कि कार्य कहाँ से प्रारम्भ किया जाय? इस प्रकार भाग-दौड़ में यह विचार नहीं किया जा सकता। पहले किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच लें, पश्चात् इस बात पर विचार किया जा सकेगा।"

अतएव उन्होंने रथ पर से उतरकर घोड़ों को रथ से दूर पेड़ों के पीछे छिपा दिया और स्वयं मार्ग छोड़कर पश्चिम की ओर चल पड़े।

दो दिन के भ्रमण के पश्चात् उनको शंखपाणि की विधवा पत्नी का घर मिला, जहाँ वे निश्चिन्त हो अपनी योजना बना सके। उस योजना के अनुसार पाटलिपुत्र में बहुत-से भेदिये रखने थे। राजप्रासाद में जाने के लिए शंखपाणि की कन्या सरिता को तैयार किया गया और वह निबिड़िया के नाम से दासी का कार्य करने लगी। शिवमन्दिर के पुजारी पार्थ से सम्पर्क स्थापित किया गया और फिर विष्णुचरण से मिला गया। पार्थ का शिवमन्दिर पाटलिपुत्र में इस षड्यन्त्र का केन्द्र बन गया।

वज्रबाहु का विचार था कि यह आन्दोलन राज्य के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। इसका उद्देश्य केवल बौद्ध संघ का विरोध ही हो। इस कारण आन्दोलन के लिए वह स्थान ढूँढा गया जहाँ बौद्ध संघ के कारण जनता को बहुत कष्ट था। ऐसा स्थान विन्ध्य देश में वीरभूमि ही उपयुक्त प्रतीत हुआ।

विन्ध्य प्रदेश पर्वतीय स्थान होने से प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर था। इस कारण बौद्धों ने वहाँ बहुत भारी संख्या में विहार बना लिये थे। पर्वतीय स्थल होने के कारण वहाँ पैदावार बहुत कम होती थी। परिणाम यह हो रहा था कि लोग प्रायः निर्धन थे और किसी समय, जब भारत में युद्ध जीवन का एक कार्य बना हुआ था, यहाँ के लोग भिन्न-भिन्न राज्यों में जाकर सैनिक के रूप में भर्ती होते थे। अशोकवर्द्धन के राज्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति स्थापित हो जाने से अब युद्ध जीविकोपार्जन का साधन नहीं रहा था। तभी तो यहाँ के लोग और भी निर्धन हो गए। इसके साथ उन सब विहारों का, जो यहाँ बन गए थे, व्यय इसी देश पर कर लगाकर एकत्रित किया जाता था। जनता यह व्यय वहन करने में सर्वथा असमर्थ थी।

वीरभूमि में पहुँच सम्प्रति ने अपनी योजना का श्रीगणेश कर दिया। इस योजना की रूपरेखा शंखपाणि की विधवा पत्नी के घर पर बैठकर बनाई गई थी। यह निश्चय हुआ कि भारत की प्राचीन संस्कृति के अनुसार प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ में यज्ञ करना चाहिए। अतएव पूर्ण वीरभूमि के क्षेत्र में घोषणा की गई कि "महाराजाधिराज अशोकवर्द्धन के पौत्र कुमार सम्प्रति इस स्थान पर यज्ञ करनेवाले हैं। इस यज्ञ में माँ भवानी से प्रार्थना की जाएगी कि भारत में वीर पुत्र उत्पन्न हों।"

पहले तो श्रावकों ने इसको एक हँसी-ठट्ठा समझकर इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। पश्चात् जब यह आन्दोलन बढ़ने लगा तो उन्होंने इसका घोर विरोध आरंभ कर दिया।

वज्रबाहु ने तो पहले ही यह विख्यात कर रखा था कि कुमार सम्प्रति को स्वप्न में आदिशक्ति भवानी ने दर्शन देकर बताया है कि इस यज्ञ में एक नवीन क्षत्रियकुल की उत्पत्ति होगी और वह क्षत्रियकुल भारत को बौद्ध संघ के शोषण से मुक्त करेगा। पूर्ण वीरभूमि में यह भी विख्यात कर दिया गया था कि बौद्ध संघ इस यज्ञ का विरोध करेगा, परन्तु इस विरोध का फल कुछ भी नहीं निकलेगा।

इस भविष्यवाणी के कारण जनता ने बौद्ध संघ के विरोध की परवाह नहीं की और बहुत भारी संख्या में लोग यज्ञ में सम्मिलित हुए। यज्ञ तीन दिन तक चला। पूर्णाहुति के समय सम्प्रति वहाँ प्रकट हुआ और आह्वान करने पर सैकड़ों नवयुवक उसके समर्थन के लिए निकल आए। सम्प्रति ने इन नवयुवकों को अग्निकुल का नाम दिया। वह स्वयं उनका कुलपति बन गया।

युवा लोग, जिनकी बहनें श्रावकों के प्रचार के कारण भिक्षुणियाँ बन चुकी थीं, वे माता-पिता, जिनके पुत्र-पुत्रियाँ संन्यास ले चुके थे, वे स्त्रियाँ, जिनके पति उनको छोड़कर श्रावक बन चुके थे, और वे गृहस्थ, जिनको भारी कर देना पड़ रहा था, सब सम्प्रति के सहायक हो गए। इस प्रकार वज्रबाहु और सम्प्रति का अनुमान ठीक निकला कि बौद्ध संघ से दुःखी होने के कारण ये लोग सुगमता से भड़क उठेंगे। इससे ही उनका कार्य सुचारु रूप से आरम्भ हो सकेगा।

विष्णुचरण भी इनका पता पाकर इनसे मिलने आया। उसकी सम्मति भी इनसे मिल गई कि राज्य पर आक्रमण करने की अपेक्षा चैत्यों पर आक्रमण किया जाए। उसने एक बात और कही कि आक्रमण जनता की ओर से होने चाहिएँ। अग्निकुल के सैनिक तो केवल जनता का नेतृत्व ही करें। ऐसा करने से एक तो पूर्ण जनता को दण्ड देना अति कठिन हो जाएगा और दूसरे, महाराज जनता के इस आन्दोलन को दबाने में रुचि प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करेंगे।

अग्निकुल में सम्मिलित हुए सैनिकों को न केवल खड्ग इत्यादि चलाने की शिक्षा दी गई, अपितु उन्हें जनता को भड़काने के उपाय भी बताए गए।

इन नवयुवकों को पाँच-पाँच की संख्या में चैत्यों के समीपवर्ती गाँवों में भेज दिया जाता। वे वहाँ पहुँचकर गाँव के लोगों को समझाते कि उनके समस्त दुःखों के कारण ये चैत्य ही हैं। न ये चैत्य रहेंगे, न ही उनकी बहू-बेटियाँ संन्यासिनी बनेंगी, न ही उनके खेतों में काम करनेवाले काम छोड़कर श्रावक बनेंगे। साथ ही उनको यह भी बताया गया कि जो कर वे देते हैं, वह इन चैत्यों पर ही व्यय होता है। यदि चैत्य तोड़ डाले जाएँ तो कर प्राप्त करने के लिए कोई कारण ही नहीं रह जाएगा।

जब गाँव के लोग उनकी बात समझ जाते और उनसे मिलकर समीपवर्ती चैत्य को तोड़ने के लिए तैयार हो जाते, तब वे उनका नेतृत्व कर चैत्य पर धावा बोल देते। चैत्य के द्वार तोड़-फोड़कर उसकी दीवारों को समतल कर दिया जाता। इसके पश्चात् श्रावकों को पकड़कर खेतों में ले जाते और उनसे काम लेते। यदि उनमें से कोई काम करना न चाहता तो उसके पास जो कुछ होता, छीन लिया जाता और उसको राज्य से बाहर कर दिया जाता।

प्रारम्भ में तो कार्य कुछ कठिन प्रतीत हुआ, परन्तु जब एक-दो विहारों पर सफल आक्रमण हुए तो, बिना अग्निकुल के क्षत्रियों की सहायता के जनता विहारों को उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगी।

यह काम इतना सुगम था कि वे लोग, जो बौद्ध विहारों के विरोधी थे, आश्चर्य करते थे कि ऐसा किसी को इससे पहले क्यों नहीं सूझा? एक बात विशेष थी कि जनता ही बौद्ध संघ का पालन करती थी और जनता ही अब इसके विरुद्ध हो गई। देखते-देखते लगभग चार सौ विहारों में, जो वीरभूमि में थे, दो सौ से अधिक नष्ट कर दिए गए। शेष विहारों को बौद्धों ने स्वयं ही खाली करना प्रारम्भ कर दिया। बौद्धों का विचार था कि यह आन्दोलन केवल वीरभूमि तक ही सीमित रहेगा, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। अग्निकुण्ड के सैनिक धीरे-धीरे वीरभूमि से बाहर भी जाने लगे। वज्रबाहु कुछ सैनिकों को लेकर कलिंग में चला गया और वहाँ पर तो आन्दोलन बड़ी सरलता से फैलने लगा।

चैत्यों का विध्वंस करने के आन्दोलन के साथ-साथ सम्प्रति ने राज्य की ओर से व्यवस्था स्थापित करनी प्रारम्भ कर दी। उसने कर का वह भाग, जो पाटलिपुत्र को राज-कार्य के लिए जाता था, तो एकत्रित कर लिया और राज्य के लिए राजधानी में भेज दिया। किन्तु वह भाग, जो वहाँ पर चैत्यों को दिया जाता था, जनता से प्राप्त करना बन्द करा दिया। इससे जनता बहुत प्रसन्न हो गई, साथ ही लाखों श्रावकों के पुनः गृहस्थ स्वीकार कर लेने से बहुत-से खेत और काम, जो काम करनेवालों के अभाव के कारण रिक्त पड़े थे, चालू हो गए। कई माता-पिताओं को अपने पुत्र-पौत्र मिल गए और उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूने घर पुनः आबाद हो गए। इस प्रकार पूर्णदेश में उत्साह और प्रसन्नता की तरंग फैल गई। जब सम्प्रति ने कर कम कर दिया और लोगों को कहा कि इतना कुछ देने पर उनको अब अधिक कुछ नहीं देना पड़ेगा, तो लोग प्रसन्नता से उसकी आज्ञा के अधीन चलने लगे।

चक्रिक भी कुमार सम्प्रति और पाटलिपुत्र में सम्पर्क बनाए हुए था। वह वहाँ पर पाटलिपुत्र में हो रहे बौद्ध गुरुओं के सम्मेलन का समाचार लाया। तब यह आवश्यक समझा गया कि विष्णुचरण से परामर्श कर लिया जाए।

इस समय सरिता द्वारा भेजा हुआ निरुपम का समाचार आया। समाचार लाने वाला चक्रिक पाटलिपुत्र में रहता हुआ सरिता से नित्य मिलता रहता था। इस समाचार को पाकर सम्प्रति ने निरुपम को अपने पास रखना उचित नहीं समझा। इससे उसके पहुँचने से पूर्व ही उसने उसके विषय में अपनी योजना बना ली।

निरुपम वीरभूमि में पहुँचा तो उसको सम्प्रति के सैनिकों ने पकड़ लिया। वहाँ पर किसी श्रावक को पीत वसन में सहन नहीं किया जाता था। निरुपम को पकड़कर कुमार के सम्मुख उपस्थित कर दिया गया।

"तो तुम आ गए हो?" कुमार ने उसको देखते हुए पूछा।

"तो आप जानते थे कि मैं आपसे मिलने आ रहा हूँ?"

"हाँ, और यह भी विदित है कि तुम बौद्ध धर्म छोड़ना चाहते हो। इस समय इन सब बातों से अधिक आवश्यक कार्य हमारे आन्दोलन की सफलता है। मेरी सम्मति यह है कि तुम पाटलिपुत्र लौट जाओ और पुनः सुनन्द के विहार में प्रवेश पा जाओ। सुनन्द से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाकर रखो और जो भी समाचार हमारे तथा हमारे इस आन्दोलन के सम्बन्ध के हों, सरितादेवी को ही बताते रहो। जितनी मेहनत और सचाई से हमारा यह काम करोगे, राज्य में उतना ही ऊँचा पद पा सकोगे। तब तुमको श्रावक बने रहने की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

"तो मैं पुनः पाटलिपुत्र लौट जाऊँ?"

"हाँ, अविलम्ब लौट जाना चाहिए। करने को कार्य वहाँ पर ही है।"

विवश निरुपम को श्रावक-वेश में ही पाटलिपुत्र लौट जाना पड़ा।

चक्रिक एक और समाचार लाया। पार्थ ने यह पूछा था कि यदि महापण्डित चक्रधर बौद्ध उपासकों को संघ से विद्रोह करने पर तैयार कर ले तो संज्ञा की सहायता की जाएगी अथवा नहीं? इस विषय में पार्थ को विष्णुचरण से, जो पुनः पाटलिपुत्र चला गया था, पूछने के लिए कहा गया।

युवराज कुणाल के पास भी बौद्ध गुरुओं का आयोग पहुँचा। बौद्ध संघ वाले चाहते थे कि युवराज बौद्ध गुरुओं के आयोग को सम्प्रति से सन्धि करने का अधिकार-पत्र दे दे। कुणाल भी संघ पर आई विपदा को सुन चुका था। इससे वह एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा अधिकार-पत्र देने को तैयार हो गया। उसका कहना था कि यद्यपि वह राज्य करता है, तथापि महाराज अभी तक जीवित हैं और नियम से वे ही राज्याधिकारी होने के कारण ऐसा अधिकार-पत्र दे सकते हैं। वह यह अधिकार-पत्र महाराज से ले देगा। इस आश्वासन से बौद्ध गुरुजन प्रसन्न हो अगले दिन इस अधिकार-पत्र को लेने के लिए आने को कहकर वहाँ से चल दिए।

जब वे चले गए तो ज्योति, जो वहाँ उपस्थित थी, युवराज से बोली, "महाराज! यह आपने क्या कह दिया है?"

"क्यों, इसमें क्या हानि हुई है?"

"महाराज! सुनन्द सन्धि करने जाएगा। सन्धि की शर्तें क्या होंगी यह सुनन्द ने आपको बताया नहीं है। इससे यह उस सन्धि से राजपरिवार को सर्वथा राज्याधिकार से वंचित भी तो कर सकता है! इस प्रकार इस साधारण बुद्धि और चरित्र के आदमी को आप इतने अधिक अधिकार दे रहे हैं कि वह उनका दुरुपयोग भी कर सकता है।"

कुणाल को इस प्रकार अधिकार-पत्र देने में भय का आभास मिल गया। उसने कहा, "प्रिये! तुम ठीक कहती हो। परन्तु एक बात तो समझ लो कि राज्य के पास सम्प्रति के विरोध की शक्ति तो है नहीं, उससे सन्धि करनी ही पड़ेगी। चाहे वह किसी शर्त पर भी हो।"

ज्योति इस बात को समझ गई थी कि अब बिना सन्धि के और कोई उपाय नहीं। परन्तु वह यह नहीं जानती थी कि सम्प्रति और सुनन्द दोनों उसके विरुद्ध हो गए हैं। इसके साथ ही वह देख रही थी कि गुरुओं के सम्मेलन में निरुपम, जिसको उसने पाटलिपुत्र से भाग जाने की आज्ञा दे दी थी, प्रमुख भाग ले रहा था। इस कारण उसको यह चिन्ता लग गई थी कि यदि इनको सन्धि करने का अधिकार दे दिया गया तो ये और चाहे कुछ करें न करें, उसको राज्य से निकालकर कहीं बन्दी करने की शर्त तो अवश्य मान जाएँगे। सम्प्रति यह शर्त माँगेगा और श्रावक इसको मान लेंगे। इस कारण उसने कुणाल के पूछने पर, "तो क्या किया जाय?" कह दिया "सन्धि की बात करने के लिए आपको स्वयं जाना चाहिए।"

"मुझको? मैं भला क्या करूँगा? ज्योति, मैं चक्षुविहीन हूँ।"

"महाराज! क्या मैं जानती नहीं? मैं आपके साथ चलूँगी और आप विश्वास रखिए कि आपके चक्षुओं का कार्य मैं करूँगी।"

युवराज ज्योति की किसी बात को भी अस्वीकार नहीं कर सकता था। इस कारण अगले दिन जब सुनन्द अधिकार-पत्र लेने आया तो कुणाल ने कह दिया कि वह अधिकार-पत्र देने की आवश्यकता नहीं समझता, क्योंकि वह स्वयं सम्प्रति से बातचीत करने जा रहा है।"

"आप?" सुनन्द ने आश्चर्य करते हुए कहा।

"हाँ प्रभु! इसमें विस्मय करने की क्या बात है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं महाराज ! आप नहीं जा सकते।"

"क्यों ?"

"आपका जीवन, वहाँ जाने से भय में पड़ जाएगा।"

"हमको विश्वास है कि कुमार ऐसा निर्दयी नहीं कि वह अपने अंधे पिता को किसी प्रकार की हानि पहुँचाए।"

"महाराज, आप राजनीति नहीं जानते।"

"तो महाराज से विचार-विनिमय कर लिया जाय।"

"वे तो इस सन्धि में कुछ भी रुचि नहीं रखते। उनका कहना है कि सन्धि की क्या आवश्यकता है ? सम्प्रति को युवराज बना दिया जाए और वह मान जाएगा।"

"तो मैं समझता हूँ कि उनके सम्मुख ही बातचीत हो जाए।"

सुनन्द इस परिवर्तित परिस्थिति में क्या करना चाहिए, यह नहीं समझ सका। इससे उसने महाराज के सम्मुख बात करना स्वीकार कर लिया। उसने कहा, "आज सायंकाल हम महाराज के सम्मुख सन्धि के विषय की बात कर लेंगे।"

कुणाल स्वयं सम्प्रति से मिलने जाने की बात को उचित नहीं समझता था। वह विचार करता था कि वह चक्षुविहीन है। यदि कोई घटना हो गई तो वह तो अपनी रक्षा करने के सर्वथा अयोग्य है। इससे सुनन्द का कहना उचित ही है कि इतनी दूर की यात्रा नहीं करनी चाहिए। उसने ज्योति से पूछा, "महाराज से क्या कहना चाहिए ?"

"उनसे मिलकर कहना चाहिए कि आप राज्य छोड़ने को तैयार हैं। आपको राजगद्दी पर संघ ने बैठाया था। आप स्वयं इस पद को चाहते नहीं थे। साथ ही महाराज से यह भी कहना चाहिए कि झगड़ा तो केवल यह है कि चैत्य नहीं रहने चाहिएँ और न ही श्रावकों की राज्यकार्य के लिए आवश्यकता है। इस कारण हमको हानि पहुँचाने के विचार से तो यह आन्दोलन हुआ नहीं है। इस विद्रोह का उद्देश्य तो बौद्ध विहारों को नष्ट करना मात्र है। इससे संधि तो इस विषय में होनी चाहिए। इसके विषय में ये श्रावक सन्धि करने के योग्य भी नहीं। इस कारण भी आपको स्वयं इसमें भाग लेना चाहिए।"

सायंकाल महाराज से मिलने जाने के लिए ज्योति स्वयं तैयार होने लगी। निबिड़िया उसको कपड़े पहना रही थी। ज्योति ने विशेष शृङ्गार किया था। इससे उसने दासी से पूछा, "क्या समझती हो निबिड़िया ! मैं इस प्रकार सुन्दर लगती हूँ अथवा नहीं ?"

निबिड़िया मुस्कराई और बोली, "आज आप इन्द्राणी प्रतीत हो रही हैं।"

"मैं इस बात की परीक्षा करने जा रही हूँ कि मेरा आकर्षण कहीं कम तो नहीं हो गया ?"

निबिड़िया मुस्कराकर चुप रही। ज्योति को इतना ज्ञान तो हो गया था कि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी सब दासियों से अधिक समझदार है। इस कारण उसके मुस्कराकर चुप रहने पर वह फिर पूछने लगी, "क्यों, चुप क्यों हो?"

"कुछ नहीं, महारानी जी!"

"कुछ तो है।"

"है तो, परन्तु हम दासियों की बात में कोई तत्त्व होगा ही, यह कैसे कहा जा सकता है?"

"तो कुछ बात है?"

"क्षमा करिए महारानी जी! मैं तो केवल यह विचार कर रही थी कि आप अपने शारीरिक आकर्षण को क्यों इतना प्रयोग में लाती हैं? जब बात ठीक हो, तो इसके बिना भी तो उसको मनाने की शक्ति आप में है।"

"क्या अभिप्राय है तुम्हारा?"

"मेरा कहना स्पष्ट है। जिस प्रयोजन के लिए आप महाराज के पास जा रही हैं, वह श्रेष्ठ है। उसकी सिद्धि के लिए यदि आप अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन करना चाहती हैं तो आप उस उद्देश्य की श्रेष्ठता को भी कम कर देती हैं। कोई बात सत्य और ग्रहण करने योग्य इसलिए नहीं हो जाती कि उसके कहनेवाला व्यक्ति अति सुन्दर है। यदि आप इस प्रकार बन-ठनकर महाराज के सम्मुख जाएँगी तो उनको सन्देह हो सकता है कि इस बात में आपका कोई स्वार्थ निहित है और जो कुछ आप कराना चाहती हैं वह उचित नहीं है।"

"तुम क्या जानती हो कि मैं किस उद्देश्य से महाराज के पास जा रही हूँ?"

"मैं सब-कुछ जानती हूँ। युवराज से भेंट करने के पश्चात् बौद्ध गुरुजन सम्मेलन-भवन में एकत्रित हुए हैं। वहाँ जो कुछ उन्होंने निर्णय किया है, वह मुझको पता चल गया है।"

"उन्होंने क्या निर्णय किया है?"

"वे भी महाराज के पास जा रहे हैं। गुरुजनों का निर्णय है कि जिस मूल्य पर भी हो सके, सम्प्रति से संधि कर लेनी चाहिए। एक बात तो उसमें यह निश्चित हुई है कि रानी ज्योति को श्राविका बनने पर विवश कर दिया जाए।"

"क्यों, मैंने क्या किया है?"

"श्रावकों का विचार है कि कुमार सम्प्रति सन्धि में आपके विषय की बात करेगा। इस कारण सम्प्रति को प्रसन्न करने के लिए आपको पहले ही किसी विहार में बंदी कर लिया जाए।"

ज्योति को स्वयं भी इसी बात का डर था। वह निबिड़िया के इस ज्ञान पर चकित रह गई। फिर भी उसने निबिड़िया की ओर देखकर पूछा, "तुमने कहा है कि मेरा महाराज के पास जाने का उद्देश्य श्रेष्ठ है। मैं जानना चाहती हूँ कि मेरे वहाँ जाने के विषय में तुम क्या जानती हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं आपके विषय में तो केवल अनुमान से ही बात कर रही थी। महारानी जी! जब मुझको यह विदित हो गया है कि श्रावक आपके विषय में क्या करना चाहते हैं तो मैंने विचार किया है कि आपको महाराज और सम्प्रति से बात कर, श्रावकों को राजनीति से पृथक् कर देना चाहिए। मैं समझती थी कि आप यही करने जा रही हैं।"

इस सुझाव से निबिड़िया को ज्योति बहुत ही सूझ-बूझवाली समझने लगी। इस कारण उसने पूछा, "क्या यह सम्भव है?"

"इसमें असम्भव कुछ भी नहीं। राजपरिवार में फूट डलवाकर ही ये श्रावक राज्य को उँगलियों पर नचा रहे हैं।"

"तुमको श्रावकों के सम्मेलन की बात कौन बताता है?"

"महारानी जी!" निबिड़िया ने बात बदलते हुए कहा, "श्रावक महाराज से मिलने जा रहे हैं। यदि आप इस दासी की तुच्छ बातों को समझने में समय गँवा देंगी तो सम्भव है कि वे महाराज से वह कार्य करवा लें जो आप नहीं करने देना चाहतीं।"

ज्योति समझ गई कि दासी बात टाल रही है। फिर भी उसकी चेतावनी की भी वह अवहेलना नहीं कर सकी। वह युवराज को साथ लेकर महाराज के आगार की ओर चल पड़ी।

महाराज उनको मार्ग में ही मिल गए। वे सभाभवन की ओर जा रहे थे। वहाँ श्रावक उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्योति को निबिड़िया की बात समझ में आ गई और वह महाराज का मार्ग रोककर खड़ी हो गई। युवराज उसके कन्धे पर हाथ रखे हुए जा रहा था। वह भी उसके खड़े होने से खड़ा हो गया।

इस समय ज्योति ने महाराज को हाथ जोड़ नमस्कार की। इससे कुणाल समझ गया कि महाराज सामने खड़े हैं। इतना जान कुणाल ने भी नमस्कार की और कहा, "महाराज, हम आपसे मिलने के लिए जा रहे थे।"

"सभाभवन में श्रावक-प्रतिनिधि मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम भी वहीं चलो।"

ज्योति ने कहा, "नहीं महाराज! पहले युवराज की बात सुन लीजिए। ये अपना निवेदन उनसे पहले करना चाहते हैं।"

"क्या बात है?"

ज्योति ने इतनी बात बता दी, "महाराज! आज प्रातःकाल श्रावकों का युवराज महोदय से झगड़ा हो गया है। हम इसके विषय में ही कुछ निवेदन करने आए हैं।"

"तो आओ!" इतना कह महाराज अपने निवासगृह की ओर लौट पड़े।

महाराज अपने निवासगृह के बैठकवाले आगार में पहुँच कुणाल को अपने समीप बैठाकर और ज्योति को सामने बैठने को कह, पूछने लगा, "हाँ, अब कहो कि क्या हुआ है?"

उत्तर ज्योति ने दिया, "महाराज! प्रातःकाल सुनन्द आया था और कुमार से संधि करने का अधिकार-पत्र माँगता था। युवराज महोदय चाहते थे कि वे स्वयं संधि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातचीत करने जाएँगे। इसको महाप्रभु सुनन्द ने स्वीकार नहीं किया। तब बौद्ध गुरुओं के सम्मेलन ने यह निर्णय किया है कि वे राजपरिवार के सदस्यों को परस्पर लड़ाते रहने से ही अपना अधिकार रख सकते हैं। इस कारण वे इस सन्धि में कोई ऐसी बात करने वाले हैं जिससे राजपरिवार को हानि पहुँचे। शायद वे देश में गणराज्य स्थापित करने का निर्णय कर चुके हैं।"

"यह बात तुम कैसे जानती हो?"

"मेरी एक दासी है। उसने यह सूचना दी है।"

"उस दासी को यहाँ बुलाओ, मैं उससे पूरी बात जानना चाहता हूँ।"

"महाराज! प्रतिहार को भेजकर उसको बुला लीजिए। उसका नाम निबिड़िया है। वह इस समय मेरे शयनागार में होगी।"

सरिता को बौद्ध गुरुओं के सम्मेलन की बातें निरुपम से पता चलती रहती थीं। निरुपम इस सम्मेलन के प्रबन्ध में लगा हुआ था। इसी कारण वह सब बातों को जानता था। सम्प्रति की आज्ञानुसार निरुपम सरिता से सम्पर्क स्थापित किए हुए था और वहाँ के निर्णय उसको बताता रहता था।

महाराज का प्रतिहार उसको बुलाने आया तो वह समझ गई कि महाराज के समक्ष उसकी बात बता दी गई है। उसने मन में निश्चय कर लिया कि आवश्यकता पड़ने पर वह अपना वास्तविक परिचय दे देगी। वह प्रतिहार के साथ महाराज के सामने आ उपस्थित हुई। उसने झुककर नमस्कार की तो महाराज ने उससे पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

"निबिड़िया, महाराज!"

"सुना है कि तुम बौद्ध गुरुओं के सम्मेलन के समाचार पाया करती हो?"

"महाराज ने ठीक ही सुना है।"

"कौन समाचार देता है तुमको?"

"यह मेरा निज का रहस्य है। यदि महाराज का मेरे पर अनुग्रह हो तो यह प्रश्न मुझसे न पूछा जाए।"

"तो कोई प्रेम-रहस्य है?"

निबिड़िया भूमि की ओर देखती हुई चुप रही।

"अच्छा, हम उसका नाम नहीं पूछते। परन्तु तुम उसके सब सत्य समाचार बताओगी अथवा नहीं?"

"मैंने ही आज रानी जी को कुछ बताया है और आपको भी सत्य बताने में मुझे कोई हानि प्रतीत नहीं होती।"

"हाँ, तो आज प्रातः जब श्रावक युवराज से लड़कर चले गए तो क्या हुआ?"

"मैं मध्याह्न के समय समाचार लेने गई थी। मुझको बताया गया कि सम्मेलन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निश्चय किया है कि महाराज से विनम्र निवेदन कर सन्धि करने का अधिकार प्राप्त कर लिया जाए। उनको भय है कि आप और युवराज दोनों यह अधिकार देना नहीं चाहेंगे। इस परिस्थिति में यह घोषणा कर दी जाए कि राजपरिवार के सदस्य परस्पर लड़ते हैं और इससे देश को हानि हो रही है। अतएव राजपरिवार को राज्य से वंचित कर गणराज्य की स्थापना कर दी जाए। एक तो इससे प्रजा प्रसन्न हो जाएगी। उसको यह बताया जाएगा कि कर लगाना जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में होगा। इस प्रकार जनता को प्रसन्न कर राजपरिवार का काँटा राजनीति से निकाल दिया जाएगा। इतना कुछ इधर करने के उपरान्त सम्प्रति से सन्धि की भी रूपरेखा निश्चित की जा चुकी है। वे सम्प्रति को इस गणराज्य का प्रथम गणपति मानने के लिए तैयार हैं। उनका विचार है कि सम्प्रति रानी ज्योति के विरुद्ध माँग करेंगे, बौद्ध संघ उनकी यह माँग मानने के लिए तैयार है।"

"तुमने ये सब समाचार ज्योति को बता दिए हैं?"

"जो कुछ उनके सम्बन्ध का था, सब बता दिया है।"

"तुमने यह समाचार बताकर सूचना देनेवाले का अहित नहीं किया?"

निबिड़िया इस प्रश्न का उत्तर देने से झिझकी। उसको इस प्रश्न का प्रयोजन समझ में नहीं आया। उसे चुप देख महाराज ने प्रश्न दुहराया, "देखो दासी! तुमने यह भेद की बात हमको बता दी है। तुमको सूचना देनेवाला श्रावक है और हम इस सूचना को सुनकर श्रावकों के निर्णय का विरोध करेंगे। तो इससे तुम्हारे हितचिंतक का अहित होने का भय नहीं है तुमको?"

निबिड़िया ने कुछ विचार कर कहा, "नहीं महाराज! जिस प्रयोजन से मैं यह समाचार प्राप्त कर रही हूँ, वह प्रयोजन आपको बताने से सिद्ध हो रहा है।"

निबिड़िया पुनः समाचार बतानेवाले का नाम तथा कार्य बीच में लाने से बच गई।

महाराज दासी की इस चतुराई पर बहुत प्रसन्न हुए। फिर भी उन्होंने बात यहीं पर नहीं छोड़ी। उन्होंने पूछा, "वह प्रयोजन क्या है, क्या हम जान सकते हैं?"

"क्यों नहीं महाराज! राजपरिवार को संघ की तानाशाही से मुक्त कराना मेरे इस प्रयास का उद्देश्य है। राजपरिवार के इससे मुक्त होने पर देश अर्थात् पूर्ण राज्य इनसे मुक्ति पा जाएगा।"

महाराज को निबिड़िया की बात दासियों के स्तर से बहुत ऊँची प्रतीत हुई। फिर भी वे उसके निज के रहस्य को समझ नहीं सके। इस रहस्य में अभी झाँकने की बात को छोड़ उन्होंने पूछा, "अच्छा, यह बताओ कि अब तुम क्या करना चाहती हो?"

"मैं महारानी जी के शयनागार में बिस्तर लगा रही थी, और आपसे छुट्टी पाते ही अपने कार्य पर लग जाऊँगी।"

महाराज और ज्योति हँसने लगे। महाराज ने अभी श्रावकों के साथ बात करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक समझ उसको कह दिया, "अच्छा, हम वहीं आकर तुमसे बात करेंगे।"

निबिड़िया आँखें नीची किए खड़ी रही। महाराज ने कुणाल से कहा "अच्छा, चलो अब वहाँ चलना चाहिए। तनिक उनकी भी बात सुन लें।"

महाराज, युवराज और ज्योति तीनों उस आगार की ओर चल पड़े जहाँ श्रावक महाराज की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे सभाभवन में पहुँचे तो श्रावक इन तीनों को इकट्ठे आते देख विस्मित रह गए। वह महाराज से पृथक् में बात करने आए थे। महाराज ने सिंहासन पर बैठकर अपने समीप युवराज को बैठा लिया। ज्योति दूसरी ओर एक नीचे आसन पर बैठ गई। महाराज ने बात आरम्भ कर दी—"हाँ, तो श्रावकगण मुझसे क्या चाहते हैं?"

"हमने पहले भी निवेदन किया था कि कुमार सम्प्रति से सन्धि कर लेनी चाहिए। इसी विषय में पुनः बात करने आए हैं।"

"बताइए, क्या चाहते हैं आप लोग?"

"हमारा कहना है कि सम्प्रति का उठाया हुआ यह विद्रोह अब कलिंग देश में भी फैल गया है। हम शान्ति से राज-कार्य चलाने के पक्ष में हैं। इस कारण सम्प्रति को सेना भेजकर दबाने की अपेक्षा उससे सन्धि कर लेनी चाहिए। इस सन्धि के लिए हम अधिकार-पत्र चाहते हैं।"

"यह अधिकार-पत्र मिल जाएगा, परन्तु दो में से एक बात करनी पड़ेगी। या तो सन्धि की रूपरेखा हस्ताक्षर करने से पूर्व दिखा ली जाए या हम अथवा कुणाल स्वयं जाकर सन्धि-चर्चा में भाग लेंगे।"

दोनों में से प्रथम बात श्रावकों को पसन्द आ गई। उसी समय अधिकार-पत्र तैयार किया गया और महाराज ने उस पर हस्ताक्षर कर दिए। महाराज की इस उदारता को ज्योति समझ नहीं सकी। उस समय तो वह चुप रही, परन्तु जब श्रावक खुशी से फूलते हुए चले गए तो ज्योति ने महाराज से कहा, "आपने अपने परिवार के लिए देशनिकाले का आज्ञा-पत्र लिखकर दे दिया है।"

"नहीं रानी! मैंने आज से बौद्ध संघ को राज्य से पृथक् मान लिया है। महामन्त्री मेरे अधिकार-पत्र के बिना तथा मुझसे सन्धि की रूपरेखा स्वीकार कराए बिना कुछ नहीं कर सकता।"

"मुझको तो श्रीमान् जी की बात समझ में नहीं आई?"

"आ जाएगी। चलो तुम्हारी दासी से बात करें। मुझको तो वह तुम्हारी अपेक्षा अधिक समझदार प्रतीत हुई है।"

ज्योति इस तुलना से आगबगूला हो गई। फिर भी वह महाराज से झगड़ा करना उचित न समझ मौन रही। सब वहाँ से चलकर ज्योति के आगार में पहुँच गए। सरिता उनके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। वह विचार करती थी कि जो कुछ उसने बता दिया है, उसके सुनने के पश्चात् यदि वे उससे और अधिक जानने नहीं आते तो वे राजनैतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा से शून्य हैं। उसका विचार था कि महाराज तो अवश्य उसको या तो बुलाएँगे या स्वयं वहाँ पर आकर उससे अभी और प्रश्न करेंगे।

इस कारण जब महाराज वहाँ आए तो वह उनसे बातचीत करने के लिए तैयार खड़ी थी। महाराज ने आसन ग्रहण करते ही कहा, "अच्छा तो दासी ! तुम यह बताओ कि यह देश-हित और राज-परिवार से सहानुभूति की बात तुम किसकी प्रेरणा से कर रही हो ?"

सरिता मुस्कराई और बोली, "महाराज, अपनी माँ की प्रेरणा से।"

"तुम्हारी माँ का क्या परिचय है ? हम अपने सब हितचिन्तकों से परिचय रखना चाहते हैं।"

सरिता ने निश्चय कर लिया था कि वह अब अपना परिचय दे देगी। इस कारण उसने कहा, "महाराज ! आपके राज्य में और इसी नगरी में एक पण्डित शंखपाणि रहते थे। मैं उनकी पुत्री हूँ। मेरा नाम सरिता है।"

महाराज और युवराज इस तथ्य को सुनकर तो अवाक् रह गए। कितनी देर तक वे विस्मय में इस लड़की को देखते रहे। अन्त में महाराज ने मुख खोला और पूछा—

"तुम्हारी माँ कहाँ हैं ?"

"यहाँ से चालीस कोस के अन्तर पर एक छोटे-से गाँव में थोड़ी-सी भूमि पर खेती करके निर्वाह कर रही हैं।"

"और तुम यहाँ दासी का कार्य करके पेट पालती हो ?"

"श्रीमान् पेट पालना गौण है, मुख्य कर्तव्य तो मैं आपको पहले ही बता चुकी हूँ।"

"देखो देवी ! क्या नाम बताया है तुमने ?" महाराज ने चिन्ता अनुभव करते हुए पूछा।

"सरिता, महाराज !"

"हाँ तो सरितादेवी ! तुम माँ को यहाँ बुला लो। पण्डित जी के देहान्त के पश्चात् हम उनकी बहुत खोज करते रहे हैं, परन्तु एक बात और बताओ, यह दासी का काम तुम कब से कर रही हो और किसके कहने पर कर रही हो ? मैं यह नहीं मान सकता कि तुम्हारी माँ ने तुमको यहाँ दासी का कार्य करने के लिए भेज दिया हो। वह कौन है जो तुमको बौद्ध गुरुओं के सम्मेलन की बातें जानने के लिए कह रहा है ?"

सरिता ने सब-कुछ बता देने का निश्चय कर लिया था। इस कारण उसने कहा, "महाराज ! जब कुमार सम्प्रति यहाँ से भागे तो दो दिन के भूखे-प्यासे हमारे घर पर आ पहुँचे। वहाँ जब उनको हमारा परिचय मिला तो कई दिन तक वहीं रहे और फिर विचार कर उन्होंने मुझे दासी के रूप में यहाँ रहकर यहाँ के समाचार एकत्रित करने के लिए भेज दिया।"

"तो तुम कुमार सम्प्रति का कार्य करती हो ? तुम उसकी ओर से भेदिया बनकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ आई हो ?"

"हाँ, महाराज ! फिर भी आपको विश्वास करना चाहिए कि कुमार की योजना राज्य के विरुद्ध न होकर केवल बौद्ध संघ के विरुद्ध ही है।"

महाराज को इसका प्रमाण मिल चुका था। वीरभूमि से एकत्रित कर का उचित भाग राज-कोष में आ चुका था।

महाराज ने कहा, "हम कुमार को एक सन्देश भेजना चाहते हैं। इस कार्य के लिए एक विश्वस्त दूत चाहिए।"

"ऐसा दूत मिल सकता है।"

"वह विश्वास-योग्य होने के साथ-साथ समझदार भी होना चाहिए। क्या तुम स्वयं वहाँ जाना चाहोगी ?"

"मुझसे भी अधिक विश्वस्त और बुद्धिमान व्यक्ति मिल सकता है। महाराज आज्ञा करें।"

"वह कौन है ? क्या वह तुम्हारा प्रेमी है जो बौद्ध गुरुओं के सम्मेलन की सूचनाएँ तुमको दिया करता है ?"

सरिता लज्जा से लाल होकर बोली, "नहीं महाराज ! वे तो कोई अन्य महानुभाव हैं। मेरा अभिप्राय महामात्य विष्णुचरण से है।"

"तो तुम उनको भी जानती हो ?"

"वास्तव में वे ही हैं, जो इस पूर्ण योजना को चला रहे हैं। मैं उनके अधीन ही यहाँ प्रासाद में कार्य कर रही हूँ।"

महाराज और ज्योति विस्मय में कितनी ही देर तक सरिता का मुख देखते रहे। पश्चात् महाराज ने कहा, "क्या विष्णुचरण मुझसे भी मिल सकते हैं ?"

"मैं उनसे मिलकर ही यह बात बता सकती हूँ।"

"कब तक बता सकोगी ?"

"कल प्रातःकाल तक।"

बात तय हो गई। महाराज गम्भीर विचार में वहाँ से विदा हो गए। उनके चले जाने पर ज्योति ने सरिता से विनीत भाव में कहा, "सरिता ! यदि मैं जानती होती कि तुम कौन हो, तो तुमसे दासियों का-सा व्यावहार कदापि न करती। अब तुम अपने को दासी न मान मेरी सखी ही मानो।"

"इस सौहार्द के लिए अनेकानेक धन्यवाद ! परन्तु मैं तो आज जा रही हूँ, आपसे अवकाश माँगना चाहती हूँ।"

"क्यों ?"

"अब मेरे करने के लिए यहाँ कुछ नहीं रहा। जो काम मुझे सौंपा गया था, वह जहाँ तक बन पड़ा मैंने किया। अब मेरा रहस्य खुल जाने से मैं किसी काम को करने के योग्य नहीं रही।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रति से सन्धि करने के लिए श्रावकमण्डल के प्रतिनिधि चल पड़े थे। निरुपम भी उस मण्डल के साथ चला गया था। महाराज के मन में भी इस श्रावक-मण्डल के काम में विघ्न डालने की अपनी योजना थी। वे चाहते थे कि यदि विष्णुचरण उसकी योजना को चलाने के लिए मान जाए तो ठीक है, नहीं तो वह अपना कोई अन्य दूत इस काम के लिए भेज देंगे।

विष्णुचरण सरिता के कहने पर महाराज से मिलने आया। उसके आते ही महाराज ने कहा, "महामात्य! तुमने हमको अपने यहाँ होने की सूचना तक नहीं भेजी?"

"महाराज! बन्दी हो जाने पर मैं महाराज की सेवा से मुक्त हो गया था। विशेष रूप से जब महाराज स्वतन्त्र हुए और महाराज ने उन अपराधियों को, जिन्होंने महाराज की आज्ञा का उल्लंघन किया था, दण्ड नहीं दिया, तब मैंने समझा कि महाराज को न केवल मेरी सेवाओं की आवश्यकता नहीं है, प्रत्युत मेरे विचार भी पसन्द नहीं हैं। साथ ही ऐसी परिस्थिति में मैं यह भी समझता था कि कहीं श्रीमान मुझको पुनः कारागार में न डाल दें।"

"तो अब भय नहीं लग रहा आपको?"

"एक तो सरितादेवी ने विश्वास दिलाया है कि आपको मेरी सेवाओं की आवश्यकता है, और दूसरे, मैं समझता हूँ कि आपके लिए अब और कोई चारा ही नहीं रहा कि आप वही कुछ करें जो कुमार सम्प्रति चाहता है।"

"वह क्या चाहता है?"

"वह इतने बड़े राज्य की रक्षा के लिए बीस लक्ष सेना तैयार करना चाहता है। यदि आप नहीं करेंगे तो राज्य और उसके साथ ही यह देश रसातल को चला जाएगा।"

"तो सेना उसको कैसे बचा सकेगी? आदिकाल से सेनाएँ रखी जाती रही हैं और युद्ध होते रहे हैं, परन्तु शान्ति नहीं हुई। शान्ति का मार्ग तो केवल सहिष्णुता ही है। दूसरे की बात को समझना और उसको समझकर प्रेरणा से उसको अपने अनुकूल करना ही शान्ति का एक उपाय है।"

"मैं महाराज से विवाद करने नहीं आया। फिर भी इतना तो बता देना चाहता हूँ कि जिस भाँति मैंने इतिहास पढ़ा है, उससे मेरी समझ में आया है कि सहिष्णुता और प्रेरणा का व्यवहार केवल साधुओं से ही हो सकता है। युद्ध असाधुओं के लिए होते हैं। उनसे युद्ध किसी भी भाँति टल नहीं सकता है। सदैव साधु आदमी की रक्षा के लिए युद्ध करने को तैयार रहना चाहिए। इस कारण यह आवश्यक है कि युद्ध के साधन बने रहें।"

"यह सब मिथ्या जाल है। फिर भी मैं पूछता हूँ कि आप मुझे साधु समझते हैं अथवा असाधु?"

"आप तो अब संन्यास लिये हैं न? इस कारण आपके विषय में तो मैं कुछ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह सकता। हाँ, आपका परिवार साधुओं का है और उसकी रक्षा के लिए ही हमारा प्रयास चल रहा है।"

"तो मैं भी आपको उसी प्रयास के विषय में कहना चाहता हूँ। आज प्रातःकाल श्रावकों का एक प्रतिनिधिमण्डल कुमार से सन्धि करने चला गया है। हमारा विचार है कि सन्धि तब तक मान्य न समझी जाए जब तक उस पर हमारे अथवा युवराज के हस्ताक्षर न हो जाएँ।"

"आपका कहना उचित ही है। मैं आपका यह सन्देश कुमार के पास पहुँचा दूँगा। परन्तु इसका कुछ विशेष महत्त्व नहीं है। कारण यह कि श्रावकों से सन्धि हो ही नहीं सकती। कुमार तो इनका भारत से उन्मूलन ही करना चाहते हैं। इसके लिए सन्धि कोई मार्ग नहीं। इसके लिए तो केवलमात्र युद्ध ही एक मार्ग है।"

वज्रबाहु कलिंग देश में भारी सफलता पा गया था। वहाँ तो बौद्धों के उन्मूलन के साथ-साथ मौर्यवंश के बहिष्कार का आन्दोलन चल पड़ा। इस पर वज्रबाहु ने गणपति केशव की कन्या के जीवित होने की बात बता दी। जब लोगों को भामिनी के विषय में विदित हुआ और उनको पता चला कि वह पाटलिपुत्र के एक विहार में बन्दी के रूप में रखी हुई है तो जनता का क्रोध असीम हो गया। विहारों पर आक्रमण करते समय लोग कहते थे कि कलिंग की राजकुमारी को मुक्त कराने का यही उपाय है कि इन कारागारों का सत्यानाश कर दिया जाए।

वहाँ के समाचार तो बौद्धों को अत्यन्त भयभीत करनेवाले सिद्ध हुए और बौद्ध श्रावकों का मण्डल दिन-रात यात्रा करता हुआ वीरभूमि में जा पहुँचा। वहाँ महाराज का अधिकार-पत्र ही उनको बचा सका, अन्यथा वे सब पकड़कर देश से बाहर निकाल दिए जा रहे थे।

श्रावकमण्डल का नेता सुनन्द था और उसके साथ चार अन्य श्रावक थे, जिनमें निरुपम भी एक था। इस मण्डल को सम्प्रति के सम्मुख उपस्थित किया गया। जब मण्डल ने महाराज के हस्ताक्षरों वाला अधिकार-पत्र दिखाया और अपने वहाँ आने का प्रयोजन भी बताया तो सम्प्रति ने एक द्रुतगामी दूत भेजकर वज्रबाहु और विष्णुचरण को बुलवा लिया। श्रावकमण्डल के रहने का उचित प्रबन्ध कर ठहरा दिया गया। पिछले दिन की बातचीत में यह बता दिया गया था कि जब तक वज्रबाहु नहीं आ जाते तब तक सन्धि की कोई बातचीत नहीं हो सकती।

श्रावकमण्डल इससे प्रसन्न था। वे भी समय को यों ही व्यतीत करना चाहते थे। श्रावकमण्डल का यह विचार था कि जब तक बातचीत चलेगी तब तक अन्य चैत्यों के विनाश का कार्य तो बन्द रहेगा। एक ओर वार्तालाप में सम्प्रति इत्यादि को इतना उलझा देंगे कि उनको विनाशकारी कार्य के लिए अवसर ही नहीं रहेगा, और दूसरी ओर वे कार्य की ऐसी योजना बनाने में लीन हो गए कि जिससे पाटलिपुत्र में से मौर्यवंश को ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त कर दें।

विष्णुचरण तो उस दिन ही पाटलिपुत्र से चल पड़ा था, जिस दिन उसकी महाराज से भेंट हुई थी। इस कारण श्रावकमण्डल के पहुँचने के एक दिन पश्चात् वह भी वीरभूमि में आ पहुँचा। उसके आते ही कुमार ने वार्तालाप आरम्भ करने का आग्रह किया। विष्णुचरण ने बताया कि इस समय देश पर उनके कार्य से आतंक छा गया है और जो कार्य तुरन्त किया जाएगा, वही सफल होगा। समय व्यतीत होने पर आतंक समाप्त हो जाएगा और संसार में कोई भी कार्य नहीं, जिसका प्रतिकार न ढूँढा जा सके। उसने बताया कि बौद्ध संघ हमारे कार्य का प्रतिकार ढूँढने में लीन है।

श्रावकमण्डल संधि की चर्चा करने में विलम्ब करने लगा। उन्होंने कहा कि संधि के अवसर पर वज्रबाहु का उपस्थित होना अत्यावश्यक है। एक तो संधि के समय कलिंग में चैत्यों के विनाश का कार्य समाप्त हो जाना चाहिए और दूसरे वज्रबाहु चैत्यों के विषय में एक अत्यावश्यक व्यक्ति हैं। उसकी स्वीकृति के बिना संधि का कार्य अधूरा होगा।

विष्णुचरण जानना चाहता था कि श्रावकमण्डल क्या करने की तैयारी कर रहा है? उसको यही भय था कि कहीं बौद्ध संघ के नेता विदेशों से सैनिक सहायता पा गए तो उनका सब प्रयास विफल हो जाएगा।

विष्णुचरण की सम्प्रति को यह सम्मति थी कि वह शीघ्रातिशीघ्र पाटलिपुत्र पहुँचने का आयोजन करे। इस कारण जब सम्प्रति के बुलाने पर श्रावकमण्डल आया तो कुमार ने कह दिया कि वह उनसे बात करने की अपेक्षा महाराज से ही बातचीत करेगा।

"हम महाराज की ओर से वार्तालाप का अधिकार रखते हैं।"

"पर आप तो वार्तालाप करते नहीं, व्यर्थ में ही समय गँवा रहे हैं।"

"हम वज्रबाहु का इस संधि-चर्चा में सम्मिलित होना अत्यावश्यक समझते हैं।"

"वह केवल मेरा सहायकमात्र है। उसको इस वार्तालाप में सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं। जो निश्चय मैं यहाँ करूँगा, वह उसको मान्य होगा।"

इस पर श्रावकगण वार्तालाप आरम्भ करने पर विवश हो गए। श्रावकों ने बात आरम्भ की। उन्होंने पूछा, "कुमार! आप क्या चाहते हैं?"

"मैं जो कुछ चाहता हूँ, वह आप लोग पूर्ण नहीं कर सकते। इस कारण मैं स्वयं पाटलिपुत्र जाकर वहाँ महाराज से वार्तालाप करना चाहता हूँ।"

"कुमार! आपका वहाँ जाना एक गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है। इस कारण इस बात का उत्तर हम अभी नहीं दे सकते।"

"कब तक उत्तर दे सकेंगे?"

"एक मास लग जाएगा।"

"मैं तो बिना उत्तर के भी पाटलिपुत्र जा सकता हूँ।"

"हम आपको यही सम्मति देंगे कि आप ऐसा न करें। जब महाराज आपसे सन्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए तैयार हैं तब उनकी राय के बिना कोई बात बलपूर्वक करनी शिष्टता के नियमों के विपरीत होगी।"

"पर मैं तो यहाँ इस वनप्रदेश में बैठा-बैठा अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता।"

इस पर उत्तर देने के लिए श्रावकों ने तीन दिन का अवकाश माँगा।

बौद्ध संघ को एक चाल सूझी। उन्होंने बौद्ध संगीति बुलाने का निर्णय कर लिया।

तृतीय बौद्ध संगीति महाराज अशोकवर्द्धन के काल में हो चुकी थी और यह द्वितीय संगीति से एक सौ वर्ष उपरान्त हुई थी। अब केवल पन्द्रह वर्ष के पश्चात् ही इसके पुनः करने की आवश्यकता नहीं हो रही थी। परन्तु जब श्रावकों ने यह कहा कि बौद्ध सम्प्रदाय पर भारी विपदा आ गई है, इसके निवारण के लिए इस प्रकार की संगीति का करना अत्यावश्यक है तो बौद्ध गुरुओं का सम्मेलन, जो सम्प्रति के कार्य पर मनन करने के लिए पाटलिपुत्र में बैठा हुआ था, उसने ही यह निर्णय कर लिया कि वर्तमान की विशेष परिस्थिति में संगीति का होना आवश्यक है।

महाराज का विचार था कि वैसी ही संगीति, जैसी राज्य के सत्रहवें वर्ष में हुई थी, करने के लिए दो वर्ष का अवसर चाहिए। इस कारण स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात् बौद्ध गुरु सम्मेलन ने इसकी तैयारी करने के लिए केवल छः मास की अवधि पर्याप्त समझी। सम्मेलन ने तीव्रगामी अश्वों पर चारों ओर दूत भेज दिए कि चतुर्थ संगीति-समारोह पाटलिपुत्र में आगामी मकर संक्रान्ति को होगा।

इस बार इस संगीति के अवसर पर सब बौद्ध श्रावकों को भारी संख्या में उपस्थित होने के लिए निमन्त्रण भेज दिया गया। बौद्ध श्रावकों के अतिरिक्त बौद्ध उपासकों को भी लाखों की संख्या में उपस्थित होने के लिए आदेश भेज दिया गया। संगीति के समाचार के जाते ही पाटलिपुत्र में किंवदन्ती फैल गई कि इस बार संगीति में दस लाख बौद्ध एकत्रित होने वाले हैं।

विष्णुचरण को पाटलिपुत्र के समाचार नित्य वीरभूमि में मिला करते थे। एक दिन समाचार आया कि संगीति करने की स्वीकृति मिल गई है। दूसरे दिन एक दूत यह समाचार लाया कि आगामी मकर संक्रान्ति को संगीति-समारोह होने वाला है। फिर एक समाचार आया कि दस लाख बौद्धों के एकत्रित होने की आशा की जाती है। इन समाचारों से विष्णुचरण इस समारोह के करने का अर्थ समझ गया। साथ ही श्रावकमण्डल के वार्तालाप में विलम्ब करने से वह इस परिणाम पर पहुँचा कि सम्प्रति के पाटलिपुत्र पहुँचने से पूर्व ही श्रावक वहाँ राज्यपरिवर्तन कर देना चाहते हैं। इससे विष्णुचरण ने बिना सन्धि-विषय की चर्चा का विचार किए, सम्प्रति की सेना-सहित पाटलिपुत्र को प्रस्थान करने की योजना बना दी। वह चाहता था कि अविलम्ब राज्य पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार कर लेना चाहिए और इस संगीति को रोक देना चाहिए।

विष्णुचरण ने वज्रबाहु को वीरभूमि आने के स्थान वहाँ की नवनिर्मित सेना को लेकर पाटलिपुत्र पहुँचने का आदेश भेज दिया और वहाँ पहुँचने की तिथि भी नियत कर दी। इधर उसने श्रावकों को धोखे में रखने के लिए सन्धि-चर्चा जारी रखी। सामान्य-सी छोटी-छोटी बातों पर लम्बी बातों को प्रोत्साहन देना आरम्भ कर दिया। पाटलिपुत्र में उसने पार्थ को सन्देश भेज दिया कि अमुक तिथि को कुमार और वज्रबाहु अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर पाटलिपुत्र पहुँच जाएँगे और वह भी वहाँ के संगठित युवकों को उस दिन के लिए तैयार रखे। साथ ही उसको यह भी लिख दिया गया कि पाटलिपुत्र में उनके पहुँचने का समाचार फैलने न पाए।

विष्णुचरण ने चक्रधर को भी एक सन्देश भेज दिया कि वह बौद्ध उपासकों को बौद्ध धर्म की रक्षा के लिए संघ के कामों से पृथक् रखने के लिए तैयार करता रहे। यदि वह इस काम में सफल हुआ तो उसकी पुत्री को पुनः राजप्रासाद में स्थान मिल जाएगा।

वीरभूमि में विवाद चल रहा था। जहाँ सम्प्रति यह कह रहा था कि वह अन्तिम वार्तालाप महाराज से करेगा, वहाँ श्रावकमण्डल के नेता कह रहे थे कि जब उनको पूर्ण अधिकार मिल चुका है तब महाराज से पूछने की आवश्यकता नहीं। कभी विवाद ज्योति पर चल पड़ता था। जब सम्प्रति ज्योति को एक अपराधी स्त्री मानकर उसके दण्ड की चर्चा करता था, तब श्रावकमण्डल ज्योति की प्रशंसा करने लगता था; और जब श्रावकमण्डल ज्योति को किसी बौद्ध विहार में श्राविका बना के रख लेने की बात करता था तो सम्प्रति उसका राजप्रासाद में ही रहने देने को मान जाता था। इस प्रकार अनर्गल वार्तालाप में सप्ताह पर सप्ताह व्यतीत हो रहे थे।

एक दिन सुनन्द इत्यादि श्रावकमण्डल के सदस्यगण प्रातः नित्यकर्म में संलग्न थे कि उनको दूर पर भेरी का शब्द सुनाई दिया। वे चकित हो एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

"भद्रायण!" सुनन्द ने आवाज दी, "तनिक देखना, यह भेरी का शब्द कहाँ से हुआ है? क्या कोई नवीन सेना आ रही है?"

भद्रायण दातून करता हुआ शिविर के बाहर गया और दूर पूर्व की ओर धूलि उड़ती देखकर एक समीप खड़े ग्रामीण से पूछने लगा, "यह क्या है?"

"भद्र! महाराज कुमार की सेना ने प्रस्थान कर दिया है।"

"यह सेना किधर गई है?"

"नहीं मालूम।"

यह सूचना भद्रायण ने सुनन्द को दी तो सब एक-दूसरे का मुँह देखते रह गए। भद्रायण ने पहले वस्तुस्थिति को समझा और कहा, "प्रभु! अब शीघ्र तैयार होकर कुमार से मिलना चाहिए और उससे इस सेना के प्रस्थान का कारण पूछना चाहिए। मैत्रीपूर्ण वार्तालाप में यह आक्रमण कहाँ किया गया है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक घड़ी में श्रावकमण्डल के सदस्य तैयार होकर कुमार सम्प्रति के निवास-गृह पर जा पहुँचे। वहाँ की अवस्था देख उनके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। निवास-गृह रिक्त था। वहाँ किसी के निवास के लक्षण तक दिखाई नहीं देते थे।

भद्रायण भीतर गया तो प्रांगण में एक वृद्धा बैठी हुई गुड़ और भुनी हुई मक्का चबा रही थी। भद्रायण ने पूछा, "देवी ! यहाँ जो कुमार रहते थे किधर गए हैं ?"

"तुम कौन हो ?" उसने पूछा।

"हम कोई भी हों, तुमको ज्ञात हो तो बताओ।"

"पता तो है, महाराज कुमार मुझे एक पत्र प्रभु सुनन्द को पहुँचाने के लिए दे गए हैं। मैंने समझा कि शायद तुम ही सुनन्द हो।"

"हाँ-हाँ, मैं ही हूँ, दो वह पत्र।"

"नहीं प्रभु ! प्रमाण दो। महाराज कुमार का पत्र है, किसी दूसरे के पास पहुँच गया तो प्राणदण्ड हो सकता है।"

"तुम हो कौन ?"

"मैं इस गृह की स्वामिनी हूँ। जब महाराजकुमार की सेना यहाँ आई तो वे आए और मुझको प्रणाम कर बोले, 'यह गृह मुझको रहने के लिए दो, मैं तुमको भाड़ा दे दूँगा।'

"जब मुझको विदित हुआ कि वे राजकुमार हैं तो मैंने मकान खाली कर दिया और भाड़ा भी नहीं लिया। महाराज का तो सब देश है। इस मकान का भाड़ा उनसे कैसे ले सकती थी ?

"रात में उन्होंने मुझको बुलाया। पाँच सौ स्वर्ण दिए, साथ ही एक पत्र दिया और कहा, 'माँ ! उस मकान में,' उसने श्रावकों के शिविर की ओर संकेत क़र कहा, 'जाकर प्रभु सुनन्द को यह पत्र दे देना।'

"मैंने समझा, सूर्य निकल आए तो जाकर दे दूँगी। मेरे पास भुनी मक्का रखी थी, तब तक यही खा रही थी, बेटा ! तुम भी खाओगे ?"

भद्रायण उसकी बात सुनकर हँस पड़ा। पश्चात् उसने कहा, "माँ, चलो मेरे साथ बाहर। महाप्रभु सुनन्द पत्र की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"सच ! तो चलो।"

उसने अपनी झोली में पड़े मक्के के दाने समेट लिये और उठ खड़ी हुई। बिना और कुछ कहे वह घर के बाहर आ गई।

भद्रायण ने महाप्रभु को सम्बोधन कर कहा, "महाप्रभु ! इस वृद्धा के पास आपके नाम कुमार सम्प्रति का एक पत्र है। आपके अतिरिक्त यह अन्य किसी को देना नहीं चाहती।"

महाप्रभु का नाम सुन वह वृद्धा ठहर गई और अपने आँचल के नीचे अंटी में बँधा पत्र निकालकर उसको दे दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्रभु ने पत्र खोला। वहाँ खड़े-खड़े ही पढ़ लिया। लिखा था, "महाप्रभु! आपसे प्रायः सब बातें निश्चित हो गई हैं और अब अन्तिम निर्णय करने के लिए महाराज के पास जा रहा हूँ। यदि आपका विचार कुछ और निश्चय करने का हो तो आप भी वहाँ आ जाइए। पाटलिपुत्र में सब-कुछ विचार और निश्चय ;हो जाएगा।"

पत्र सुनकर श्रावकमण्डल के सदस्यों के मुख पीले पड़ गए।

सेना को पाटलिपुत्र पहुँचने में विलम्ब हुआ और श्रावकमण्डल के सब सदस्य द्रुतगामी अश्वों पर सवार होकर कई दिन पूर्व पाटलिपुत्र पहुँच गए। विष्णुचरण भी पहले ही पहुँच गया था।

श्रावकों ने महाराज को बहुत भड़काया कि कुमार का कार्य राजपरिवार का सर्वनाश कर देगा, अतः उसको यहाँ सेनासहित आने से रोकना चाहिए।

महाराज का कहना था कि सुनन्द का ही प्रस्ताव था कि वे सन्धि करने जाएँगे। युवराज ने स्वयं जाने का विचार प्रकट किया था और सुनन्द ने उसको मना कर दिया था। यदि सुनन्द उससे सन्धि करने में असफल रहा हो तो फिर मैं क्या करूँ? अब उसको यहाँ आने दो। हम उससे बातचीत करेंगे। जो कुछ बातचीत होगी वह तुम्हारे सामने ही होगी। उस समय बताना कि हम क्या करें।

विष्णुचरण ने पाटलिपुत्र में पहुँचते ही वहाँ के युवकों की छोटी-सी सेना को तैयार करना आरम्भ कर दिया। युवकों को नित्य गंगा-पार रात के समय एकत्रित कर समझाना आरम्भ कर दिया। उनको किस अवसर पर क्या करना चाहिए, यह भी बता दिया गया। उसका अभ्यास भी करा दिया गया।

एक दिन नगर में यह समाचार फैल गया कि कुमार सम्प्रति अपनी सेना लेकर नगर पर आक्रमण करनेवाला है। इस समाचर पर महाराज की ओर से घोषणा करवा दी गई कि नगर के किसी भी नागरिक को भयभीत होने का कारण नहीं है। कुमार हमारी इच्छा से हमसे शान्तिपूर्वक वार्तालाप करने आ रहा है।

दूसरी ओर महापण्डित चक्रधर गोष्ठियों में बौद्ध उपासकों को कह रहा था, "संघ की दूषित नीति के विरोध के लिए ही कुमार सम्प्रति राजधानी में आ रहे हैं। उपासकों को कुमार का समर्थन करना चाहिए। यही एक उपाय है, जिससे बौद्ध धर्म की रक्षा हो सकती है।"

इसके साथ-साथ पार्थ की सेना अब इतनी साहसी हो गई थी कि वह गंगा पार जाकर चोरी-छिपे लड़ने का अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं समझती थी। वह सेना अब नगर के मार्गों पर ही अपना अभ्यास कर लेती थी। वे लोग अपना बचाव करने के लिए जहाँ कुमार सम्प्रति की जय-जयकार करते थे, वहाँ महाराज प्रियदर्शी का भी जयघोष करते थे।

इस प्रकार नगर की अवस्था अनिश्चित-सी हो रही थी। कोई नहीं जानता था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या होनेवाला है और उस पर क्या बीतेगी।

एक दिन सूर्योदय के समय जब लोगों ने नगरप्राचीर के बाहर देखा तो सम्प्रति की सेना का शिविर लगा हुआ दिखाई दिया। नगर में यह विख्यात हो गया कि कुमार अपने पितामह से भेंट करने आया है।

दूसरी ओर नगर के युवकों का एक समूह राजप्रासाद के बाहर कुमार सम्प्रति की जय-जयकार हुआ जा खड़ा हुआ।

इस समय सम्प्रति के दूत राजप्रासाद के बाहर आकर महाराज से भेंट के लिए आग्रह करने लगे। महाराज ने मन्त्रिमण्डल के सम्मुख ही उनसे भेंट की।

सुनन्द इत्यादि इस भेंट के लिए तैयार बैठे थे। उन्होंने यह निश्चय कर रखा था कि बातचीत में महीनों ही लगा देंगे, जिससे सम्प्रति की सेना ऊबकर अपने-अपने घरों को वापस जाने लगे और साथ ही संगीति-समारोह सम्पन्न हो जाए। उस समय लाखों की भीड़ में सम्प्रति की बची-खुची सेना को भी विलीन कर दिया जाए।

श्रावकों का यह अनुमान सम्प्रति की योजना को जाने बिना ही था। सम्प्रति के दूत महाराज, युवराज और मन्त्रिमण्डल के सम्मुख उपस्थित होकर बोले—

"महाराज! कुमार सम्प्रति की आज्ञा से हम यह निवेदन करने आए हैं कि महाराज भरतखण्ड के राज्य करने में अयोग्य सिद्ध हुए हैं। महाराज ने अपने महामात्य, महारानी, अपने पौत्र और अन्य अनेक प्रजागणों को बंदी बनानेवालों तथा उन पर बलपूर्वक अपना धर्म थोपनेवालों को दण्ड नहीं दिया।

"महाराज ने यह घोषणा करने पर भी कि सभी सम्प्रदायों के साथ राज्य की ओर से समानता का व्यवहार होगा, बौद्ध संघ को विशेष समर्थन दिया और केवल बौद्ध संघ के प्रतिनिधियों को ही मन्त्रिमण्डल में स्थान दिया। इस प्रकार महाराज ने पक्षपात किया।

"महाराज ने राज-कोष को, बौद्धों के चौरासी हजार चैत्यों को धन देकर, धनशून्य कर दिया है। इससे न केवल प्रजा के साथ अन्याय हुआ है, प्रत्युत राजा अतिदुर्बल हो गया है।

"महाराज ने इन चौरासी हजार विहारों में हो रहे पापों को रोकने में अपने को असमर्थ सिद्ध किया है।

"इस कारण कुमार सम्प्रति का कहना है कि भरतखण्ड में एक सुव्यवस्थित, न्यायपूर्ण, समृद्ध राज्य स्थापित करने के लिए महाराज अशोकवर्द्धन को, जिनको देवानांप्रिय तथा प्रियदर्शी के नामों से सम्बोधन किया जाता है, राज्य त्यागकर संन्यास ले लेना चाहिए और कुमार को मन्त्रिमण्डल बनाने का अवसर देना चाहिए।"

सम्प्रति का मुख्य दूत विष्णुचरण था। उसने यह निवेदन कुमार के नाम पर पढ़कर महाराज को झुककर प्रणाम करके उनसे उत्तर माँगा।

महाराज ने कुछ विचार कर कहा, "विष्णुचरण! यदि हम अपने पौत्र का यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन न मानें तो क्या होगा ?"

"उस अवस्था में महाराज ! मैं नगर के बाहर सेना-सहित खड़े कुमार को आपके उत्तर से सूचित कर दूँगा !"

"तदनन्तर ?"

"महाराज ! यह कुमार के विचार करने की बात है। वे आपके पौत्र हैं। आपसे कैसा व्यवहार करेंगे मैं कह नहीं सकता।"

"अच्छी बात है। कुमार का कथन हमने सुन लिया है। इसका उचित उत्तर हम भेज देंगे।"

"महाराज, आपके उत्तर की कब तक प्रतीक्षा करें ?"

"हम इस विषय में कुछ भी वचन नहीं दे सकते। शीघ्रातिशीघ्र उत्तर देने का प्रयत्न किया जाएगा।"

"ऐसी अवस्था में मुझको एक निवेदन करने की आज्ञा है। वह यह कि यदि उत्तर मध्याह्न तक न आया तो समझा जाएगा कि महाराज के पास कुमार के आरोपों का उत्तर नहीं है। उस अवस्था में राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेने के लिए कुमार को अधिकार होगा।"

"अच्छी बात । अब तुम लोग यहाँ से जा सकते हो।"

विष्णुचरण राजप्रासाद के द्वार से निकल गया। यह संकेत था, वहाँ के युवकों को वहाँ पर अराजकता फैलाने के लिए। एक चैत्य नगर के अन्दर था। उसके विरुद्ध जनता के मन में भारी रोष था। युवक-समूह ने सबसे पहले उसी पर धावा बोला। उस चैत्य की ईंट से ईंट बजाने के पश्चात् युवक अन्य चैत्यों की ओर बढ़े।

राजप्रासाद में मन्त्रिमण्डल की बैठक हो रही थी। वह कुमार सम्प्रति की माँग पर विचार कर रहा था। महाराज का कहना था, "सम्प्रति का कथन सत्य है। मैंने राज्य के उच्चाधिकारी होने के नाते अपना कर्तव्यपालन नहीं किया। प्रजा के प्रति अपनी बात छोड़ भी दूँ, तब भी मैं अपनी पत्नी तक को बन्दी-गृह से नहीं छुड़ा सका।"

"परन्तु महाराज ! राज्य-नियम से ही तो ऐसा हुआ है।"

"तो वह राज्य-नियम ठीक नहीं है।"

"कैसे ?"

"जो नियम बन्दी को अपने विषय में यह जानने की स्वीकृति नहीं देता कि उसको क्यों बन्दी बनाया गया है, वह नियम अन्यायपूर्ण है।"

सुनन्द ने कहा, "महाराज ! आपकी योग्यता और अयोग्यता का प्रमाण यह नहीं कि कौन बन्दी है अथवा कौन स्वतन्त्र। इसमें देखने की बात तो यह है कि आपका राज्य तीस वर्ष से अधिक चला है और इसमें बिना सेना अथवा रक्तपात के शान्ति रही है।"

"क्या शान्ति न्यायाचरण की सूचक है ? मैं तो इसमें एक ही कारण समझता हूँ कि जनता भीरु और पंगु हो गई है, जिससे वह अपने पर अन्यायाचरण होता देखकर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे चुपचाप सहन करती रही है।"

"महाराज! यह समय इन बातों के विवेचन का नहीं है। हमको तो मध्याह्न से पूर्व ही कुमार के विषय में कुछ निश्चय करना है।"

"हाँ! तो मन्त्रिमण्डल क्या चाहता है?"

सुनन्द ने कहा कि नागरिकों से कहा जाए कि वे सब नगर की रक्षा करें। इतने में हमको कुमार से वार्तालाप के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

इस पर नगर में घोषणा करने की आज्ञा दे दी गई कि नागरिक सम्प्रति को नगर में घुसने न दें। अभी आज्ञा गई ही थी कि नगर से सूचना आई कि नगरमध्य के चैत्य को आग लगा दी गई है। सूचना लानेवाले से पूछा गया, "किसने आग लगाई है?"

"नगर-युवकों ने।"

"ये संख्या में कितने हैं?"

"कई सहस्र हैं और जनता उनके साथ हो रही है।"

"ये लोग सम्प्रति के सैनिक हैं अथवा नगर के युवक?"

"नगर के युवक और जनसाधारण हैं।"

"इनका नेता कौन है?"

"शिवमन्दिर का पुजारी पार्थ है।"

अब तो मन्त्रिमण्डल के श्रावक भड़क उठे और बोले, "महाराज! यह तो गृह-युद्ध आरम्भ हो गया है! महाराज को बौद्धों की रक्षा करनी चाहिए।"

"कैसे रक्षा कर सकता हूँ? मंत्रिमण्डल ने मेरे पास साधन ही कहाँ दिए हैं? जब मैं कहता था कि सेना रहनी चाहिए तो आप लोग ही कह देते थे कि बौद्ध धर्म हिंसा करने के विरुद्ध है। जब मैं कहता था कि धन नगरों और विहारों की रक्षा के लिए व्यय होना चाहिए तो आप लोग कहते थे कि श्रावकों पर व्यय किया हुआ धन ही सफल होता है; सैनिक गुण्डों पर व्यय किया धन तो अपव्यय कहाता है।"

अभी यह चर्चा चल ही रही थी कि नगर के अन्य चैत्यों को गिरा देने, उनको लूट लेने और वहाँ से श्रावक-श्राविकाओं को भगा देने के समाचार आने लग गए।

जब मन्त्रिमण्डल घटनाओं को देखता हुआ कुछ भी न कर सकने के कारण विवश बैठा रह गया, तो निरुपम, जो वहाँ पर उपस्थित था, कहने लगा, "महाराज! एक बात स्पष्ट हो गई है कि राज्य में सामर्थ्य नहीं कि कुमार की सेना का अथवा जनता की इच्छा का विरोध कर सके। तो अवश्यम्भावी को स्वीकार कर लेना चाहिए। महाराज को संन्यास ले लेना चाहिए और कुमार को बुलाकर उनको राज्य चलाने को कहना चाहिए। वर्तमान मन्त्रिमण्डल पंगु सिद्ध हुआ है। उसको पद-त्याग कर देना चाहिए, जिससे कि शान्तिपूर्वक नया मन्त्रिमण्डल बन सके।"

सुनन्द ने कहा, "भद्रायण की सम्मति संघ की सम्मति नहीं है।"

"यह मेरी सम्मति है। संघ है कहाँ? क्या वह बालू की भीत के समान गिर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया ?"

कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता था। निर्मोही होने का दावा करनेवाले राज्य की ममता छोड़ नहीं सके। मध्याह्न हो गया। सम्प्रति की सेना नगर में घुस आई। सम्प्रति सीधा राजप्रासाद में जा पहुँचा। इनको देख नगर के तथा राजप्रासाद के बौद्ध उपासक भीगी बिल्ली की भाँति जनसाधारण के साथ मिल गए और कुमार सम्प्रति की जय-जयकार करने लगे।

सम्प्रति सभाभवन में, जहाँ मन्त्रिमण्डल बैठा, छाछ मथकर मक्खन निकालने का प्रयत्न कर रहा था, जा पहुँचा। उसने सभाभवन में घुसते ही महाराज को प्रणाम करते हुए कहा, "महाराज ! आप स्वयं सिंहासन छोड़ दें। आप भारत की पुण्यभूमि पर राज्य करने के योग्य नहीं रहे।"

महाराज ने सिंहासन से उठते हुए कहा, "कुमार, तुम ठीक कहते हो। मैं आज सिंहासन का त्याग करता हूँ।"

इतना कह महाराज सिंहासन से उतर सभाभवन के बाहर निकल गए। महाराज के सभाभवन से जाते ही सम्प्रति लपककर आगे आया। उसने अपने पिता कुणाल को बाँह से पकड़कर उठाया और सिंहासन पर ले-जाकर बैठा दिया। इसके पश्चात् उसने कहा, "हम आज अस्थायी रूप में युवराज कुणाल को भारतसम्राट् का पद देते हैं और उनकी ओर से वर्तमान मन्त्रिमण्डल को समाप्त कर नवीन मन्त्रिमण्डल की घोषणा करते हैं। इसमें पाँच सदस्य होंगे। विष्णुचरण महामात्य होंगे, शेष मंत्री होंगे पण्डित वज्रबाहु, पण्डित पार्थ शैव, श्रीगोपाल जैन नगरसेठ और महापण्डित चक्रधर बौद्ध उपासक।

"हम महाराज की ओर से आज्ञा देते हैं कि इस मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सब लोग सभाभवन का स्थान खाली कर दें।"

सुनन्द इत्यादि सभाभवन से बाहर निकल गए, परन्तु ज्यों ही वे भवन के द्वार पर पहुँचे कि सेनानायकों ने उनको बन्दी बना लिया। सुनन्द ने पूछा भी कि ऐसा क्यों किया जा रहा है ? इस पर उनको बताया गया कि आप पर महारानी जी को बन्दी रखने का आरोप लगाया गया है, अतः आपको न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया जाएगा।

इस राज्यपरिवर्तन के समय देश के नाम जो घोषणा प्रसारित की गई वह इस प्रकार थी—

"महाराज, देवानां प्रिय, प्रियदर्शी सम्राट् अशोकवर्द्धन ने, अपनी नीति के असफल रहने की सत्यता का आभास पाकर, भरतखण्ड के सम्राट्-पद का त्याग कर दिया है। उनके इस त्याग के पश्चात् युवराज सुयशस् (कुणाल) को राज्यभार वहन करने के लिए राजसिंहासन पर बैठाया गया है। उन्होंने श्री विष्णुचरण को महामात्य नियुक्त किया है।"

यह घोषणा दूतों द्वारा देशभर में प्रसारित करवा दी गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंपा द्वारा भामिनी को बाहर के समाचार मिलते रहते थे। उसको यह पता चल गया था कि अमुक दिन राज्यपरिवर्तन हो जाएगा और उसको विहार से छुड़ाने के लिए कार्यवाही की जाएगी। उक्त निश्चित तिथि को जब वह उठी और आकाश को धूलि-धूसरित देखा तो समझ गई कि नगर में कुछ-न-कुछ उपद्रव हो रहा है। एक प्रहर दिन बीतने पर वह नित्यकर्म से अवकाश पा कल्याणी से मिलने गई। कल्याणी कार्यालय में नहीं थी। कार्यालय की अन्य उपासक श्राविकाओं से पूछने पर विदित हुआ कि वे प्रातःकाल ही महाप्रभु सुनन्द से विहार की रक्षा के प्रबन्ध के विषय में वार्तालाप करने गई हुई हैं। भामिनी अभी विचार ही कर रही थी कि दंपा भागती हुई आई और बोली, "भामिनी देवी ! कुमार की सेना विहार को तोड़ने आ गई है, चलो भाग चलें।"

"कहाँ जाएँगे ?"

"यहाँ से नगर के शिवमन्दिर में चलना चाहिए। मैं तो उसी स्थान को सुरक्षित समझती हूँ।"

भामिनी गम्भीर विचार में पड़ गई। इस समय विहार के बाहर भारी हल्ला सुनाई दिया। भिक्षुणियाँ भयभीत इधर-उधर भागती दिखाई दीं।

भामिनी ने उनको इस प्रकार दुःखी देख दंपा से पूछा, "इनको क्या हो गया है ?"

"ये युवकों की भीड़ को विहार का द्वार तोड़ते देखकर डर गई हैं। उनको भय है कि कहीं युवक उनके साथ दुर्व्यवहार न करें।"

"यह तो बहुत बुरा होगा। हमको यत्न करना चाहिए कि इनका अपमान न हो।"

"हमारी कौन सुनेगा ?"

"तुम तो कुमार के नाम पर उनको आज्ञा दे सकती हो कि किसी स्त्री को कोई पुरुष हाथ न लगाए।"

"यह मेरे वश की बात नहीं है देवी !"

"तो चलो, मैं कहती हूँ।"

इतना कहकर उसने कार्यालय में जाकर घड़ियाल बजवा दिया। यह प्रायः भोजन के समय बजा करता था। घड़ियाल के बजने पर सब एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। भामिनी ने एक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर सब भिक्षुणियों को पुकारकर कहा, "भगिनियो ! सब यहाँ एकत्रित हो जाओ।" धीरे-धीरे भामिनी के कहने का अर्थ सबकी समझ में आने लगा और दो सहस्र के लगभग भिक्षुणियाँ कार्यालय के समीप एकत्रित हो गईं।

इस समय सर्वसाधारण की भीड़ चैत्य का द्वार तोड़कर भीतर आ गई और वे विहार के सामान को तोड़ने-फोड़ने लगे। भामिनी ने जनता की भीड़ को सम्बोधित करते हुए कहा, "सुनिए ! पहले इन श्राविकाओं को विहार से बाहर निकल जाने दीजिए, उसके पश्चात् जैसे चाहें लूट मचाएँ।"

"ये भी तो लूटी जाएँगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तुमको कुमार सम्प्रति के नाम पर कहती हूँ कि इनको जाने दो, अन्यथा आप लोग भी सुरक्षित नहीं रह सकेंगे।"

जनता कुमार सम्प्रति के नाम पर आज्ञा देनेवाली के मुख की ओर देखने लगे। एक श्राविका को कुमार का नाम लेते देख पहले तो उनको भय लगा, फिर विस्मय हुआ और अन्त में उनकी हँसी निकल गई। दंपा समीप ही खड़ी थी। उसने कहा, "मैं आपको पुजारी पार्थ के नाम पर संकेत करती हूँ कि इस विहार की यदि एक भी श्राविका को तुम लोगों ने हाथ लगाया तो बहुत बुरा होगा!"

पार्थ के नाम पर सब लोग पुनः ठिठक गए। भामिनी ने इस शान्ति का लाभ उठाते हुए कहा, "मैं आप लोगों को यह बताना चाहती हूँ कि हम यहाँ पर कुमार तथा पार्थ की आज्ञा से भेदिये का काम कर रही थीं और इसी कारण आप लोगों को कहती हैं कि पार्थ के आने तक किसी स्त्री अथवा वस्तु को न छुएँ।"

जनता में से किसी ने कहा, "भाई! पार्थ जी की प्रतीक्षा कर ली जाए।"

सब लूटमार रोककर खड़े हो गए। भामिनी ने कहा, "किसी को भेजकर पुजारी जी को बुला लें।"

कुछ लोग गए और पार्थ को, जो इन लूट मचानेवालों के साथ न आ सकने के कारण पीछे रह गए थे, साथ लेकर आ गए। पार्थ को आया देख दंपा भागकर उनके समीप गई और बोली, "पण्डित जी! मैं दंपा हूँ और यह वज्रबाहु की पुत्री भामिनी है।"

पार्थ समझ गया और आगे बढ़ भामिनी को नमस्कार कर पूछने लगा, "देवी जी क्या चाहती हैं?"

"इन श्राविकाओं को यहाँ से निकालकर किसी सुरक्षित स्थान पर जाने का अवसर मिलना चाहिए।"

"सबको?"

"हाँ, सबको। एक को भी किसी का हाथ नहीं लगना चाहिए।"

पार्थ ने कुछ विचार कर कहा, "अच्छी बात है। इनको कहें कि भगवे वस्त्र उतारकर तथा साधारण वस्त्र पहनकर निकल जाएँ। आज पीतवसन लावारिस स्त्रियों के लक्षण हो गए हैं।"

भामिनी ने भिक्षुणियों को कहा कि एक पंक्ति में द्वार के बाहर चली जाएँ क्योंकि बाहर वे साधारण कपड़े पहनकर ही बच सकेंगी।

जब भिक्षुणियाँ द्वार से निकलने लगीं तो भामिनी ने पार्थ से पूछा, "पिता जी कहाँ हैं?"

पार्थ ने बताया कि वे इस समय शिविर में हैं और मध्याह्न तक राजप्रासाद में पहुँच जाएँगे।

पार्थ ने भामिनी के लिए रथ का प्रबन्ध कर दिया और उनको अभी शिवमन्दिर में जाने के लिए कहा। उनके साथ दो युवकों को कर दिया, जिससे उनको मार्ग में कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्ट न हो।

जब मन्त्रिमण्डल की प्रथम बैठक समाप्त हो गई तो सम्प्रति ने महाराज कुणाल से पूछा, "श्रीमान्! हमारी नवीन माता ज्योति कहाँ हैं? सुना था कि वे आपकी छाया के समान आपके साथ-साथ चला करती हैं?"

"रात को वह मेरे साथ ही थी, परन्तु आज प्रातःकाल से लापता है।"

ज्योति को ढूँढने के लिए चारों ओर दूत भेज दिए गए। इस समय तक वज्रबाहु और भामिनी भी वहाँ आ गए थे। वज्रबाहु उसको अपने गृह में, जो उसको मंत्री बनने से मन्त्रियों के गृहों में मिल गया था, ले गया।

जब तक महारानी पद्मावती का पता नहीं चला, सुनन्द आदि श्रावकों को नहीं छोड़ा गया। महारानी के आने पर महाराज अशोकवर्द्धन उनको साथ लेकर संन्यासी हो गए और हिमाचल प्रदेश की ओर चले गए।

कुमार सम्प्रति का भामिनी से विवाह कर दिया गया और वह वास्तविक भारतसम्राट् बन गया। महाराज कुणाल नाममात्र का सम्राट् बना रहा। संज्ञा पुनः महाराज कुणाल के प्रासाद में आ गई और नाम की महारानी बन गई। ज्योति पाटलिपुत्र से भागकर अपनी माँ के पास विशालापुरी चली गई और वेश्यावृत्ति करने लगी।

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त की ऐतिहासिक पुस्तकें

अस्ताचल की ओर	(3 भाग)
अवतरण	
कुमकुम	
खण्डहर बोल रहे हैं	(3 भाग)
गंगा की धारा	
अमृत मन्थन	(राम कथा-1)
परम्परा	(राम कथा-2)
अग्नि परीक्षा	(राम कथा-3)
जमाना बदल गया	(4 भाग)
दो लहरों की टक्कर	(2 भाग)
दिग्विजय	
पत्रलता	
परित्राणाय साधूनाम	(महाभारत पर आधारित सम्पूर्ण उपन्यास)
भैरवी चक्र	
मेघवाहन	
महाकाल	
युद्ध और शान्ति	
लुढ़कते पत्थर	
वाम मार्ग	
विक्रमादित्य साहसांक	
वैशाली विलय	(बहती रेता)
शकराज जयदमन	
सागर तरंग	

श्री गुरुदत्त की राजनीतिक रचनाएं

वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान	हिन्दू राष्ट्र
राष्ट्र राज्य और संविधान	
हिन्दुत्व की यात्रा	
धर्म संस्कृति और राज्य	
मनुष्य और समाज	
भारत में राष्ट्र	
भगनाश	
प्रजातंत्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था	
भारत गांधी नेहरु की छाया में	
धर्म तथा समाजवाद	
बुद्धि बनाम बहुमत	
स्व अस्तित्व की रक्षा	(2 भाग)
मैं हिन्दू हूँ	(राजनैतिक संस्मरण)
भाव और भावना	(संस्मरण)
भाग्यचक्र	(संस्मरण)

www.hindisahityasadan.com
E-mail: indiabooks@rediffmail.com Tel : 09213527666, 07065618655

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त के सर्वाधिक चर्चित रचनाएं

स्वाधीनता के पथ पर	(स्वाधीनता आन्दोलन 1930 से 35 का काल)
पथिक	(स्वाधीनता आन्दोलन 1935 से 40 का काल)
स्वराज्यदान	(स्वाधीनता आन्दोलन 1940 से 46 का काल)
विश्वासघात	(स्वाधीनता आन्दोलन 1946 से 47 का काल)
देश की हत्या	(स्वाधीनता आन्दोलन 1947 से 48 का काल)
दासता के नए रूप	(1948 से 49 का काल)
सदावत्सले मातृभूमे	(1949-.... का काल)

श्री गुरुदत्त की सामाजिक रचनाएं

अमानत
अनदेखे बन्धन
आवरण
अन्तरिक्ष में
आकाश पाताल
इक्कीस
एक मुँह दो हाथ
कला
घर की बात
आशा निराशा
अपने पराए
कामना
गुंठन
चंचरीक
छलना
ज़िन्दगी
जीवन ज्वार
धरती और धन
न्यायाधिकरण
नए विचार नई बातें
नगर परिमोहन
नास्तिक
पंकज
परिमल
परिवर्तन
पड़ोसी
प्रवंचना
प्रतिशोध
प्रारब्ध और पुरुषार्थ
प्रेयसी
प्रेरणा
बन्धन शादी का
भगवान भरोसे
भग्नाश
भाग्य का सम्बल
भावुकता का मूल्य
भूल
भूत और भविष्य
ममता
मायाजाल
मृगतृष्णा
मैं और मानूँ
यह संसार
यात्रा का अंत
युद्ध और शान्ति
लालसा
लोक परलोक
विकार
विलोम गति
विकृत छाया
स्वार्थ
सब एक रंग
सभ्यता की ओर
स्नेह का मूल्य
संस्कार
सफलता के चरण
सर्वमंगला
साहित्यकार
सुमति

Central Library
167974
Gurukula Kangri (Deemed University) Haridwar
081
167974

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-L आगत संख्या 167974

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

शिक्षा: एम. एस. सी.

8-12-1894 से 8-4-1989

लेखक की कुछ अन्य रचनाएँ

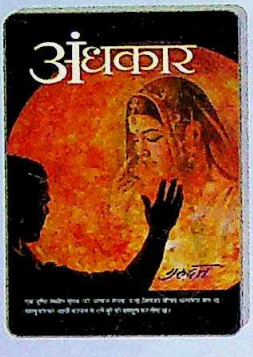

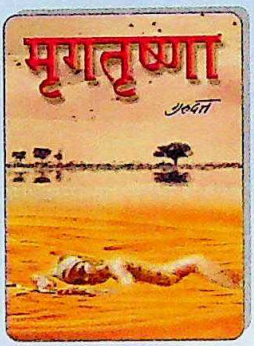

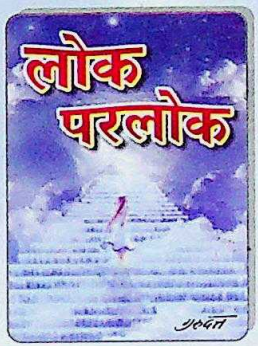

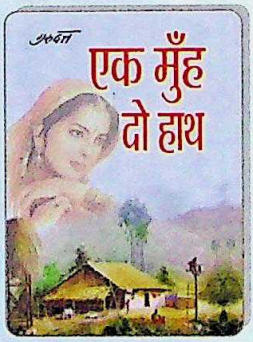

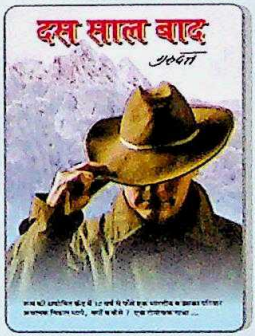

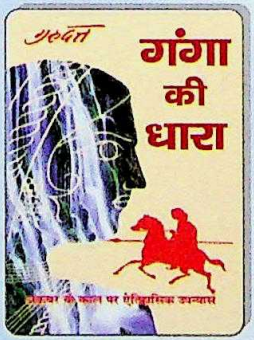

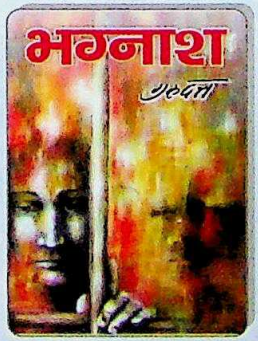

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005, फोन- 9213527666, 7065618655
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com, hindisahityasadan@gmail.com

9 789386 336880

www.hindisahityasadan.com
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar